‘‘हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन’’

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2023

विभागाध्यक्ष
प्रो. दिनेश कुशवाह
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध–निर्देशक
डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न,
जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

शोधार्थी
श्रवण कुमार
एम.ए. (हिन्दी)

शोध–केन्द्र
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

‘‘हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन’’

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2023

विभागाध्यक्ष
प्रो. दिनेश कुशवाह
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध–निर्देशक
डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न,
जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

शोधार्थी
श्रवण कुमार
एम.ए. (हिन्दी)

शोध–केन्द्र
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ORDINANCE NO. 11

Appendix-VI

DECLARATION BY THE RESEARCH SCHOLAR (Para 24 b)

I declare that
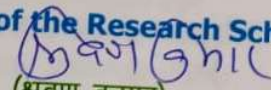
1. The research work presented in the thesis entitled "हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन" is my own work except as acknowledged in the text and footnotes.
2. There is no plagiarism in the research work reported in the thesis.
3. I completed the research work under the supervision of **(Supervisor) डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति, सहायक प्राध्यापक-हिन्दी, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न जिला-सिंगरौली (म.प्र.)** at the **Centre –** हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) approved by University.
4. I have put in more than 200 days of attendance after completing Ph.D. course work with the Supervisor.
5. To the best of my knowledge this thesis has not been submitted either in whole or in part, for award of any other degree/diploma in this University or at any other such Institution.

Besides this-

(i) I have successfully completed the Ph.D. Course work as per UGC-Regulation, 2016 norms.

(ii) I have also given a pre-Ph.D. presentation and successfully incorporated the changes suggested on the basis of feedback and comments received.

(iii) I have published **02** research paper(s) in referred journals(s) and presented **02** research papers in conferences/seminars from the research work of the thesis. I have also produced evidence of the same in the form of reprints and/or presentation certificates.

Date : 27/06/2023

Signature of the Research Scholar

(श्रवण कुमार)
(एम.ए. हिन्दी)

डॉ० एन० पी० प्रजापति
सहा० प्राध्यापक हिन्दी
शा० महाविद्यालय बैढ़न
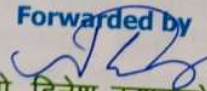
Signature of the Supervisor

(डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति)
सहायक प्राध्यापक–हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बैढ़न जिला–सिंगरौली (म.प्र.)

Forwarded by

28.6.23

(प्रो. दिनेश कुशवाह)
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ORDINANCE NO. 11

APPENDIX–VII

CERTIFICATE OF THE SUPERVISOR (Para 24c)

CERTIFICATE

This is to certify that the work entitled "हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन" is a piece of research work done by श्रवण कुमार under my supervision for the award of degree of Doctor of Philosophy of **Awadhesh Pratap Singh University, Rewa (M.P.) India.** That the candidate has put in an attendance of more than 200 days after completing Ph.D. course work, with me.

To the best of my knowledge and belief the thesis:-

(i) embodies the research work done by the candidate herself;

(ii) has duly been completed;

(iii) fulfills the requirements of the ordinance relating to the Ph.D. degree of the University; and

(iv) is upto the standard both in respect of contents and language for being referred to the examiners.

Place : Rewa

Date : 27/06/2023

Signature of the Supervisor

डॉ० एन० पी० प्रजापति
सहा० प्राध्यापक हिन्दी
शा० महाविद्यालय बैढ़न

(डॉ. [illegible] प्रजापति)
सहायक प्राध्यापक–हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न
जिला सिंगरौली (म.प्र.)

Forwarded by

28/6/23

(प्रो. दिनेश कुशवाह)
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

भूमिका

इस संसार में मित्र धन-धान्य आदि का बहूत ही अधिक महत्व हैं किन्तु माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हरियाणवी लोकगीत हमारी मातृभाषा की धरोहर है। जिसकी रक्षा एवं संवर्धन हेतु कार्य करना हमारा परम दायित्व बनता है। जब हम अपनी लोक परंपरा स्वरूप लोकगीतों को संरक्षण प्रदान करेंगे और लोकगीतों को संरक्षण प्रदान करेंगे और लोकगीतों के संवर्धन हेतु कार्य करेंगे तो अप्रत्यक्ष रूप से यह हमारी मातृभाषा की सेवा कहलाएगी, इसी के साथ हम अपनी भाषा के अपनी मातृभूमि के भावों, लोक परंपराओं, लोक कथाओं एवं लोक संगीत को एक सुदृढ़ संरक्षण प्रदान कर सकने में सक्षम होंगे।

हमारे लोकगीत ना सिर्फ हमारी क्षेत्रीयता को दर्शाते हैं, अपितु लोकगीतों में हमारी पौराणिक परंपराएँ रीति-रिवाज निबंध होते हैं, जिनका संक्षरण एवं संवर्धन करना हमारा परम दायित्व है। लोकगीत ना सिर्फ हमारी लोक परंपरा को दर्शाते हैं, अपितु उनमें छिपे हुए अनगिनत भाव हमारे लिए अत्याधिक मूल्यवान हैं, जिन्हें संरक्षण प्रदान करना जिनके बारे में सोचना और समाज के सामने उनके महत्वों को उजागर करना हमारा परम दायित्व बनता है।

नित नवीन ऊँचाइयों को छूते इस समाज में दूषित मानसिकताओं के चलते, हमारी लोक परंपराओं और रीति-रिवाजों को रूढ़िवादी नाम से अलंकृत किया जाने लगा है, जिसके परिणाम स्वरूप इनका वर्चस्व एवं वास्तविकता दोनो ही विलुप्त होती सी दिखाई देती है। वर्तमान समय में अत्याधिक कम लोग हैं जो अपनी इन परंपराओं और अपनी बोली के लिए सामने आना चाहते हैं, इनमें से कुछ लोग ऐसे भी हैं जो लोकगीतों को दबी कुचली और पुरानी सभ्यता का ढांचा समझते हैं और पश्चात्

संस्कृत को विकास क्रम की सीढ़ी का नाम देते हैं। इन्हीं तमाम मानसिकताओं के चलते, लोकगीतों को आज संरक्षण एवं संवर्धन की नितांत आवश्यकता है। अपनी लोक परंपरा एवं अनगिनत रीति-रिवाजों स्वरूप लोकगीतों को एक संवर्धन एवं संरक्षण प्रदान करना हमारा परम दायित्व बनता है।

हमारी लोक परंपराएँ जो कि लोकगीतों की पर्याय है। उनके विलुप्त होते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में लोकगीतों के अध्ययन की नितांत आवश्यकता परिलक्षित होती है। क्योंकि अगर हमारी लोक परंपराओं को जीवित रखना है तो उन लोग परंपराओं को जीवित रखने का मूल स्रोत हमारे लोकगीत ही है। लोकगीत ना सिर्फ परंपराओं की जननी है अपितु लोकगीत साहित्य एवं संगीत से हमारा सीधा संबंध स्थापित करने का कार्य भी करते हैं, लोकगीतों में जहां एक तरफ प्रत्येक शब्द का अलौकिक अर्थ है, वहीं संगीत का माधुर्य भी परिलक्षित होता है।

अतः इतने अधिक गुणों के परिणामस्वरूप हमारे लोकगीत एवं लोक परंपराएँ जैसे विलुप्त होती जा रही हैं, परिणामस्वरूप वर्तमान समय में अगर संरक्षण नहीं प्रदान किया गया तो वह पूर्णं रूप से विलुप्त हो जाएंगी। लोकगीतों के महत्व को बनाए रखने के उद्देश्य से वर्तमान समय में शोध कार्य का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इन्हीं सब कारणों के चलते शोध कार्य का विषय लोकगीतों पर रखा जा रहा है।

हरियाणवी सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से लोक गीतों को बल प्रदान करने के उद्देश्य से शोध कार्य पूर्ण किया गया, जिसके परिणम स्वरूप लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन को बल प्राप्त होगा। उक्त शोध कार्य के माध्यम से लोकगीतों की प्रतिष्ठा के प्रतिपक्ष में लोकपक्ष की महत्ता को बल प्रस्तुत करने का कार्य किया गया।

लोकगीतों के अध्ययन के माध्यम से लोक परंपराओं और रीति-रिवाजों सहित उनकी भाव प्रधानता को संरक्षण प्राप्त है। लोकगीतों के प्रकारों, लोकगीतों के भावों एवं लोकगीतों की विशेषताओं को रेखांकित कर उन्हें संरक्षित करने का कार्य किया।

हरियाणवी लोक कला ही नहीं अपितु हरियाणा की प्राचीन सभ्यता को भी संरक्षण प्रदान करने का कार्य किया है जो आने वाली पीढ़ी के लिए अत्यधिक प्रेरणादाई एवं पथग्राही साबित होगा।

हरियाणवी लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन को ध्यान में रखते हुए, हरियाणवी लोकगीतों में पुनः प्राण प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से यह शोध कार्य किया जा रहा है। जिससे की हमारी लोक परंपराओं एवं सभ्यताओं को संरक्षण एवं बल प्राप्त हो सके और हमारी लोकगीतों के माध्यम से हमारी पौराणिक सभ्यता जीवित रह सके। इस अध्ययन के साथ ही साथ हरियाणवी लोकगीतों की प्रमुख धारा को हिन्दी से जोड़ते हुए हरियाणवी लोकगीतों की विकास यात्रा को भी विवेचित करने एवं विश्लेषण करने का प्रयास होगा।

अध्याय की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने छः अध्याय में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में हरियाणवी लोकगीत : परिचयात्मक पृष्ठभूमि इसके अन्तर्गत लोक का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप, लोक साहित्य, लोक साहित्य की विधाए- लोक कथाएँ, लोकगीत, लोकगाथा एवं लोकनाट्य, लोकगीत का अर्थ एवं परिभाषा, लोकगीत की विशेषताएँ, लोकगीतों का वर्गीकरण, लोकगीत का महत्व, हरियाणवी लोकगीतों का जन्म, हरियाणवी लोक गीतों का इतिहास का अध्ययन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में जन्म एवं मृत्यु संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ ही संस्कार, अर्थ, परिभाषा, समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कार, जन्म संस्कार संबंधित लोकगीतों की परिभाषा जैसे- ओजणा गीत, सोहर गीत, प्रसव गीत, भेली गीत, छठी गीत, नेग गीत, कुआँ पूजन गीत, पालना गीत, लोरी गीत का अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय में विवाह संस्कार संबंधी लोकगीतों की समीक्षात्मक अध्ययन के साथ वर खोजणा गीत, सगाई गीत, बान गीत, बन्ना गीत, भात गीत, मेहन्दी गीत, सेहरा बांधना आदि का उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भक्ति एवं ऋतु संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ सावन गीत, तीज के गीत, होली के गीत, बसंत पंचमी के गीत, भक्ति गीत एवं देवी-देवताओं आदि का उल्लेख किया गया है।

पंचम अध्याय रोजमर्रा के कार्यों एवं व्रत संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ प्रभाती गीत, चक्की गीत, चरखा काटने के गीत, पनघट के गीत, शृंगार गीत एवं व्रत गीत का उल्लेख किया गया है।

षष्ट अध्याय विविध प्रकार के हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ धर्म गीत, पति-पत्नी संवाद गीत, मेलों के गीत, खेल गीत, तथा दोस्ती गीत का उल्लेख किया गया है।

अंत में उपसंहार और परिशिष्ट में आधार ग्रंथ सूची, संदर्भ ग्रंथ सूची और पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख किया गया है।

श्रवण कु मार

एम.ए. (हिन्दी)

आभार

आभार प्रदर्शन की शृंखला में सर्वप्रथम मैं डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति, **सहायक प्राध्यापक**, हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न जिला-सिंगरौली (म.प्र.) को अपना प्रणाम निवेदित करता हूँ, जिनके कुशल निर्देशन से मेरी यह शोध यात्रा अंतिम मुकाम पर पहुँची। उनका स्नेह, उत्साह एवं प्रेरणा ही मेरे कार्य की पूर्णता को अभिव्यक्ति देती है।

राष्ट्रीय क्षितिज के समकालीन कवि प्रो. दिनेश कुशवाह, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.) का हृदय से आभार मानता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने व्यस्ततम् समय में भी मुझे सम्यक सुझाव देकर कार्य की पूर्णता में सहयोग प्रदान करते हुए विभाग से आवश्यक सुविधाएं मुहैया कराई।

शोध केन्द्र हिन्दी विभाग के डॉ. अनुराग मिश्र ने मुझे प्रेरित कर कार्य को गति प्रदान की जिन्हें हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। डॉ. बारेलाल जैन का भी सहयोग समय-समय पर मुझे मिलता रहा है। डॉ. अर्चना सिंह ने पुस्तकालय से पुस्तकों के सम्बन्ध में भी मेरा खूब सहयोग किया। डॉ. चन्द्रप्रकाश पटेल का सहयोग हमेशा स्मरणीय रहेगा। श्री संतोष सिंह व छविशेखर राय का भी मैं आभारी हूँ।

मैं अपने पिता स्व. श्री राम किशन यादव, ममतामयी माता श्रीमती सुशीला देवी जी के चरणों में नतमस्तक हूँ जिनके असीम वात्सल्य, स्नेह, उत्साह एवं आशीर्वाद से ही यह दुरूह कार्य संभव हुआ है।

सहयोगी मित्रगण- श्री प्रवीण यादव जी, महेश जांगड़ा जी, सत्येन्द्र एडवोकेट जी, श्रीमती रचना जी, मनीषा जी एवं पत्नी **श्रीमती सुदेश देवी जी** जो गृहस्थ कार्य में व्यस्त रहते हुए मेरे इस शोध कार्य की पूर्णता में जो सहयोग प्रदान किया उन्हें कैसा भुलाया जा सकता है। वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस महत कार्य में जिन-जिन का भी मैं नाम नहीं लिख पाया, उन सभी का आशीर्वाद भी इस शोध कार्य की पूर्णता में है।

शोध प्रबन्ध के कम्प्यूटर टाइपिंग कार्य हेतु मैं राकेश भैया जी कम्प्यूटर्स टाईप, अनन्तपुर, रीवा (म.प्र.) के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

श्रवण कुमार

एम.ए. (हिन्दी)

अनुक्रमणिका

''हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन''

अध्याय–चार		**हरियाणवी लोक गीतों के विकास पक्ष**	
	(क)	हरियाणवी लोक गीतों के प्रकार	
	(ख)	हरियाणवी लोकगीतों से संगीत की विकास यात्रा का उदय	
	(ग)	लोक परंपरा एवं संस्कृत में हरियाणवी लोकगीत	
	(घ)	सामाजिक मान्यताओं सहित साहित्य के विकास में हरियाणवी लोकगीतों का योगदान	
अध्याय–पांच		**लोक परंपरा एवं संवेदना में हरियाणवी लोकगीत**	
	(क)	हरियाणा की लोक परंपराओं में हरियाणवी लोकगीतों का महत्व	
	(ख)	हरियाणवी संवेदना की परिचय हरियाणवी लोकगीत	
अध्याय–छः		**हरियाणवी लोक गीतों का समग्र मूल्यांकन**	
	(क)	समाज गत	
	(ख)	साहित्य गत	
	(ग)	भागवत संप्रेषणीयता	
	(घ)	सामाजिक सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिपेक्ष में हरियाणवी लोकगीत	
		उपसंहार	
परिशिष्ट :–	(क)	आधार ग्रंथ सूची	
	(ख)	सहायक ग्रंथ सूची	
	(ग)	पत्र–पत्रिकाएँ	

अनुक्रमणिका

‘‘हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन’’

‘‘हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन’’

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-संक्षेपिका

2023

विभागाध्यक्ष
प्रो. दिनेश कुशवाह
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध–निर्देशक
डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न,
जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

शोधार्थी
श्रवण कुमार
एम.ए. (हिन्दी)

शोध–केन्द्र
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध संक्षेपिका

इस संसार में मित्र धन-धान्य आदि का बहूत ही अधिक महत्व हैं किन्तु माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हरियाणवी लोकगीत हमारी मातृभाषा की धरोहर है। जिसकी रक्षा एवं संवर्धन हेतु कार्य करना हमारा परम दायित्व बनता है। जब हम अपनी लोक परंपरा स्वरूप लोकगीतों को संरक्षण प्रदान करेंगे और लोकगीतों को संरक्षण प्रदान करेंगे और लोकगीतों के संवर्धन हेतु कार्य करेंगे तो अप्रत्यक्ष रूप से यह हमारी मातृभाषा की सेवा कहलाएगी, इसी के साथ हम अपनी भाषा के अपनी मातृभूमि के भावों, लोक परंपराओं, लोक कथाओं एवं लोक संगीत को एक सुदृढ़ संरक्षण प्रदान कर सकने में सक्षम होंगे।

हमारे लोकगीत ना सिर्फ हमारी क्षेत्रीयता को दर्शाते हैं, अपितु लोकगीतों में हमारी पौराणिक परंपराएँ रीति-रिवाज निबंध होते हैं, जिनका संक्षरण एवं संवर्धन करना हमारा परम दायित्व है। लोकगीत ना सिर्फ हमारी लोक परंपरा को दर्शाते हैं, अपितु उनमें छिपे हुए अनगिनत भाव हमारे लिए अत्याधिक मूल्यवान हैं, जिन्हें संरक्षण प्रदान करना जिनके बारे में सोचना और समाज के सामने उनके महत्वों को उजागर करना हमारा परम दायित्व बनता है।

नित नवीन ऊँचाइयों को छूते इस समाज में दूषित मानसिकताओं के चलते, हमारी लोक परंपराओं और रीति-रिवाजों को रूढ़िवादी नाम से अलंकृत किया जाने लगा है, जिसके परिणाम स्वरूप इनका वर्चस्व एवं वास्तविकता दोनो ही विलुप्त होती सी दिखाई देती है। वर्तमान समय में अत्याधिक कम लोग हैं जो अपनी इन परंपराओं और अपनी बोली के लिए सामने आना चाहते हैं, इनमें से कुछ लोग ऐसे भी हैं जो लोकगीतों को दबी कुचली और पुरानी सभ्यता का ढांचा समझते हैं और पश्चात् संस्कृत को विकास क्रम की सीढ़ी का नाम देते हैं। इन्हीं तमाम मानसिकताओं के चलते,

लोकगीतों को आज संरक्षण एवं संवर्धन की नितांत आवश्यकता है। अपनी लोक परंपरा एवं अनगिनत रीति-रिवाजों स्वरूप लोकगीतों को एक संवर्धन एवं संरक्षण प्रदान करना हमारा परम दायित्व बनता है।

हमारी लोक परंपराएँ जो कि लोकगीतों की पर्याय है। उनके विलुप्त होते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में लोकगीतों के अध्ययन की नितांत आवश्यकता परिलक्षित होती है। क्योंकि अगर हमारी लोक परंपराओं को जीवित रखना है तो उन लोग परंपराओं को जीवित रखने का मूल स्रोत हमारे लोकगीत ही है। लोकगीत ना सिर्फ परंपराओं की जननी है अपितु लोकगीत साहित्य एवं संगीत से हमारा सीधा संबंध स्थापित करने का कार्य भी करते हैं, लोकगीतों में जहां एक तरफ प्रत्येक शब्द का अलौकिक अर्थ है, वहीं संगीत का माधुर्य भी परिलक्षित होता है।

अतः इतने अधिक गुणों के परिणामस्वरूप हमारे लोकगीत एवं लोक परंपराएँ जैसे विलुप्त होती जा रही हैं, परिणामस्वरूप वर्तमान समय में अगर संरक्षण नहीं प्रदान किया गया तो वह पूर्णं रूप से विलुप्त हो जाएंगी। लोकगीतों के महत्व को बनाए रखने के उद्‌देश्य से वर्तमान समय में शोध कार्य का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इन्हीं सब कारणों के चलते शोध कार्य का विषय लोकगीतों पर रखा जा रहा है।

हरियाणवी सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से लोक गीतों को बल प्रदान करने के उद्‌देश्य से शोध कार्य पूर्ण किया गया, जिसके परिणम स्वरूप लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन को बल प्राप्त होगा। उक्त शोध कार्य के माध्यम से लोकगीतों की प्रतिष्ठा के प्रतिपक्ष में लोकपक्ष की महत्ता को बल प्रस्तुत करने का कार्य किया गया।

लोकगीतों के अध्ययन के माध्यम से लोक परंपराओं और रीति-रिवाजों सहित उनकी भाव प्रधानता को संरक्षण प्राप्त है। लोकगीतों के प्रकारों, लोकगीतों के भावों एवं लोकगीतों की विशेषताओं को रेखांकित कर उन्हें संरक्षित करने का कार्य किया। हरियाणवी लोक कला ही नहीं अपितु हरियाणा की प्राचीन सभ्यता को भी संरक्षण

प्रदान करने का कार्य किया है जो आने वाली पीढ़ी के लिए अत्यधिक प्रेरणादाई एवं पथग्राही साबित होगा।

हरियाणवी लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन को ध्यान में रखते हुए, हरियाणवी लोकगीतों में पुनः प्राण प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से यह शोध कार्य किया जा रहा है। जिससे की हमारी लोक परंपराओं एवं सभ्यताओं को संरक्षण एवं बल प्राप्त हो सके और हमारी लोकगीतों के माध्यम से हमारी पौराणिक सभ्यता जीवित रह सके। इस अध्ययन के साथ ही साथ हरियाणवी लोकगीतों की प्रमुख धारा को हिन्दी से जोड़ते हुए हरियाणवी लोकगीतों की विकास यात्रा को भी विवेचित करने एवं विश्लेषण करने का प्रयास होगा।

अध्याय की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने छः अध्याय में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में हरियाणवी लोकगीत : परिचयात्मक पृष्ठभूमि इसके अन्तर्गत लोक का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप, लोक साहित्य, लोक साहित्य की विधाए- लोक कथाएँ, लोकगीत, लोकगाथा एवं लोकनाट्य, लोकगीत का अर्थ एवं परिभाषा, लोकगीत की विशेषताएँ, लोकगीतों का वर्गीकरण, लोकगीत का महत्व, हरियाणवी लोकगीतों का जन्म, हरियाणवी लोक गीतों का इतिहास का अध्ययन किया गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज व परिवेश में उसका जन्म होता है वह समाज को अंगीकृत कर उसी के अनुरूप अपने जीवन अपने आचार–विचार व्यवहार व संस्कृति में अपने आप को ढाल देता है। विकास के सोपान पर कदम रखते हुए उसे अपने समाज के साथ–साथ अन्य सामाजिक जीवन को भी देखने का अवसर मिलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के मध्य उसे अंदर एक द्वंद्व की सी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। यही द्वंद्व उस व्यक्ति के जीवन में उथल–पुथल मचाता है और इसका

परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति उसके रहस्य को जानना चाहता है। उसमें अपने समाज संस्कृति और मान्यताओं आदि को समझने व परखने की जिज्ञासा पैदा होती है। लोक साहित्य वह स्रोत है जिसके माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक अंतरधाराओं की तरलता का एहसास किया जा सकता है।

लोक साहित्य प्रायः लिखित होता है। इसके रचयिता का नाम भी प्रायः अज्ञात रहता है। हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक एवं परंपरागत होता है तथा यह लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। विश्वामित्र उपाध्याय के अनुसार–''मनुष्य अपने जीवन में सुख–दुःख का जो अनुभव करता है; अपने परिवेश तथा प्रकृति में जो कुछ देखता है; उससे सहज रूप में उत्पन्न भावों को वह अपनी वाणी तथा हाव–भाव से अभिव्यक्त करता है। साधारण जन अपने मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालने वाले घटना के बारे में गाकर; नाच कर या रोकर अपनी रागात्मक भावनाओं को प्रकट करते हैं; यह उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। मानव आदिकाल से अपनी रागात्मक भावनाओं की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों के द्वारा करता गया है! जनसाधारण की यह स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''

किसी स्थान का लोक साहित्य वहाँ की लोक संस्कृति का दर्पण होता है। मनुष्य जाति की भाषा उनकी संस्कृति धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य, सभ्यता आदि का अवलोकन मनुष्य के लोक साहित्य के द्वारा ही किया जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी हमारी मनुष्य जाति। जन जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है। वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश तथा समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोग समाज है।

डॉक्टर सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें

आदिमानव के अवशेष उपलब्ध हो। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप से झलकती है।

''लोक साहित्य'' शब्द 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। यह अंग्रेजी के अनुकरण पर आया है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिटरेचर' का अर्थ 'साहित्य'। इसी लोक साहित्य का अर्थ है। ''किसी काल विशेष का न होकर युग–युग से चला आया हुआ वह साहित्य, जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।''

लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जिसे लिपिबद्ध करने का यह प्रयत्न सदैव ही अपूर्व रहेगा। उसमें जन–मन के असंख्य उद्गार प्रकट होते हैं, जिसको लिपिबद्ध करना कठिन है। इस संदर्भ में चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घाटोयो नीर, कबीर की उक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक छाप हुआ करती हैं, जो उसके लिखित, मौखिक साहित्य के अनेक रूपों में झलक उठती है। इस प्रकार लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है, आवेग के क्षणों में जन–मन में निस्सृत अकृत्रिम भावपूर्ण अभिव्यक्ति जो अपना रूपाकार स्वयं निर्धारित करता है, लोक साहित्य है।

लोक साहित्य का निर्माण अपने आप ही हो जाता है। जब जन साहित्य की रचना अचानक होती है। लोक साहित्य का अर्थ वह सामान्य जन समूह है। जो अपनी जन जात प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति में कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोक साहित्य के विषय में डॉक्टर भीम सिंह मलिक कहते हैं–''पान के पुनः–पुनः चबाने से, गन्ने की पोर–पोर के रस में तथा महाभारत की कथा श्रवन में जो मजा बार–बार आता है वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त है।''

लोक साहित्य का क्षेत्र बहूत व्यापक है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है और जन समुदाय तक इसका प्रचार–प्रसार होता है, लोक

साहित्य एक ऐसा शास्त्र है, जिसने अपने अंतर्गत कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किया हुआ है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। लोक साहित्य के गुढ अर्थ को सहजता से समझने के लिए हिन्दी साहित्य कोश के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने घड़ी हो, पर आज इसे सामान्य लोग समूह अपनी ही मानवता है, और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी कारण जिसके किसी किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलती है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोग का अपना है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।''

अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी व्यक्ति के समाज व उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, किसी समाज के लोक साहित्य से उस समाज के व्यक्ति के चरित्र को भली भांति समझा जा सकता है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है, जो चाहे किसी भी विशेष समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उपजा हो या चाहे वह कहीं भी पल्लवित तथा पुष्पित हुआ हो, उसकी सुगंध दूसरे लोक में फैल ही जाती है, क्योंकि लोक का संबंध केवल भौतिक नहीं होता बल्कि अत्यधिक आत्मिक होता है। तथा प्रकृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की भूमिका ठीक उसी तरह से होती है जिस तरह से किसी कारखाने में मशीन व बिजली की होती है। प्रकृति यदि किसी कारखाने की मशीन है, तो आत्मा उस में बिजली की भूमिका अदा करती है, प्रकृति किसी मशीन की तरह विशिष्ट पहचान व

नए–नए आयाम देती हैं तथा आत्मा इसे बिजली की तरह न केवल ऊर्जावान व प्रकाशमान ही बनाती है, वरन् इसमें अलौकिक सुख का अहसास भी कराती है, यदि लोक से प्रकृति को हटा दें तो साहित्य व लोक साहित्य में कहीं भी भिन्नता नजर नहीं आएगी। सर्वत्र एक जैसा ही स्वरूप दिखाई देगा। ठीक इसी तरह से बिना अध्यात्मिक सुगंध के वह नीरस व बेजान भी नजर लग सकता है। इसलिए लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की विशेष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार से बिना बिजली की मशीन निष्प्राण है, ठीक उसी तरह बिना आत्मा के प्रकृति का आनंद नहीं उठाया जा सकता।

द्वितीय अध्याय में जन्म एवं मृत्यु संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ ही संस्कार, अर्थ, परिभाषा, समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कार, जन्म संस्कार संबंधित लोकगीतों की परिभाषा जैसे- ओजणा गीत, सोहर गीत, प्रसव गीत, भेली गीत, छठी गीत, नेग गीत, कुआँ पूजन गीत, पालना गीत, लोरी गीत का अध्ययन किया गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज व परिवेश में उसका जन्म होता है वह समाज को अंगीकृत कर उसी के अनुरूप अपने जीवन अपने आचार–विचार व्यवहार व संस्कृति में अपने आप को ढाल देता है। विकास के सोपान पर कदम रखते हुए उसे अपने समाज के साथ–साथ अन्य सामाजिक जीवन को भी देखने का अवसर मिलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के मध्य उसे अंदर एक द्वंद्व की सी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। यही द्वंद्व उस व्यक्ति के जीवन में उथल–पुथल मचाता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति उसके रहस्य को जानना चाहता है। उसमें अपने समाज संस्कृति और मान्यताओं आदि को समझने व परखने की जिज्ञासा पैदा होती है। लोक साहित्य वह स्रोत है जिसके माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक अंतरधाराओं की तरलता का एहसास किया जा सकता है।

लोक साहित्य प्रायः लिखित होता है। इसके रचयिता का नाम भी प्रायः अज्ञात रहता है। हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक एवं परंपरागत होता है तथा यह लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। विश्वामित्र उपाध्याय के अनुसार–''मनुष्य अपने जीवन में सुख–दुःख का जो अनुभव करता है; अपने परिवेश तथा प्रकृति में जो कुछ देखता है; उससे सहज रूप में उत्पन्न भावों को वह अपनी वाणी तथा हाव–भाव से अभिव्यक्त करता है। साधारण जन अपने मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालने वाले घटना के बारे में गाकर; नाच कर या रोकर अपनी रागात्मक भावनाओं को प्रकट करते हैं; यह उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। मानव आदिकाल से अपनी रागात्मक भावनाओं की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों के द्वारा करता गया है! जनसाधारण की यह स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''

किसी स्थान का लोक साहित्य वहाँ की लोक संस्कृति का दर्पण होता है। मनुष्य जाति की भाषा उनकी संस्कृति धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य, सभ्यता आदि का अवलोकन मनुष्य के लोक साहित्य के द्वारा ही किया जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी हमारी मनुष्य जाति। जन जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है। वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश तथा समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोग समाज है।

डॉक्टर सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिमानव के अवशेष उपलब्ध हो। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप से झलकती है।

''लोक साहित्य'' शब्द 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। यह अंग्रेजी के अनुकरण पर आया है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिटरेचर' का अर्थ

'साहित्य'। इसी लोक साहित्य का अर्थ है। ''किसी काल विशेष का न होकर युग–युग से चला आया हुआ वह साहित्य, जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।''

लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जिसे लिपिबद्ध करने का यह प्रयत्न सदैव ही अपूर्व रहेगा। उसमें जन–मन के असंख्य उद्‌गार प्रकट होते हैं, जिसको लिपिबद्ध करना कठिन है। इस संदर्भ में चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घाटोयो नीर, कबीर की उक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक छाप हुआ करती हैं, जो उसके लिखित, मौखिक साहित्य के अनेक रूपों में झलक उठती है। इस प्रकार लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है, आवेग के क्षणों में जन–मन में निस्सृत अकृत्रिम भावपूर्ण अभिव्यक्ति जो अपना रूपाकार स्वयं निर्धारित करता है, लोक साहित्य है।

लोक साहित्य का निर्माण अपने आप ही हो जाता है। जब जन साहित्य की रचना अचानक होती है। लोक साहित्य का अर्थ वह सामान्य जन समूह है। जो अपनी जन जात प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति में कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोक साहित्य के विषय में डॉक्टर भीम सिंह मलिक कहते हैं–''पान के पुनः–पुनः चबाने से, गन्ने की पोर–पोर के रस में तथा महाभारत की कथा श्रवन में जो मजा बार–बार आता है वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त है।''

तृतीय अध्याय में विवाह संस्कार संबंधी लोकगीतों की समीक्षात्मक अध्ययन के साथ वर खोजणा गीत, सगाई गीत, बान गीत, बन्ना गीत, भात गीत, मेहन्दी गीत, सेहरा बांधना आदि का उल्लेख किया गया है।

लोक साहित्य का क्षेत्र बहूत व्यापक है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है और जन समुदाय तक इसका प्रचार–प्रसार होता है, लोक साहित्य एक ऐसा शास्त्र है, जिसने अपने अंतर्गत कई शास्त्रों और एक बड़े

इतिहास को समाहित किया हुआ है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। लोक साहित्य के गुढ अर्थ को सहजता से समझने के लिए हिन्दी साहित्य कोश के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने घड़ी हो, पर आज इसे सामान्य लोग समूह अपनी ही मानवता है, और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी कारण जिसके किसी किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलती है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोग का अपना है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।''

अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी व्यक्ति के समाज व उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, किसी समाज के लोक साहित्य से उस समाज के व्यक्ति के चरित्र को भली भांति समझा जा सकता है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है, जो चाहे किसी भी विशेष समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उपजा हो या चाहे वह कहीं भी पल्लवित तथा पुष्पित हुआ हो, उसकी सुगंध दूसरे लोक में फैल ही जाती है, क्योंकि लोक का संबंध केवल भौतिक नहीं होता बल्कि अत्यधिक आत्मिक होता है। तथा प्रकृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की भूमिका ठीक उसी तरह से होती है जिस तरह से किसी कारखाने में मशीन व बिजली की होती है। प्रकृति यदि किसी कारखाने की मशीन है, तो आत्मा उस में बिजली की भूमिका अदा करती है, प्रकृति किसी मशीन की तरह विशिष्ट पहचान व नए–नए आयाम देती हैं तथा आत्मा इसे बिजली की तरह न केवल ऊर्जावान व

प्रकाशमान ही बनाती है, वरन् इसमें अलौकिक सुख का अहसास भी कराती है, यदि लोक से प्रकृति को हटा दें तो साहित्य व लोक साहित्य में कहीं भी भिन्नता नजर नहीं आएगी। सर्वत्र एक जैसा ही स्वरूप दिखाई देगा। ठीक इसी तरह से बिना अध्यात्मिक सुगंध के वह नीरस व बेजान भी नजर लग सकता है। इसलिए लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की विशेष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार से बिना बिजली की मशीन निष्प्राण है, ठीक उसी तरह बिना आत्मा के प्रकृति का आनंद नहीं उठाया जा सकता।

लोक साहित्य में लोक कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के जन्म के साथ ही लोक कथा का उद्‌य हुआ। मनुष्यों में कहानी कहने और सुनने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। नानी व दादी के मुख से कहानियाँ सुनने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। लोक कथा में जीवन के सुख–दुःख, रीति–रिवाज, आस्था एवं विश्वास की परंपरा भी अभिव्यक्त होती है। लोक कथाओं का मौखिक रूप अधिक प्राप्त होता है। जो पूरे विश्व में व्याप्त है। लोक कथा किसी मानव समूह की वह सांझी अभिव्यक्ति है जो कथाओं, कहावतों, चुटकुलों आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है। लोक कथाएँ वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोक कथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण हैं। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं।

चतुर्थ अध्याय में भक्ति एवं ऋतु संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ सावन गीत, तीज के गीत, होली के गीत, बसंत पंचमी के गीत, भक्ति गीत एवं देवी-देवताओं आदि का उल्लेख किया गया है।

लोकगीतों की भांति लोककथाएँ भी हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त है। दादी अथवा नानी के पास बैठकर बचपन में जो कहानियाँ सुनी जाती है, चौपालों में इनका निर्माण कब, कहाँ कैसे और किसके द्वारा हुआ, यह बताना असंभव है। यद्यपि दादी–नानी से ज्यादा कहानियाँ दादा–नाना सुनाते हैं लेकिन फिर भी दादी–नानी को ही ज्यादा महता देना भी विरासत में चली आ रही परिपाटी का ही परिणाम है।

इस प्रकार भारतीय समाज में लोक कथाएँ परंपरागत रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार की लोक कथाएँ भारतीय समाज में प्रचलित है। जिसमें परियों की कथा, पौराणिक कथा, विभिन्न व्रत तथा त्योहारों की कथा, दंत कथाएँ, बोध कथाएँ, नाग कथा आदि लोक कथाएँ साहित्य में प्रचूर मात्रा में मिलती है। लोक कथाएँ जीवन की व्यापकता को समेटे हुए होती हैं। इनमें मानव जीवन के विभिन्न पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। लोक कहानी लोक साहित्य के एक बहूत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती है। इस विषय मैं डॉक्टर राजवीर धनखड़ 'हरियाणा के लोक साहित्य में जीवन दर्शन' पुस्तक में लिखते हैं–''लोक कथा का प्राचीनतम रूप वैदिक काल में प्राप्य है। पंचतंत्र, हितोपदेश, व्रत कथा, बेताल पंचविशतिका, जातक एवं जैन कथाएँ अपने उद्देश्यों को लेकर सामान्य जन का मनोरंजन करने तथा उन्हें सदुपदेश देने का कार्य करती रही है। भगवान का रहस्य जानने तथा मनोरंजन के उद्देश्य में इन कहानियों की रचना होती रही है। इन कहानियों में राजा रानी की कहानी, भूत प्रेत, परी की कहानी पशु–पक्षियों की कहानी, देवी–देवताओं, धार्मिक विषयों की कहानी, इतिहास पुराण की कहानी आदि है।''

''लोकगाथा एक ऐसा लोकरंजन प्रधानात्मक गीत है जिसमें गेयता के साथ कथानक भी प्रधानता होती है। इसलिए इसे कहीं पर कथागीत तो कहीं पर गीतकथा कहा गया है। यद्यपि लोकगाथा की गणना लोकगीतों में ही होती है। लोकगाथाओं में युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का पुट अधिक पाया जाता है। अतः लोक गाथाएँ वें काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास

है। अथवा जिन्हें काल क्रम में ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की कुछ घटनाएँ जो कोरी कल्पनाजन्य है वे आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती है। लोकगाथाओं को अवदान, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया गया है। राजस्थानी में इसे रूयात नाम में जाना जाता है। लोक गाथाएँ दो रूप में मिलती है– एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं, जिन्हें वीर कथा कहा जा सकता है। इन्हें ही पंवारा भी कहते हैं यथा जगदेव का पंवारा। इसमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे साके ये उन पुरुषों के शौर्य में से संबंधित है जिनके प्रति इतिहास साक्षी है। साके में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।''

लोक जीवन में अनेक सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर खेल तमाशे किये जाते हैं। जिनमें से कुछ का सम्बन्ध नृत्यगीत और अभिनव से होता है उसे लोकनाट्य कहते हैं। हरियाणा की लोकनाट्य परम्परा प्राचीन है इसमें साँग, रामलीला, घोड़ी बाजा यहाँ की नाट्य परम्परा की प्रमुख कड़ियाँ हैं। 'साँग' तो हरियाणा की नाट्य परम्परा का सिरगौर है। इसे यहाँ ''कौमी नाटक'' भी कहा जाता है। यह अभिनयात्मक है इसके अभिनय के लिए व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार की सामग्री या पूर्व–निर्धारित योजना की आवश्यकता नहीं होती। इसके अभिनय प्रदर्शन के लिए एक खुली जगह पर ही कोई भी तख्त बिछाकर इसका गंचन किया जा सकता है। इसके पात्र खुले स्थान पर ही अपनी वेशभूषा में तैयार होकर प्रदर्शन करते हैं। हरियाणा की जनरजनकारी यह विधा गीत, संगीत एवं नृत्य की एक मनमोहक त्रिवेणी है। लम्बा 'कथा–गीत' साँग का प्राण है और यह एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। हरियाणा के लोक मानस को रस की जो परितृप्ति दीपचंद, सरूपचंद, लक्ष्मीचंद, मांगेराम, रामकिशन व्यास, धनपत और चंद्रलाल बादी आदि के साँगों में प्राप्त होती है। वह यहाँ के शिक्षित अशिक्षित किसी भी व्यक्ति से छिपी नहीं है।

पंचम अध्याय रोजमर्रा के कार्यों एवं व्रत संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ प्रभाती गीत, चक्की गीत, चरखा काटने के गीत, पनघट के गीत, शृंगार गीत एवं व्रत गीत का उल्लेख किया गया है।

लोकनाट्य लिखे नहीं जाते बल्कि रचे जाते हैं। इसी कारण इनकी भाषा सामाजिकता का पुट लिए हुए होती है। जो भी किस्से–कहानियाँ मानव समाज में सुनाई व दोहराई जाती है, वही किस्से लोकनाट्य का रूपधारण कर लेते हैं। इनका मूल उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करने के साथ–साथ समाज की अच्छाई व बुराई की तरफ भी लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है। लोकनाट्य जहाँ एक तरफ लोगों को हँसाने, उन्हें अपने अभिनय से गुदगुदाने का कार्य करते हैं वही दूसरी तरफ ये समाज की कुरूतियों पर तीखा व्यंग्य भी करते हैं। लोकनाट्यों में एक गुण यह भी होता है कि इनमें व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कुछ भी सुना देने की क्षमता विद्यमान होती है।

लोकगीत शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोक लोर' शब्द का हिन्दी पर्याय होता है। 'फोक' का अर्थ होता है, लोक तथा 'लोर' का अर्थ होता है, गाथा, विधा। हिन्दी साहित्य में फोक शब्द के लिए 'ग्राम' अथवा 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। परन्तु लोकगीत केवल ग्रामवासियों द्वारा ही नहीं गाए जाते अपितु नगर शहर में रहने वाले लोगों के द्वारा भी उतनी ही प्रसन्नता से गाए जाते हैं, जितना ग्रामवासी प्रसन्न होकर गाते हैं। लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है, जनमानस के गीत, जन–जन के गीत, जनमानस की आत्मा में रचा बसा गीत अर्थात् जो गीत संपत्ति की तरह विरासत में मिले हो वही लोकगीत हैं मौखिक परंपरा से संपन्न ये लोकगीत किसी जाति, समुदाय, राष्ट्र की सबसे बड़ी पहचान है।

लोक गीत शब्द 'लोक' तथा 'गीत' के सहयोग से बना है। जिसका सामान्य अर्थ है, जो गीत लोक से संबंध रखता हो वही लोकगीत है। अर्थात् लोक रचित एवं लोक प्रचलित गीत को ही लोकगीत की संज्ञा दी जाती है।

लोक में प्रचलित ऐसे गीत जिसके रचयिता अज्ञात होते हैं तथा लोक की भावनाओं को व्यक्त करते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से विकसित होते हैं।

लोक में प्रचलित असंख्य गीतों में कई गीत विशेष संस्कारों के अवसरों पर गाए जाते हैं। तो कुछ गीत ऋतुओं एवं व्रतो से जुड़े हुए हैं, विविध कार्य करते समय भी कुछ गीत गाए जाते हैं, ये गीत विभिन्न अवसरों पर समूह में मिलकर औरतों द्वारा गाए जाते हैं। लोकगीतों की उत्पत्ति मानव मन की अनुभूतियों का परिणाम है। इनका जन्म मानव हिमालय की गंगोत्री से हुआ है, जिस प्रकार हम मानव मन की अनुभूतियों उनके मनोभावों की उठने वाली ज्वार भाटा रूपी लहरों को रेखांकित नहीं कर सकते उसी प्रकार हम लोकगीतों को भी विविध प्रकार की सीमाओं में नहीं बांधा सकते। क्योंकि लोकगीतों की उत्पत्ति किसी विशेष या सुनियोजित उद्‌देश्य को लेकर नहीं हुई है, अपितु जीवन में आने वाली विविध प्रकार के रूपों के अनुसार उनके विभिन्न उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है, इसलिए लोकगीतों का वर्गीकरण विविध प्रकार के संस्कारों, कार्य क्षेत्रों, ऋतुओं परिकल्पनाओं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आधार पर करना तरक तर्क एवं युक्ति संगत है।

षष्ट अध्याय **विविध प्रकार के हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ धर्म गीत, पति-पत्नी संवाद गीत, मेलों के गीत, खेल गीत, तथा दोस्ती गीत का उल्लेख किया गया है।**

लोकगीत पश्चिम के गांव से तथा पूर्व के देशों में उपजते हैं, हिन्दी जगत में लोकगीतों का प्रथम दौर में 'ग्रामीण गीत' या 'ग्राम गीत' कहकर किया गया था। बाद में इन्हें लोकगीत की संज्ञा दी गई, हिन्दी में 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' की तर्ज पर स्वीकार किया गया। लेकिन क्षेत्र की दृष्टि से कभी है, यह शब्द ग्रामीण समाज के लिए प्रयुक्त हुआ, तो कभी विश्व आदिम जातियों के अर्थ में ग्रहित हुआ।

हमारे हिन्दू धर्म में सभी कार्य संस्कारों से भरे हुए हैं हिन्दू समाज में 16 संस्कारों का वर्णन किया गया है— गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म, कर्ण छेदन, विद्या आरम्भ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन विवाह, अन्त्येष्टि।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सोलह संस्कार मानव जीवन के पूर्ण विकास में आवश्यक है। पर आजकल इन संस्कारों में केवल तीन ही संस्कार प्रचलित हैं, जन्म, विवाह, मृत्यु। इन संस्कारों को गीतों के माध्यम से प्रचलित किया जाता है। इस प्रकार संस्कार गीत वे गीत हैं जो संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं, इनमें कुछ अनुष्ठान के अंग हैं, शेष मनोरंजन, हर्ष उल्लास, एवं आनंद की भावना से पूर्ण होते हैं। समाज में व्यक्ति के लिए जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत अवसर युक्त संस्कार निर्धारित किए गए हैं। संस्कार प्रधान देश होने के कारण भारत में हिन्दू शास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान है। इनमें जन्म, विवाह और मृत्यु पर अधिक गीत गाए जाते हैं, इन गीतों में पुत्रइच्छा, पुत्री अनिच्छा, गर्भधारण के बाद बहू रानी की इच्छा, प्रसव पीड़ा, ननद के उपहार, पीला ओढ़ाना, जच्चा के लिए व्यंजन, कन्या विवाह की चिंता, सुहाग, भात, उबटन, सेहरा, घोड़ी, बारात, छंद, कन्या विदाई, वधू आगमन पर बधाई और मृत्यु से संबंधित शोक गीत सम्मिलित किए गए हैं।

अंत में उपसंहार और परिशिष्ट में आधार ग्रंथ सूची, संदर्भ ग्रंथ सूची और पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख किया गया है।

समय के साथ—साथ कई संस्कार लुप्त हो गए हैं और इन संस्कारों का महत्व कम हो गया है। लोक वार्ता की दृष्टि से उपरोक्त 3 संस्कारों के अतिरिक्त, मुंडन, संस्कार का कुछ महत्व अतिविशिष्ट है। कर्ण छेदन और जनेऊ (यज्ञ पवित) आदि ऐसे संस्कार हैं, जो शास्त्रोंगत विधि विधान के साथ खड़े हैं। वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में संस्कारों के दो प्रकार प्रचलित हैं। एक शास्त्रीय स्वरूप को विधिपूर्वक मंत्र उच्चारण द्वारा ब्राह्मणों द्वारा किया

जाता है। संस्कारों के दूसरे स्वरूप को महिलाएँ ही सम्पन्न कर लेती हैं, महिलाएँ अपने लोकगीतों के द्वारा समाज की परंपराओं को ध्यान में रखते हुए हैं, संस्कारित गीतों को अपने कोमल कंठ से गीत गाकर जन–जन का मनोरंजन करती हैं, संस्कार गीत प्रसन्नता के अवसर पर खुशी प्रदान करते हैं, तो दुख के समय में शोकाकुल हो करुणामय दृश्य भी प्रस्तुत करती हैं।

शोध–निर्देशक

डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न,
जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

शोधार्थी

श्रवण कुमार
एम.ए. (हिन्दी)

अग्रेषित

प्रो. दिनेश कुशवाह
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

अध्याय-१

हरियाणवी लोकगीतों :

परिचयात्मक पृष्ठभूमि

हरियाणवी लोकगीतों : परिचयात्मक पृष्ठभूमि

लोक अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप :-

लोक साहित्य का अध्ययन, अध्यापन में सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि 'लोक क्या है'? इसे परिभाषित करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल 'हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन' में लिखते हैं, ''लोक क्या है? यह जो गाँवों और नगरों में, खेतों और कारखानों में, गिरी, कन्दराओं और मैदानों में, नदियों के मुहाने से लेकर पर्वत शिखरों तक, मधुमक्खी के छत्ते की तरह असंख्य जनता फैली है। वेदव्यास ने जिसके बारे में कहा था कि मैं तुम्हारे अत्यंत गुप्त रहस्य की बात बताता हूँ। इस दुनिया में सबसे बड़ा मनुष्य है, उससे बड़ा कोई नहीं। चण्डीदास ने जिसके बारे में गाया 'सुनाह मानुष भाई, सवार ऊपर मानुष सत्य ताहर, ऊपर नाहीं। हे भाई सुनों! मनुष्य से बड़ा और कोई सत्य नहीं है।''[1]

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने धातु में 'धञ' प्रत्यय लगाने से बना है। इस धातु का अर्थ है देखना जिसका लट्लकार में अन्य पुरुष एकवचन का रूप लोकते हैं। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ– देखने वाला। इसलिए वह समस्त समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा।[2]

लोक मानव जीवन का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता समाज और पाण्डित्य की चेतना से शून्य है यह एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक से अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं।

''शब्दकोशों में 'लोक' शब्द के अनेक अर्थ हैं। जिनमें से साधारणतया दो अर्थ अधिक प्रचलित है एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का

---

[1] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन, पृष्ठ संख्या–21

[2] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–10

ज्ञान होता है, दूसरा अर्थ जनसामान्य है इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का 'वाचक' लोक शब्द साहित्य का विशेषण है किन्तु इतने में लोक का वह अभिप्राय प्रकट नहीं हो पाता जो साहित्य विशेष के रूप में वह प्रदान करता है।''[3] अर्थात् लोक एक प्रकार से साहित्यिक संस्कारों से अनभिज्ञ होता है। लोक साहित्य को लोकवार्ता का ही एक अंग माना जा सकता है। लोक साहित्य को लोक संस्कृति के प्रौढ़ रूप में भी समझा जा सकता है। लोक में समस्त जन समुदायों का आविर्भाव होता है।

'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। उपनिषदों में अनेक स्थानों में लोक शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में कहा गया है कि लोक अनेक प्रकार में फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में वह प्रभूत व व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह जान सकता है? साधारण जनता के अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध है।[4]

ऋग्वेद की अन्य सूक्ति में लोक व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, यथा–

नाम्या आसीदंतरिक्ष शीर्ष्णों द्यौं समवर्तत्।

पद्म्यां भूगिर्द्दिशः श्रोता, तथा लोकां अकल्पयत्।

अर्थात् भगवान की नाभि से अन्तरिक्ष की सृष्टि हुई। उनके मस्तक से स्वर्ग उत्पन्न हुआ। उनके चरणों से भूमि की सृष्टि हुई। उनके कान से दिशायें उत्पन्न हुई तथा सारे लोकों का निर्माण हुआ।''[5]

भारत में जब आर्यों का आगमन हुआ तब आर्य एवं आर्येत्तर जातियों के बीच 'वेद' और वेदेत्तर स्थिति का आविर्भाव हुआ। उस दशा में 'लोक' शब्द का

---

[3] धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ संख्या–686
[4] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–10
[5] डॉ. सरोजनी रोहतगी, अवधी का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–01

प्रयोग वेदेत्तर अथवा 'शास्त्रेत्तर' के लिए होने लगा। यहाँ 'लोक' शब्द वेद विरोधी अर्थ का सूचक है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' शब्द संस्कृति की संकुचित सीमा तोड़कर ऊँचा उठ गया। वेद के तुल्य ही शब्द अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अधिकारी हो गया।[6]

लोक शब्द अंग्रेजी के 'Folk' का पर्याय होते हुए भी उसकी संकुचित भावना से सर्वथा युक्त है और उसका प्राचीन रूप पूर्व में हमारे यहाँ प्राप्त होता है जिसमें संस्कृति और परिष्कृत प्रभावों से मुक्त पुरातन जीवन के दर्शन होते हैं एवं जिसका अपना निश्चित स्वरूप उपलब्ध होता है। साहित्य में लोक शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। कुछ विद्वानों ने 'लोक' को जन का पर्यायवाची माना है तो कुछ ने 'ग्राम' या 'नगर' की सीमित परिधि के अन्तर्गत बांधा है। कुछ विद्वान अशिक्षित और अल्पसभ्य व्यक्तियों के वर्ग को लोक के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु हमारे दृष्टिकोण में 'लोक' शब्द की व्याप्ति में नगर–गाँव आदि सब कुछ आ जाता है। इसे नगर या गाँव की सीमित परिधि के अन्तर्गत बॉधना उचित नहीं है और न ही इसे जन का पर्याय मानना भी उचित है। ग्राम या जन शब्द लोक के समक्ष संकुचित अर्थ एवं क्षेत्र वाले प्रतीत होते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि ''लोक मानव समाज का वह वर्ग है, जो अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति आस्थावान है, वह आधुनिक सभ्यता एवं कृत्रिमता से दूर अपनी प्राचीन संस्कृति, मान्यताओं एवं परम्पराओं को नहीं तोड़ता। वास्तव में लोक वही है जिसमें युग की मनोवृत्तियों के कुछ न कुछ अवशेष उपलब्ध हो।''

1.1.1) लोक की परिभाषा एवं स्वरूप :–

[6] विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या–40

लोक शब्द अत्यंत प्राचीन शब्द है। अनेक विद्वानों ने अपने मतानुसार 'लोक' शब्द को परिभाषित किया है–

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के अनुसार, ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है। बल्कि नगरों व ग्रामों में फैली वह समूची जनता है जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।''[7]

वासुदेव शरण अग्रवाल का लोक के बारे में विचार है, ''लोक हमारे जीवन का समुद्र है, उसमें भूत–भविष्य वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है, वह राष्ट्र का अमर स्वरूप है, कृत्स्व ज्ञान और सम्पूर्ण अध्याय में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन में मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक और लोक की धात्री सर्वभूतरता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव यही हमारे नए जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी और मानव इस त्रिलोकी जीवन का कल्याणात्मक रूप है।''[8]

लोक को परिभाषित करते हुए डॉ. सत्येन्द्र ने लिखा है–''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार में शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''[9]

---

[7] डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद, वर्ष अंक–1, पृष्ठ संख्या–65
[8] विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या–40
[9] डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ संख्या–03

कुंजबिहारी दास ने लोक के बारे में यह परिभाषा दी है–''लोकगीत लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य अवस्था में निवास करते हैं।''[10]

1.1.2) लोक साहित्य :–

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज व परिवेश में उसका जन्म होता है वह समाज को अंगीकृत कर उसी के अनुरूप अपने जीवन अपने आचार–विचार व्यवहार व संस्कृति में अपने आप को ढाल देता है। विकास के सोपान पर कदम रखते हुए उसे अपने समाज के साथ–साथ अन्य सामाजिक जीवन को भी देखने का अवसर मिलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के मध्य उसे अंदर एक द्वंद्व की सी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। यही द्वंद्व उस व्यक्ति के जीवन में उथल–पुथल मचाता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति उसके रहस्य को जानना चाहता है। उसमें अपने समाज संस्कृति और मान्यताओं आदि को समझने व परखने की जिज्ञासा पैदा होती है। लोक साहित्य वह स्रोत है जिसके माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक अंतरधाराओं की तरलता का एहसास किया जा सकता है।[11]

लोक साहित्य प्रायः लिखित होता है। इसके रचयिता का नाम भी प्रायः अज्ञात रहता है। हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक एवं परंपरागत होता है तथा यह लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। विश्वामित्र उपाध्याय के अनुसार–''मनुष्य अपने जीवन में सुख–दुःख का जो अनुभव करता है; अपने परिवेश तथा प्रकृति में जो कुछ देखता है; उससे सहज रूप में उत्पन्न भावों को वह अपनी वाणी तथा हाव–भाव से अभिव्यक्त करता है। साधारण जन अपने मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालने वाले घटना के बारे में गाकर; नाच

[10] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–12
[11] हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन डॉक्टर राजेश्वर उनियाल, पृष्ठ संख्या–11

कर या रोकर अपनी रागात्मक भावनाओं को प्रकट करते हैं; यह उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। मानव आदिकाल से अपनी रागात्मक भावनाओं की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों के द्वारा करता गया है! जनसाधारण की यह स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''[12]

किसी स्थान का लोक साहित्य वहाँ की लोक संस्कृति का दर्पण होता है। मनुष्य जाति की भाषा उनकी संस्कृति धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य, सभ्यता आदि का अवलोकन मनुष्य के लोक साहित्य के द्वारा ही किया जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी हमारी मनुष्य जाति। जन जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है। वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश तथा समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोग समाज है।

डॉक्टर सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिमानव के अवशेष उपलब्ध हो। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप से झलकती है।

''लोक साहित्य'' शब्द 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। यह अंग्रेजी के अनुकरण पर आया है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिटरेचर' का अर्थ 'साहित्य'। इसी लोक साहित्य का अर्थ है। ''किसी काल विशेष का न होकर युग–युग से चला आया हुआ वह साहित्य, जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।''

लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जिसे लिपिबद्ध करने का यह प्रयत्न सदैव ही अपूर्व रहेगा। उसमें जन–मन के असंख्य उद्‌गार प्रकट होते हैं, जिसको लिपिबद्ध करना कठिन है। इस संदर्भ में चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घाटोयो

---

[12] हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन डॉक्टर राजेश्वर उनियाल, पृष्ठ संख्या–26

नीर, कबीर की उक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक छाप हुआ करती हैं, जो उसके लिखित, मौखिक साहित्य के अनेक रूपों में झलक उठती है। इस प्रकार लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है, आवेग के क्षणों में जन–मन में निस्सृत अकृत्रिम भावपूर्ण अभिव्यक्ति जो अपना रूपाकार स्वयं निर्धारित करता है, लोक साहित्य है।[13]

लोक साहित्य का निर्माण अपने आप ही हो जाता है। जब जन साहित्य की रचना अचानक होती है। लोक साहित्य का अर्थ वह सामान्य जन समूह है। जो अपनी जन जात प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति में कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोक साहित्य के विषय में डॉक्टर भीम सिंह मलिक कहते हैं–''पान के पुनः–पुनः चबाने से, गन्ने की पोर–पोर के रस में तथा महाभारत की कथा श्रवन में जो मजा बार–बार आता है वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त है।''[14]

लोक साहित्य का क्षेत्र बहूत व्यापक है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है और जन समुदाय तक इसका प्रचार–प्रसार होता है, लोक साहित्य एक ऐसा शास्त्र है, जिसने अपने अंतर्गत कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किया हुआ है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। लोक साहित्य के गुढ अर्थ को सहजता से समझने के लिए हिन्दी साहित्य कोश के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने घड़ी हो, पर आज इसे सामान्य लोग समूह अपनी ही मानवता है, और

---

[13] डॉ. कृष्णचंद्र शर्मा, लोक साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ संख्या–57
[14] डॉ. भीम सिंह मलिक, हरियाणा लोक साहित्य : संस्कृति दिग्दर्शन, पृष्ठ संख्या–76

जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी कारण जिसके किसी किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलती है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोग का अपना है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।''[15] अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी व्यक्ति के समाज व उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, किसी समाज के लोक साहित्य से उस समाज के व्यक्ति के चरित्र को भली भांति समझा जा सकता है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है, जो चाहे किसी भी विशेष समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उपजा हो या चाहे वह कहीं भी पल्लवित तथा पुष्पित हुआ हो, उसकी सुगंध दूसरे लोक में फैल ही जाती है, क्योंकि लोक का संबंध केवल भौतिक नहीं होता बल्कि अत्यधिक आत्मिक होता है। तथा प्रकृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की भूमिका ठीक उसी तरह से होती है जिस तरह से किसी कारखाने में मशीन व बिजली की होती है। प्रकृति यदि किसी कारखाने की मशीन है, तो आत्मा उस में बिजली की भूमिका अदा करती है, प्रकृति किसी मशीन की तरह विशिष्ट पहचान व नए–नए आयाम देती हैं तथा आत्मा इसे बिजली की तरह न केवल ऊर्जावान व प्रकाशमान ही बनाती है, वरन् इसमें अलौकिक सुख का अहसास भी कराती है, यदि लोक से प्रकृति को हटा दें तो साहित्य व लोक साहित्य में कहीं भी भिन्नता नजर नहीं आएगी। सर्वत्र एक जैसा ही स्वरूप दिखाई देगा। ठीक इसी तरह से बिना अध्यात्मिक सुगंध के वह नीरस व बेजान भी नजर लग सकता है। इसलिए लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की विशेष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार से बिना बिजली की मशीन निष्प्राण है, ठीक उसी तरह बिना आत्मा के प्रकृति का आनंद नहीं उठाया जा सकता।[16]

1.1.3) लोक साहित्य की विधाएँ :–

[15] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–271
[16] हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन, पृष्ठ संख्या–34

लोक कथा :–

लोक साहित्य में लोक कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के जन्म के साथ ही लोक कथा का उद्‌य हुआ। मनुष्यों में कहानी कहने और सुनने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। नानी व दादी के मुख से कहानियाँ सुनने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। लोक कथा में जीवन के सुख–दुःख, रीति–रिवाज, आस्था एवं विश्वास की परंपरा भी अभिव्यक्त होती है। लोक कथाओं का मौखिक रूप अधिक प्राप्त होता है। जो पूरे विश्व में व्याप्त है। लोक कथा किसी मानव समूह की वह सांझी अभिव्यक्ति है जो कथाओं, कहावतों, चुटकुलों आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है। लोक कथाएँ वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोक कथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण हैं। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं।

लोकगीतों की भांति लोककथाएँ भी हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त है। दादी अथवा नानी के पास बैठकर बचपन में जो कहानियाँ सुनी जाती है, चौपालों में इनका निर्माण कब, कहाँ कैसे और किसके द्वारा हुआ, यह बताना असंभव है। यद्यपि दादी–नानी से ज्यादा कहानियाँ दादा–नाना सुनाते हैं लेकिन फिर भी दादी–नानी को ही ज्यादा महता देना भी विरासत में चली आ रही परिपाटी का ही परिणाम है।

इस प्रकार भारतीय समाज में लोक कथाएँ परंपरागत रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार की लोक कथाएँ भारतीय समाज में प्रचलित है। जिसमें परियों की कथा, पौराणिक कथा, विभिन्न व्रत तथा त्योहारों की कथा, दंत कथाएँ, बोध कथाएँ, नाग कथा आदि लोक कथाएँ साहित्य

में प्रचूर मात्रा में मिलती है। लोक कथाएँ जीवन की व्यापकता को समेटे हुए होती हैं। इनमें मानव जीवन के विभिन्न पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। लोक कहानी लोक साहित्य के एक बहूत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती है। इस विषय मैं डॉक्टर राजवीर धनखड़ 'हरियाणा के लोक साहित्य में जीवन दर्शन' पुस्तक में लिखते हैं–''लोक कथा का प्राचीनतम रूप वैदिक काल में प्राप्य है। पंचतंत्र, हितोपदेश, व्रत कथा, बेताल पंचविशतिका, जातक एवं जैन कथाएँ अपने उद्देश्यों को लेकर सामान्य जन का मनोरंजन करने तथा उन्हें सदुपदेश देने का कार्य करती रही है। भगवान का रहस्य जानने तथा मनोरंजन के उद्देश्य में इन कहानियों की रचना होती रही है। इन कहानियों में राजा रानी की कहानी, भूत प्रेत, परी की कहानी पशु–पक्षियों की कहानी, देवी–देवताओं, धार्मिक विषयों की कहानी, इतिहास पुराण की कहानी आदि है।''[17]

लोकगीत :–

लोक गीत लोक में प्रचलित संस्कृति मानवीय मूल्यों के संबंधों को उसी समाज के लोगों द्वारा सृजित किया जाता है। लोक गीत विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं। पीढ़ी–दर–पीढ़ी मौखिक रूप से रूपांतरित होते आए हैं। लोक गीतों को विभिन्न अवसरों रीति–रिवाजों में परंपरा के आधार पर विभिन्न प्रकार से गाया जाता है। जैसे विभिन्न ऋतुओं के गीत, व्रत–तीज–त्योहारों के गीत, संस्कार गीत, श्रम गीत आदि।

इस विषय में देवेन्द्र सत्यार्थी 'धरती गाती है' में लिखते हैं–

''कहाँ से आते हैं इतने गीत?'

स्मरण–विस्मरण की ऑख मिचौली है।

कुछ अट्हास से।

[17] डॉ. राजवीर धनखड़, हरियाणा के लोक साहित्य में जीवन दर्शन, पृष्ठ संख्या–10

कुछ उदास ह्रदय से।

कहाँ से आते हैं इतने गीत।

जीवन के खेत में उगते हैं,

वे सब गीत।

कल्पना भी अपना काम करती है,

रसवृत्ति और भावना भी,

नृत्य का हिलोरा भी,

पर वे सब है खाद।

जीवन के सुख, जीवन के दुःख, यह है लोकगीत के बीज।''

लोकगाथा :–

लोकगाथा लोकगीतों का ही एक रूप विशेष होती है। लोकगाथा की अभिव्यक्ति संगीत की तर्ज पर की जाती है। लोकगीतों में गेय तत्व प्रधान होता है, जबकि लोकगाथा में कथा प्रदान होती है। लोकगाथा लोकगीतों का विस्तृत रूप है। यह लोकगीतों की तुलना में अधिक सफल विधा मानी गई है। इसका आकार भी लोकगीतों की अपेक्षा विस्तृत है। लोकगीतों में जहाँ एक विषय वस्तु होती है, लेकिन लोकगाथा में घटनाएँ एवं अनुभूतियों का चित्रण किया जाता है। लोकगाथाओं में विभिन्न उपकथाएँ होती हैं, तथा विभिन्न रसों का समावेश होता है। लोकगाथाओं के उदाहरण स्वरूप–ढोला मारू की गाथा, हीर–रांझा की प्रेम गाथा तथा आल्हा–उदल की वीर गाथाएँ आदि सम्मिलित हैं। लोकगाथा के विषय में डॉक्टर शंकर लाल लिखते हैं–

''लोकगाथा एक ऐसा लोकरंजन प्रधानात्मक गीत है जिसमें गेयता के साथ कथानक भी प्रधानता होती है। इसलिए इसे कहीं पर कथागीत तो कहीं

पर गीतकथा कहा गया है। यद्यपि लोकगाथा की गणना लोकगीतों में ही होती है। लोकगाथाओं में युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का पुट अधिक पाया जाता है। अतः लोक गाथाएँ वें काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास है। अथवा जिन्हें काल क्रम में ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की कुछ घटनाएँ जो कोरी कल्पनाजन्य है वे आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती है। लोकगाथाओं को अवदान, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया गया है। राजस्थानी में इसे रूयात नाम में जाना जाता है। लोक गाथाएँ दो रूप में मिलती है– एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं, जिन्हें वीर कथा कहा जा सकता है। इन्हें ही पंवारा भी कहते हैं यथा जगदेव का पंवारा। इसमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे साके ये उन पुरुषों के शौर्य में से संबंधित है जिनके प्रति इतिहास साक्षी है। साके में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।''[18]

लोकगाथाओं को निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है–

1. वीर गाथा
2. प्रेम गाथा
3. रोमांचक गाथा[19]

लोक नाट्य :–

लोक साहित्य की अन्य विधा लोकनाट्य है। लोक का मनोरंजन करने वाली वह विधा जिसमें कथा वस्तु, पात्र, संवाद, नृत्य एवं अभिनय सभी समन्वित होकर लोकचेतना के विचारों को अभिव्यक्त, उद्वुद्ध एवं जाग्रत करने का गस्त कार्य करते हैं। उसे लोकनाट्य के अभिधान में अभिहित किया जाता है।

[18] डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–78
[19] डॉ. राजवीर धनखड़, हरियाणवी लोक गीतों में जीवन दर्शन, पृष्ठ संख्या–10

लोकनाट्य लोकभाषा में, लोकमानस का मनोरंजन करने के साथ–साथ उसे अपने वर्तमान, धरातल से ऊपर उठने के लिए समाज को प्रेरित करते हैं।

मानव की उत्पत्ति के साथ ही लोकनाट्य के उद्भव की कड़ी जुड़ी हुई है। लोकनाट्य, नाट्य परम्परा का मूल है। भारत ही नहीं, पूरे संसार में लोकनाट्य की परम्परा बरसों से चली आ रही है। प्रत्येक देश की लोकनाट्य की अपनी परम्परा है। भारतीय लोकनाट्य की परम्परा विभिन्नता में एकता को दर्शाती है। भारत में अनेक लोकनाट्य शैलियाँ प्रचलित है। किन्तु इसमें विभिन्नता में एकता है। लोकनाट्य की विभिन्न शैलियाँ अपने अंचल विशेष की किसी विशेषता में युक्त होने के कारण प्रसिद्ध रही है। इन्हीं लोकनाट्य शैलियों में कुछ धार्मिक लोकनाट्य है, कुछ लौकिक, सामाजिक तो कुछ लोकनृत्य की प्रधानता लिए हुए हैं, तो कुछ गीत संगीत की प्रधानता वाले हैं। इन लोकनाट्यों में कुछ ऐसी समानताएँ हैं जो प्रत्येक लोकनाट्य में देखी जा सकती है।

लोक जीवन में अनेक सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर खेल तमाशे किये जाते हैं। जिनमें से कुछ का सम्बन्ध नृत्यगीत और अभिनव से होता है उसे लोकनाट्य कहते हैं। हरियाणा की लोकनाट्य परम्परा प्राचीन है इसमें साँग, रामलीला, घोड़ी बाजा यहाँ की नाट्य परम्परा की प्रमुख कड़ियाँ हैं। 'साँग' तो हरियाणा की नाट्य परम्परा का सिरगौर है। इसे यहाँ ''कौमी नाटक'' भी कहा जाता है। यह अभिनयात्मक है इसके अभिनय के लिए व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार की सामग्री या पूर्व–निर्धारित योजना की आवश्यकता नहीं होती। इसके अभिनय प्रदर्शन के लिए एक खुली जगह पर ही कोई भी तख्त बिछाकर इसका गंचन किया जा सकता है। इसके पात्र खुले स्थान पर ही अपनी वेशभूषा में तैयार होकर प्रदर्शन करते हैं। हरियाणा की जनरजनकारी यह विधा गीत, संगीत एवं नृत्य की एक मनमोहक त्रिवेणी है। लम्बा 'कथा–गीत' साँग का प्राण है और यह एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। हरियाणा के लोक मानस को रस की जो परितृप्ति दीपचंद, सरूपचंद, लक्ष्मीचंद, मांगेराम,

रामकिशन व्यास, धनपत और चंद्रलाल बादी आदि के साँगों में प्राप्त होती है। वह यहाँ के शिक्षित अशिक्षित किसी भी व्यक्ति से छिपी नहीं है।

लोकनाट्य लिखे नहीं जाते बल्कि रचे जाते हैं। इसी कारण इनकी भाषा सामाजिकता का पुट लिए हुए होती है। जो भी किस्से–कहानियाँ मानव समाज में सुनाई व दोहराई जाती है, वही किस्से लोकनाट्य का रूपधारण कर लेते हैं। इनका मूल उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करने के साथ–साथ समाज की अच्छाई व बुराई की तरफ भी लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है। लोकनाट्य जहाँ एक तरफ लोगों को हँसाने, उन्हें अपने अभिनय से गुदगुदाने का कार्य करते हैं वही दूसरी तरफ ये समाज की कुरूतियों पर तीखा व्यंग्य भी करते हैं। लोकनाट्यों में एक गुण यह भी होता है कि इनमें व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कुछ भी सुना देने की क्षमता विद्यमान होती है।

1.2) लोकगीत का अर्थ एवं परिभाषा :–

लोकगीत शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोक लोर' शब्द का हिन्दी पर्याय होता है। 'फोक' का अर्थ होता है, लोक तथा 'लोर' का अर्थ होता है, गाथा, विधा। हिन्दी साहित्य में फोक शब्द के लिए 'ग्राम' अथवा 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। परन्तु लोकगीत केवल ग्रामवासियों द्वारा ही नहीं गाए जाते अपितु नगर शहर में रहने वाले लोगों के द्वारा भी उतनी ही प्रसन्नता से गाए जाते हैं, जितना ग्रामवासी प्रसन्न होकर गाते हैं। लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है, जनमानस के गीत, जन–जन के गीत, जनमानस की आत्मा में रचा बसा गीत अर्थात् जो गीत संपत्ति की तरह विरासत में मिले हो वही लोकगीत हैं मौखिक परंपरा से संपन्न ये लोकगीत किसी जाति, समुदाय, राष्ट्र की सबसे बड़ी पहचान है।

लोक गीत शब्द 'लोक' तथा 'गीत' के सहयोग से बना है। जिसका सामान्य अर्थ है, जो गीत लोक से संबंध रखता हो वही लोकगीत है। अर्थात्

लोक रचित एवं लोक प्रचलित गीत को ही लोकगीत की संज्ञा दी जाती है। लोक में प्रचलित ऐसे गीत जिसके रचयिता अज्ञात होते हैं तथा लोक की भावनाओं को व्यक्त करते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से विकसित होते हैं।

लोकगीत की परिभाषा :–

लोकगीत पर अध्ययन करने वालों ने इस विधा विशेष पर अपने–अपने ढंग से विचार किया है। लोक साहित्य के विद्वानों द्वारा लोकगीत को परिभाषित करते हुए अपने–अपने मत प्रस्तुत किए हैं–

डॉक्टर श्याम परमार के अनुसार, ''गीतों में विज्ञान की तराश नहीं, मानव संस्कृति का सरल्य लें और व्यापक भावों का उभार है।''[20]

डॉ. सूर्यकर्ण पारीक के विचारों में, ''आदिम मनुष्य हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त दुःख–सुख की कहानी इसमें चित्रित है।''[21]

लोकगीत को 'ग्राम–गीत' कहने वाले पं. राम नरेश त्रिपाठी ने कहा है–''ग्राम गीत प्रकृति के उदगार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छंद नहीं, केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य हैं।''[22]

लोकगीत प्रकृत काव्य है। वह लोक हृदय की सरल, स्वभाविक एवं संगीतमय अभिव्यक्ति है।''[23]

---

[20] डॉ. श्याम परमार, मालवीय लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–29
[21] डॉ. सूर्य कर्ण पारीक, राजस्थान के लोकगीत, पूर्वार्ध, प्रस्तावना, पृष्ठ संख्या–1–2
[22] पं. रामनरेश त्रिपाठी, कविता–कौमुदी भाग–5, प्रस्तावना पृष्ठ संख्या–1–2
[23] पं. श्याम चरण दुबे, छत्तीगढ़ी लोक गीतों का परिचय, भूमिका भाग, पृष्ठ संख्या–4

पं. श्यामचरण दुबे के अनुसार लोकगीत—''लोकगीत, लोकजन द्वारा विशेष परिस्थिति स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण अभिव्यक्ति है।''[24]

डॉ. विद्या चौहान ने लोकगीत को इन शब्दों में व्यक्त किया है—''लोक भाषा के माध्यम से संगीत एक आवरण में लिपटी हुई सामान्य जन समुदाय के हार्दिक रागानुरागपूर्ण भावानुभूतियाँ लोकगीत कहलाती है।''[25]

अंग्रेजी विद्वान ग्रिम के अनुसार—''लोकगीत, जनता का, जनता के लिए, जनता द्वारा रचना जन काव्य है।''[26]

लोकगीतों की स्वाभाविकता पर बल देते हुए डॉ. श्याम परमार ने विवेचना की है—''लोकगीत प्रकृति के उद्‌गार, तड़क—भड़क से दूर पारदर्शी शीशे की तरह स्वच्छ है।''[27]

लोक साहित्य के अंतर्गत आने वाली विधा लोकगीत का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। आदिकाल से ही जब से सामाजिक चेतना का विकास हुआ तभी से ऐसे गीतों का जन्म हुआ। जिनमें संबंध मानव के सामान्य जनजीवन से था। जैसे—जैसे मानव जाति का विकास होता गया वैसे—वैसे गीतों की प्रकृति में भी परिवर्तन होने लगा। लोकगीत की यह परंपरा अत्यंत प्राचीन है। परन्तु यह परंपरा प्राचीन होते हुए भी अर्वाचीन है। यह पुरानी अथवा बासी तो होते ही नहीं। लगातार अपने में नवीन व चिरयौवन बने रहने का सौंदर्य ही लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता है।

जब मनुष्य ने प्रकृति पर विजय पाई तब उसके गीतों में विजय का स्वर गुंजायमान रहा। परन्तु समय परिवर्तन के साथ मनुष्य प्रकृति के रौद्र रूप से

---

[24] डॉ. सत्य गुप्ता, खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या—29
[25] डॉ. विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या—49
[26] डॉ. मोहन कृष्ण दर, कश्मीर का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या—03
[27] डॉ. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या—56

हार गया। इस हार ने मनुष्य की विपरीत परिस्थितियों से सामना करने की शक्ति को और उत्साहित किया फलस्वरूप मनुष्य ने एकता के महत्व को जानकर सामाजिकता की तरफ कदम बढ़ाया।

लोकगीतों में अन्य विधाओं की तरह शास्त्रीय नियमों के बंधन में नहीं बंधे होते। ये मानव मन से अचिन्त्य रूप में अनायास ही प्रस्फुटित होने वाली लयात्मक अनुभूति का परिणाम होते हैं। जिन्हें मनुष्य अपने लोक जीवन की पृष्ठभूमि में उतारता है। शास्त्रीय नियमों में विशेष परवाह न करके सामान्य के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद तरंग में जो छंदोंबंद्ध वाणी सहज रूप में उद्धृत करता है, वही लोकगीत है।

देवेन्द्र सत्यार्थी के मतानुसार–''लोकगीत हृदय के खेत से उगते हैं सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं और दुख के गीत तो खौलते लुए लहँ से पनपते हैं और आंसुओं के साथी बनते हैं।''[28]

लोकगीतों में न कला को और न भाषा सौष्ठव और ना ही विशेष महत्व दिया जाता है। इसका निर्माण तो लोक मानव ने तपते सूर्य के नीचे खेतों में कार्य करते हुए किया है। यह लोकगीत तो चूल्हे पर कसार भूमती, चक्की चलाती नारी, पनघट पर जाती नारी तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाये है। जिस समय उसके अंतर्मन को जो भी स्पर्श कर गया तुरंत वही भाव बोलचाल की भाषा में गीत बनकर प्रस्फुटित हो पड़ा।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं–''लोकगीतों का समस्त महत्व उनके काव्य और सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक महत्वपूर्ण कार्य है। एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो अब तक गया तो विस्मृति के गर्भ में डूबी हुई है या गलत समझ ली गई है। लोकगीतों का महत्व मोहन जोदड़ों के

---

[28] देवेन्द्र नाथ सत्यार्थी, धरती गाती है, पृष्ठ संख्या–177

भग्न स्तुपो के अवशेष एवं ईट पत्थर के टुकड़ों से कहीं अधिक है। पुरातत्व के यह अंश हमारे इन गीतों के भाष्य का काम देते हैं।''[29]

डॉ. श्याम परमार इस विषय में लिखते हैं–''इन गीतों के आरम्भ के प्रति हमारे पास एक संभावना है, पर उसके अंत में कोई कल्पना नहीं यह वही बड़ी धारा है। जिसमें अनेक छोटी–छोटी धाराएँ मिलकर उसे सागर की तरह गंभीर बना रही है, सदियों के घात–प्रतिघात ने उसमें प्रश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने उसमें मन के ताने–बाने बने हैं। स्त्री–पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपनी थकान मिटाई है।''[30]

1.3) लोकगीत की विशेषताएँ :–

लोकगीतों को परिभाषित करने पर निम्नलिखित विशिष्ट तत्व दृष्टिगोचर होते हैं–

1. लोकगीत मैं नारी हृदय का निश्छल विराट रूप तथा नारी भावों की उदारता सम्मिलित होती है। नारी जीवन की सभी मर्मस्पर्शी घटनाओं को ये लोकगीत अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। नारी की पूर्णता मातृत्व में मानी गई है, इस आल्हादकारी अवसर के लिए अनेक संस्कारों एवं रीति–रिवाजों में सम्पन्न लोकगीतों की भरमार हमारे लोक साहित्य में पाई जाती है।

2. लोकगीतों का कोई विशेष रचनाकार नहीं होता। अधिकतर लोकगीतों के रचयिता अज्ञात होते हैं। लोक गीतों में रचियता का व्यक्तित्व विलुप्त होता है। गीत में व्यक्त होने वाली अनुभूति व्यक्ति विशेष की अनुभूति में रहकर जनमानस की अनुभूति है।

---

[29] डॉ. गणेश दत्त सारस्वत, हिन्दी लोक साहित्य, प्रथम खण्ड, पृष्ठ संख्या–29
[30] डॉ. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–53

3. विषय वैविधता लोकगीतों की एक अन्य एवं प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है। हमारे लोकगीत हमारी लोक संस्कृति का दर्पण होते हैं। मानव जीवन का, अपनी संस्कृति का शायद ही कोई ऐसा पहलू होगा, जिसे लोकगीतों के माध्यम से ने दर्शाया गया। लोकगीतों में मानव जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक प्रत्येक पहलू का निरूपण किया जाता है। सभी प्रकार के संस्कार, व्रत, पूजा–पाठ, देवी–देवताओं की आराधना, तीज त्यौहार आदि विषयों से संबंधित लोकगीत हमारे समाज में प्रचलित हैं।

4. लोकगीतों की परंपरा मौखिक है और इनकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि मौखिक परंपरा में भी यह लोकगीत अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं इन्हें लयात्मक ढंग से सामूहिक रूप से गाया जाता है।

5. लोकगीत स्थानीय रंगत लिए हुए होते हैं, तथा स्थान विशेष की रंगत की महक से परिपूर्ण होकर लोक जीवन की मानव भूमि से प्रफुल्लित होते हुए जनसामान्य की भावनाओं की अभिव्यक्ति है।

6. लोकगीत हमारी लोक संस्कृति के रक्षक हैं इनमें संस्कृति का यथार्थ चित्रण मिलता है यह कुछ न छुपाते हैं और न छिपाने देते हैं।

7. लोकगीत लोक रंजक व लोकमंगल के महत्वपूर्ण आयाम हैं। यह ग्रामीण जनजीवन के दर्पण हैं। इनमें मनोरंजन तत्वों के साथ शिक्षा प्रदत तत्वों का समावेश स्वतः होता है। इनमें पारिवारिक स्थिति का संजीव आकलन किया जाता है।

8. इनमें जीवन के प्रत्येक पक्ष का निरूपण मिलता है। यौवन की उमंगों के साथ जीवन की सादगी, मस्ती, आपसी प्रेम और भाई चारे की बातें आदि इनके प्रमुख गुण हैं।

9. लोकगीतों की भाषा लोक भाषण होती है, जिसमें ग्रामीण अंचल, प्रकृति, ऋतुओं, त्यौंहारों आदि का चित्रण होता है।

10. लोकगीतों में कृत्रिमता का अभाव पाया जाता है।

11. लोकगीतों की अन्य विशेषता यह है कि इनका कोई अंतिम रूप नहीं होता। ये समय अनुसार एवं परिस्थिति अनुसार बनते बिगड़ते रहते हैं।

12. लोकगीत औद्योगिकरण एवं महानगरीय जीवन के शोर–शराबे से दूर, वन उपवन में, पर्वतों की उपत्यकाओं में, नदियों नालों के कछारों में, बाग–बगीचों में, खेत–खलिहानों में, होली और तीज के त्यौहारों में गणगौर और सांझी के अनुष्ठानों में, विदाई और छठी के संस्कारों में, लग्न, मेंहदी की रस्मों में, मंडियों और मजारों के पूजन में, चरखे, चक्की तथा रहट और कोल्हँ के इर्द–गिर्द लोक संस्कृति में अमर पक्षी की भांति स्वतः तैरते जन्मते और विकसित होते रहे हैं और होते रहेंगे।[31]

13. हरियाणवी लोक गीतों में देश प्रेम की भावना ओतप्रोत होती है।

''पहले तो रे पिया मने दामण सिमा दे, फेर जाइए हो, जाए पलटन में, थारे तो रे गोरी दामण की लग रही म्हारी हो रही से लड़ाई पलटन में .. .. ।''–2

14. लोकगीतों में नाम जोड़ने की प्रवृत्ति पाई जाती है। लोक गीतों मैं परिवार के व्यक्तियों के नाम, आभूषणों के नाम, कुछ वस्तुओं के नाम, बार–बार दोहराए जाते हैं। प्रस्तुत गीत में गहनों के साथ लाडो के सौंदर्य को उजागर किया गया–

''मेरा बोरला घड़ा दे घड़ा दे ओ नन्दी के बीरा तैन न्यू, तैन न्यू माथे पर राखूँ हो नन्दी के बीरा ..... ।''

[31] डॉ. जय भगवान गोयत, हरियाणा संवाद, दिसम्बर 1994

15. लोकगीतों में प्रश्नोत्तर प्रवृत्ति का प्रचलन मिलता है जो लोक मानस की सीधी–सादी एवं विकार रहित भावनाओं के घोतक हैं–

''सास मेरी बूढ़ी हो गई बहूँ के आने से

सास तूने क्या–क्या खाया जेठ के होने पे।

बहू ए मने जामुन खाई थी बड़े के होने पे।

जेठ मेरा काला हो गया जामुन खाने से।

सांस मेरी बूढ़ी हो गई बहूँ के आने से,

सांस तूने क्या–क्या खाया देवर के होने पे।

बहूए मने मंडे खाए थे छोटे के होने पे।

देवर मेरा गुंडा हो गया मंडे खाने से।

सास मेरी बूढ़ी हो गई बहूँ के आने से।

सास तूने क्या–क्या खाया ननंद के होने पर।

बहूँ हेमन ने मिर्ची खाई थी लाडो के होने पे।

ननंद मेरी तीखी हो गई मिर्ची खाने से ....।

16. लोकगीतों में कुछ विशिष्ट संख्याओं ने अपना स्थान बना रखा है, जैसे दो, चार, तीन, पांच आदि ....।

''मेरी सास के पांच पुत्र थे दो देवर दो जेठ सुनियो मेरी री सास के पांच पुत्र थे दो देवर दो जेठ सुनियो, मेरे कर्म में बावलिया लिखा था वे भी गया परदेस सुनियो ......।''

17. लोकगीतों के वैशिस्टय को प्रदर्शित करने के लिए पंडित राम नरेश त्रिपाठी के शब्द प्रस्तुत हैं–"ग्राम गीत और महा कवियों की कविता में अंतर हैं, ग्रामीण गीतों में रस है, महाकाव्य में अलंकार, ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं इनमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं, केवल लालित्य नहीं केवल माधुरी है, लोक साहित्य में संगीत, माधुर्य, स्वाभाविकता एवं सौंदर्य आदि विशेष गुण होते हैं।"[32]

अतः निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि लोकगीत अज्ञात व्यक्तियों द्वारा रचित जन सामान्य की सहज और सरल भाव अनुभूतियों तथा विचारों की संगीतआत्मक तथा मौखिक अभिव्यक्ति है, जो परंपरा में अबोध गति से निरंतर प्रवाहित होते रहते हैं तथा यह अबाद गति भूत, भविष्य और वर्तमान को जोड़ते हुए एक कड़ी के रूप में विद्यमान रहती हैं। इन विशेषताओं से युक्त हरियाणा के लोकगीतों में पारंपरिक मानव सभ्यता और संस्कृति का वर्णन मिलता है।

1.4) लोकगीत का वर्गीकरण :–

लोक में प्रचलित असंख्य गीतों में कई गीत विशेष संस्कारों के अवसरों पर गाए जाते हैं। तो कुछ गीत ऋतुओं एवं व्रतो से जुड़े हुए हैं, विविध कार्य करते समय भी कुछ गीत गाए जाते हैं, ये गीत विभिन्न अवसरों पर समूह में मिलकर औरतों द्वारा गाए जाते हैं। लोकगीतों की उत्पत्ति मानव मन की अनुभूतियों का परिणाम है। इनका जन्म मानव हिमालय की गंगोत्री से हुआ है, जिस प्रकार हम मानव मन की अनुभूतियों उनके मनोभावों की उठने वाली ज्वार भाटा रूपी लहरों को रेखांकित नहीं कर सकते उसी प्रकार हम लोकगीतों को भी विविध प्रकार की सीमाओं में नहीं बांधा सकते। क्योंकि लोकगीतों की

---

[32] डॉ. श्रीराम शर्मा, लोक साहित्य का सामाजिक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या–41

उत्पत्ति किसी विशेष या सुनियोजित उद्देश्य को लेकर नहीं हुई है, अपितु जीवन में आने वाली विविध प्रकार के रूपों के अनुसार उनके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है, इसलिए लोकगीतों का वर्गीकरण विविध प्रकार के संस्कारों, कार्य क्षेत्रों, ऋतुओं परिकल्पनाओं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आधार पर करना तरक तर्क एवं युक्ति संगत है।

लोकगीत पश्चिम के गांव से तथा पूर्व के देशों में उपजते हैं, हिन्दी जगत में लोकगीतों का प्रथम दौर में 'ग्रामीण गीत' या 'ग्राम गीत' कहकर किया गया था। बाद में इन्हें लोकगीत की संज्ञा दी गई, हिन्दी में 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' की तर्ज पर स्वीकार किया गया। लेकिन क्षेत्र की दृष्टि से कभी है, यह शब्द ग्रामीण समाज के लिए प्रयुक्त हुआ, तो कभी विश्व आदिम जातियों के अर्थ में ग्रहित हुआ।

हरियाणा प्रदेश के लोक साहित्य का अध्ययन करने वाले डॉक्टर शंकर लाल यादव ने लोकगीतों के दो आधार बतलाए हैं–

जीवन का कोई भी पहलू या कार्य ऐसा नहीं है, जिसको हम लोक गीतों में देख पाते हैं, मानव जीवन के सभी चित्रण हम लोक गीतों में बेखूबी देख सकते हैं। जब बच्चा जन्म लेता है, तो लोक को सुनता हुआ बड़ा होता है, चाहे वह लोरी के रूप में हो या दादी, नानी की बाल कहानियों के रूप में, इसी प्रकार जीवन के हर पहलू में लोकगीतों को सुनते हुए अंत में गीतों में ही लिपट कर अपनी लीला समाप्त करके चले जाते हैं, इसलिए लोकगीतों के वर्गीकरण का कार्य दुष्कर है। लोकगीतों का विभिन्न विद्वानों ने वर्गीकरण किया है, डॉ. भीम सिंह मलिक, डॉ. शंकर लाल यादव, सूर्य कर्ण पारीक, नरोत्तम स्वामी, डॉ. सत्येन्द्र आदि विद्वानों के वर्गीकरण के आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

1. संस्कार संबंधी गीत–जन्म, विवाह, मृत्यु संबंधी गीत।
2. ऋतु संबंधी गीत–सावन, फागुन, कार्तिक तथा बारहमासा गीत।
3. व्रत संबंधी गीत।
4. विभिन्न जातियों के गीत।
5. देवी–देवताओं के गीत।
6. कृषि संबंधी गीत।

[33] डॉ. शंकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या 126

7. यात्रा तीर्थ तथा मेला गीत।

8. बालकों के खेलों के गीत।

9. ऐतिहासिक गीत।

10. विविध लोकगीत।

भारतीय धर्म शास्त्रों में 16 संस्कारों का वर्णन मिलता है। जन्म संस्कार, विवाह संस्कार और मृत्यु संस्कार मुख्य संस्कारों में आते हैं, वैसे जीवन भर समय–समय पर अनेक संस्कार होते ही रहते हैं। इन सभी संस्कारों के अवसर पर स्त्रियों द्वारा अपने मधुर कंठ से उल्लास के साथ गीत गाकर जन मन का मनोरंजन किया करती है। संस्कार गीत विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं, इन गीतों के अभाव में कोई भी संस्कार अपनी शोभा, स्फूर्ति तथा ताजगी से वंचित रह जाता है।

''संस्कार और मानवीय कार्यकलाप, विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं, जिन में होकर जीवन धारा प्रभावित होती रहती है, यद्दि दो किनारे धाराओं को मर्यादित, संतुलित तथा नियमित होने में सहायता करते हैं।[34]

जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार जीवन के आवश्यक संस्कार है। मनुष्य बाकी 13 संस्कारों से दूर भाग कर वंचित रह सकता है। लेकिन संसार का कोई भी मानव इन 3 संस्कारों से अछूता रह पाना कठिन ही नहीं असंभव भी है, वास्तव में इनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्रण प्राप्त नहीं किया जा सकता। इनके अतिरिक्त नामकरण, वयःसंधि, रजोदर्शन आदि की स्थितियाँ भी महत्वपूर्ण होती हैं और अनेक संस्कृतियों की समाज व्यवस्था में उन्हें पार करने में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति एवं उसके अधिकारों और कर्तव्यों में मूलभूत परिवर्तन हो जाते हैं। समाज संगठन का यह पक्ष मानव

[34] डॉ. सत्य गुप्ता खड़ी बोली के लोकगीतों का अध्ययन

के उत्तरोत्तर परिवर्तन होने वाले उत्तरदायित्व एवं कार्यों की दिशा निश्चित परिवर्तित होने वाले उत्तरदायित्वओं एवं कार्यों की दिशा निश्चित करता है।[35]

लोकगीत लोक जीवन का प्रतिबिंब होते हैं। जिनमें लोक जीवन के प्रत्येक पक्ष का चित्रण मिलता है। यह मानव की प्रत्येक भाव हर्ष, उल्लास, विषाद के क्षणों को पिरोकर गीत बंद करता है। हिन्दूओं का जीवन उद्भव से विलय तक संस्कारमय होता है। धार्मिक संस्कार हिन्दू जीवन में इतने आच्छादित है कि जीवन कभी नीरस प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः धर्म लोक जीवन का प्राण है।

संस्कार संबंधी गीत :—

हिन्दू समाज में 16 संस्कारों को सम्पन्न करते हुए गीत गाए जाते हैं, उनमें से 6 प्रकार के संस्कार संबंधी लोकगीत अधिक प्रचलित है—

1. पुत्र जन्म संस्कार
2. मुंडन संस्कार
3. जनेऊ संसकार (यज्ञोपत संस्कार)
4. विवाह संस्कार
5. गोना संस्कार
6. मृत्यु संस्कार

पुत्र जन्म संस्कार :—

[35] डॉ. राजबली पांडेया, हिन्दू संस्कार, पृष्ठ संख्या—26

पुत्र जन्म के अवसर पर गाए जाने वाले गीत को 'सोहर गीत' भी कहा जाता हैं। इस अवसर पर गांव की स्त्रियाँ एकत्रित होकर पुत्र जन्म की खुशी को गीतों के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं। पुत्र के जन्म से लेकर जन्म के छठे दिन 'छठी' संस्कार होता है, पुत्र जन्म पर गाए जाने वाले लोकगीत इस प्रकार है–

''किधर तै आई दाई, किधर ते आया नाई,

किधर तै आई नणंद बीजली,

या तेरी माँ की जाई,

भीतर आजा मेरी नणंदी लगूंगी तेरे पाएँ,

के मांगेगी दाई, माई के मांगेगा नाई,

के मांगेगी नणंद बीजली

या तेरी माँ की जाई,

भीतर आजा ...

पांच रपइए दाई मांगै, सवा रपइया नाई,

पच्चीस मांगे नणंद बीजली,

या तेरी माँ की जाई,

भीतर आजा ...

पांच रपइए दाई ने देद्यो सवा रपइया नाई,

एक अठन्नी नणंद बीजली,

या तेरी माँ की जाई

भीतर आजा।''

इस प्रकार पुत्र प्राप्ति पर अपनी ननद, दाई द्वारा मांगने की प्रथा हरियाणा में प्रचलित है, तो वे क्या–क्या मांगती हैं इस लोकगीत में उन सब चीजों का वर्णन किया गया है जो पुत्र जन्म पर उसकी ननद, दाई और अन्य सदस्यों द्वारा मांगी गई है।

मुंडन संस्कार :–

जन्म के बाद बच्चे का जब पहली बार मुंडन किया जाता है, तब उसे मुंडन संस्कार कहते हैं। इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा जो गीत प्रस्तुत किया जाता है, उसे मुंडन संस्कार के गीत कहा जाता है। इस अवसर पर अपने गाँव के मंदिर में बच्चे का मुंडन संस्कार करवाया जाता है और बच्चे की बुवा को भी बुलाया जाता है और इस अवसर पर परिवार द्वारा प्रसाद को मंदिर में भोग लगाकर, प्रसाद चढ़ा करके उसके साथ बच्चे का मुंडन कार्य पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार बुवा की देख–रेख में उसके भतीजे का मुंडन कार्य सम्पन्न करते हैं इस अवसर पर जच्चा मुंडन करवाने के लिए जो कार्य करती हैं, उस अवसर पर गाए जाने वाले गीत–

''बच्चे का मुंडन करवऊ,

ननदई को बुलाऊ,

बच्चा का मुंडन कराऊ,

ननदई को बुलाऊ,

ननदई मांगे सोने कंगना री कंगना कहा तै दिलाऊ,

मैं तो ननदई को मनाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

बच्चे की दादी मांगे चांदी का कंगना,

दादी को कैसे मनाऊ,

मैं तो बच्चे का मुंडन कराऊ,

दादी को कैसे मनाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

नंदेउ को कैसे मनाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

जेठानी ने बुलाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

जेठानी ने बुलाऊ,

जेठानी मांगे सोने का हार,

जेठानी ने केसे मनाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

जेठानी ने कैसे मनाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

सासु जी को बुलाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ,

सासु जी को कैसे बुलाऊ,

बच्चे का मुंडन कराऊ।''

इस प्रकार के हरियाणवी लोकगीत मुंडन के अवसर पर गाए जाते हैं, और इसमें जच्चा के द्वारा परिवार के सभी सदस्यों को बारी–बारी से मनाने का कार्य किया जाता है, और उनको उपहार स्वरूप कुछ जच्चा के द्वारा दिया जाता है।

जनेऊ धारण संस्कार संबंधी लोकगीत (यज्ञोपत संस्कार) :–

हिन्दू धर्म के विशेष संस्कारों में 'यज्ञोपत' जनेऊ या उपनयय संस्कार महत्वपूर्ण संस्कार होता है। यह प्राचीन संस्कार है। इस संस्कार की हिदायत वेदों में दी गई है। इस संस्कार के पश्चात् विद्या आरम्भ होती है। इस अवसर पर हरियाणवी संस्कृति में अनेक लोकगीत प्रचलित है–

''म्हारा दादा जस लीजो अपने पोता ते जनेऊ जनेऊ दीजो

म्हारा दादा जस लीजो पोता ते जनेऊ दीजो,

म्हारा जेठ जी जस लिजो थारा बेटा ते जनेऊ दिजो

म्हारा देवर जी जस लिजो थारा बेटा ते जनेऊ दिज्यों,

म्हारी दादी जी जस लिजो थारा पोता ते जनेऊ दिजो,

म्हारी जेठानी जी जस लिजायो थारा बेटा ने जनेऊ दिजो,

म्हारे भईया जी जस जिल्यो, अपने भांजे ते जनेऊ दिजो।''

विवाह संस्कार संबंधी गीत :–

भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह केवल सामाजिक या शारीरिक बंधन ही नहीं अपितु गृहस्थाश्रम की अध्यात्मिक साधना का श्रेष्ठ रूप है। विवाह संस्कार पति–पत्नी के दाम्पत्य जीवन का पवित्र गठबंधन है। जिसमें बंधकर पति पूर्ण अपने गृहस्थ जीवन की ओर आगे बढ़ते हैं। हरियाणवी संस्कृति में

लोकगीतों की गुँज से ही स्पष्ट पता चल जाता है कि विवाह की कौन सी रस्म को निभाया जा रहा है। विवाह संस्कार के अवसर पर स्त्रियाँ विभिन्न रस्मों पर अलग–अलग गीत गाती हैं। विशेष रूप से लड़की पक्ष में बन्दड़ी और लड़े पक्ष में बन्दड़े गीत गाये जाते हैं। जिनमें तेल, उबटणा, झोल, आरता आदि से संबंधित लोकगीत प्रचलित है। बन्ना/बन्नी गीतों के साथ ही विवाह संस्कार की अन्य रस्मों से संबंधित लोकगीतों की अनुगुँज सुनाई देती है जैसे– भात के गीत, चाक, मेंहदी, हल्दी, घुड़चढ़ी, बारात, खोड़िया, मिलनी, फेरो के गीत, विदाई गीत, सीठणे, बधावा के गीत गाए जाते हैं–

सुण सुण मौसा सुणीक नां

तनै मेरी मौसी गैहणै धरीक नां

सुण सुण मौसा सुणीक नां

दिल्ली में सोना पायाक नां

सुण सुण मौसा सुणीक नां

तनै लट्ठे की चादर पाईक नां

सुण सुण मौसा सुणीक नां

तनै टूम घड़णनै सुनरा पायाक नां

सुण सुण मौसा सुणीक नां

महेन्द्रगढ़ में बाजा मिलाक नां

सुण सुण मौसा सुणीक नां।

2. दुराणी जिठानी बाबुल बोली हो मारैं

के नरसी पत्थर ल्यावै हो राम

सास नणदी बोली हो मारैं

के नरसी तील पहरावै हो राम

देवर जेठ बोली हो मारैं

के नरसी मोहर ल्यावै हो राम

तेरा जमाई बोली हो मारै

के नरसी अरथां में आवै हो राम

काणी सी धोबण बोली हो मारै

के नरसी सुरमा ल्यावै हो राम

भेली कसार लेकर हरनन्दी चाली

हो ली सिरसागढ़ की राही हो राम

बूझ मैं उसनै हाली पाली

नरसी भगत कित पावै हो राम

काका ताऊ कै चाली हे जा

नरसी भगत अस्तल में पावै हो राम

कूण किसै के काका ताऊ

नरसी के मैं जांगी हो राम

\+ + +

बूझी सैं उस नै कुएं की पणिहार

नरसी कै मैं जांगी हो राम

दूरे तैं हरनन्दी देखी आंवती

नरसी भगत खड़े होगे हो राम

दोनां हाथां सिर पुचकारा

हे ईश्वर तेरी माया हो राम

बेटी तैं दई राम जी बेटा बी दिए

आज मनै बहूत रंज आया हो राम

बेबे भी दई भाई बी दिए

आज मन्ने भाती भी चाहिए हो राम

टुट्टी सी गाड्डी बुड्डे से नारे

आप नरसी गड़वाला हो राम

टूटगी गाड्डी बैठगे नारे

खड़े लखावै नरसी भगत हो राम

धौल धौले नारे बाजणां सा रथ

आप किरसन गडवाले हो राम

आ पोंह्चा बाजणां सा रथ

आप किरसन जी भाती हो राम

\+ \+ \+

चार घड़ी लग तील बरसी

पहरो मेरी नणदी हो राम

चार घड़ी लग मोहर बरसी

बरतो मेरे देवर जेठ हो राम

चार घड़ी लग पत्थर बरसे

महल बणाओ सारी दुनिया हो राम

चार घड़ी लग सुरमा बरसा

सारो काणी धोबिन हो राम

द्योराणी जिठाणी बूझण लागी

कुणसा हे हरनन्दी तेरा भाई हो राम

ओरां के आवैं भाई भतीजे

मेरे किरसन जी आए हो राम

3. बाबा देस जांदा परदेस जाइयो म्हारी जोड़ी का बर ढूंड़ियो

लाडो देस जांदा परदेस जांगा, ढूंड़िया सै फूल गुलाब का

ताऊ देस जांदा परदेस जाइयो म्हारी जोड़ी का वर ढूंड़ियो

लाडो देस जांदा परदेस जांगा, ढूंड़िया सै फूल गुलाब का

मामा देस जांदा परदेस जाइयो म्हारी जोड़ी का वर ढूंड़ियो

लाडो देस जांदा परदेस जांगा, ढूंड़िया सै फूल गुलाब का

भाई देस जांदा परदेस जाइयो म्हारी जोड़ी का वर ढूंडियो

लाडो देस जांदा परदेस जांगा, ढूंडिया सै फूल गुलाब का।

गोना संस्कार के गीत :–

हिन्दुओं में विवाह संस्कार के समय दुल्हन की विदाई नहीं होती थी। परन्तु आजकल विदा होने लगी हैं, उस समय विवाह के एक वर्ष या एक से अधिक वर्षों के बाद बेटी की विदाई की जाती थी। उस समय विदाई के अवसर हरियाणा में स्त्रियों द्वारा गाए जाने वाले गीत को गोना संस्कार गीत कहा जाता

था। जबकि हरियाणवी में इसे मुकलावा, खंदावा व दूसर आना के नाम से भी जाना जाता है। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत इस प्रकार हैं–

- महा पोह की सरद पड़ ए थी हे, मैं दूसर ले कर आई
- मेरी बडली जेठानी बड़ी चलनी मेरी ऊपर खाट बिछाई ए
- महा पोह की सर्दी पड़ ए हे मैं दूसर लेकर आई, आधी तो रात ढली थी ए जब आया ननंदी का भाई,
- वो पीठ फेर कै न सोग्य ये बोला ना ननंदी का भाई,
- तड़के सी न मुर्गा बोल्या मैं दम दम नीचे उतर आई,
- मेरी बड़ली जेठाणी न्यू बोली तू इतनी जल्दी क्यू आई,
- जीजी तेरा देवर सुथरा घना स, मैं नहीं समझ में आई,
- वह दम दम ऊपर चढ़ी गई है, उसने जाकर देवर जगाया
- देवर दुसर तै हम भी आए थे, हमने रात न नहीं भगाई,
- भाभी री दारू के नशे में सोगा री मनए नींद कसूती आई,
- देवर थोड़ी क्यूँ ना पीई हों, कै बिन पैसे की आई,
- भाभी यारा न मिलकर पिला दी भाई नई भोड़िया तेरे आई,
- भाभी एक बार ऊपर घालिए उसकी की कसर मैट दू सारी
- बेबे एक बार चौबारे में जाए हे बुला ननद का भाई,
- बेबे इब चौबारे मैं तो ना जागी, मैं तो रात को ही छक कै आई
- माह–पोह की सर्द पड़ थी, हे मैं दुसर लेकर आई।

मृत्यु संस्कार के गीत :–

जीवन के आखिरी संस्कारों में मृत्यु संस्कार आता है। यह अवसर बहूत दुखद होता है। लेकिन इस दुखद प्रसंग को भी ग्रामीण समाज में गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। ये गीत भी एक तरह से रूदन के रूप में

औरतों द्वारा गाए जाते हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने मृत्यु के गीतों को विषय वस्तु की दृष्टि से दो प्रकार के माने।

1. ऐसे गीत जिनमें मरने वालों के गुणों का वर्णन किया जाता है। मरने वाला चाहे बच्चा हो युवा हो या वृद्ध हो उसके गुणों का वर्णन होता है।

2. दूसरे प्रकार के वे गीत हैं जिनमें मरने वाले व्यक्ति के न रहने पर उनके परिवार के सदस्यों को कौन–कौन सी तकलीफ उठानी पड़ेगी, उसका वर्णन होता है। जैसे पुरुष मरता है तो उसकी पत्नी और बच्चों के जीवन में कौन–कौन से कष्ट आएंगे। इसका वर्णन होता है–

''अरे मेरे करम के खारे जल गए एअर मोमी दूदाभ
अरे मेरे करम के सुनरा मर गए रूठ गए मनिहार
बहँ री मेरी मत रोवै मुझे लगा री लाल का दाग
मां अरी धौले धौले पहर कपड़े रांड़ा भेष परावै
अरी चले सूनरा के मेरी नथ उतरवाये
अरी देही जले जैसे कांच की भट्टी पकावे
अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यूं न आवे
अपना मन समझावन लागी दो नैनों में भर आया पानी
अरी सासू जब घूसू महल में दरी बिछौना सूना
कुछ एक दिनां की ना है मुझे सारे जनम का रोना
अरे यानी थी तब रही बाप के मुझे सोच कुछ न था।''

ऋतु संबंध गीत :–

ऋतु गीतों को महावरी गीतों के नाम से भी जाना जाता है। हमारे यहाँ छः ऋतुएँ और बारह मास का विधान है। प्रत्येक ऋतु का अपना एक प्राकृतिक स्वरूप होता है। महीनों के क्रम से ऋतुओं के बदलाव के साथ–साथ प्रकृति में परिवर्तन होता है। वैसे भी प्रकृति सभी को प्रभावित करती है। प्रकृति समय–समय पर अपना रूप बदलती रहती है, कभी सुंदर एवं सौम्य रूप तो कभी रौद्र रूप भी धारण करती है। साहित्य में प्रकृति के दोनों रूप देखने को मिलते हैं। स्त्रियाँ प्रकृति से प्रभावित होकर अपने हृदयगत भावों जरिए ऋतु संबंधी लोकगीतों को प्रकट करती हैं। हरियाणवी समाज में अनेक ऋतु संबंधित गीत समय–समय पर गाए जाते है, परन्तु मुख्य रूप से होली, बसंत, सावन आदि गीत गाए जाते ऋतु गीत विशेष अवसर पर गाए जाते हैं। सावन के मनभावन मौसम में मल्हार और कजरी गीत गाए जाते हैं। जो वृद्ध स्त्रियों को भी मद्मस्त बना देने वाला यह सावन और फागुन माह में मस्ती भरे लोकगीत गाए जाते हैं। हरियाणा प्रदेश के अधिकतर युवा फौज में नौकरी करते हैं और दूरदराज के इलाकों में रहते हैं तो वे सावन माह में घर पर नहीं आते हैं तो फौजी की पत्नी से लंबे समय के बाद मिलन होता है। ऐसे में भी सावन माह में नहीं आ पाते हैं तो उनकी पत्नी विरह में यह गीत गाती–

है सामण का महीणा मेघा रिमझिम रिमझिम बरसै

मन नै समझाऊँ तो बी बैरी जोबन तरसै

तीजां के दिनां की तो थी आस बड़ी भारी

ऐसे में भी न आए मैं पड़ी दुखां की मारी

सामण का महीना मेघा रिमझिम रिमझिम बरसै

मन नै समझाऊँ तो बी बैरी जोबन

तरसै झूलण जांगी ऐ मां मेरी बाग में री

आ रही संग सहेली चार

झूलण जांगी ए मां मेरी बाग में री

कोए पंदरां की मां मेरी कोए बीस की री

आ रही संग सहेली चार

झूलण जंगी ए मां मेरी बाग में री

कोए गोरी ए मां मेरी कोए सांवरी री

आ रही संग सहेली चार

झूलन जांगी हे मां मेरी बाग में

री सामण आया हे सखी सामण के दिन चार

उन के ते सामण के करै जिनके बैलद न बीज

तड़के ते जांगी लक्खी बाप कै ल्याउंगी बैलद अर बीज

बुड्ढा ते दीन्हा ढांढिया बोदी तो दे दी जवार

डांक्या ना चाल्या बाबुल ढांढिया बोई ना जामी ज्वार

खूंटी ते बांधो बेटी ढांढिया कोठी ते घालो हे ज्वार

टग टग तै चाल्या बेटी ढांढिया सण जू जामी

सात जणी का हे मां मेरी झूलणा जी

पड़्या पिंजोला हरियल बाग में जी

अस्सी गज का हे मां मेरी घाघरा जी

उसमें कली सैं तीन सौ साठ जी

पड़्या पिंजोला हरियल बाग में

जी नांनी नांनी बूंदियां हे सावन का मेरा झूलणा

एक झुला डाला मैंने बाबल के राज में

बाबल के राजे में

संग की सहेली हे सावन का मेरा झूलणा

नांनी नांनी बूंदियां हे सावन का मेरा झूलना

ए झूला डाला मैंने भैया के राज में

भैया के राज में

गोद भतीजा हे सावन का मेरा झूलना

नांनी नांनी बूंदियां हे सावन का

मेरा झूलना आया आया री

सासड़ साम मास डोर बटा दे री पीली पाट की

आया तो बहूअड़ री आवण दे जाय बटाइयो अपने बाप कै

आया आया री सासइ सासड़ मास पटड़ी घड़ा दे चन्दन रूख की

आया तो बहूड़ री आवण दे जाय घड़ाइयो अपणे बाप कै

आया आया री सासड़ सामण मास हमनै खंदा दे री म्हारे बाप कै

इब तो बहूअड़ री खेती का काम

फेर कदी जाइयो री अपणे बाप

फागण के गीत :–

ए मेरी पतरी कमर नाड़ा झुब्बादार लाइयो

झुब्बादार लाइयो करेलीदार लाइयो

ऐ मेरी पतरी कमर ....

तुम सहर बरेली जाइयो, आच्छा सा सुरमा लाइयो

लगाइयो अपने हाथ, नाड़ा झुब्बादार लाइयो

ऐ मेरी पतरी कमर ....

तुम सहर बनारस जाइयो, बढ़िया सी साड़ी लाइयो

बन्धाइयो अपने हाथ, नाड़ा झुब्बादार लाइयो

ऐ मेरी पतरी कमर ...

तुम मथुरा जी को जाइयो, अच्छे पेड़ा लाइयो

खवाइयो अपने हाथ, नाड़ो झुब्बादार लाइयो

ऐ मेरी पतली कमर ...

तुम वृंदावन को जाइयो

आच्छौ सो लहंगो लाइयो

पहनाइयो अपने हाथ, नाड़ा झुब्बेदार लाइयो

ऐ मेरी पतली कमर ....।

+ + +

जब साजन ही परदेस गये मस्ताना फागण क्यूँ आया

जब साजन ही परदेस गये मस्तना फागण क्यूँ आया

जब सारा फागण बीत गया तैं घर में साजन क्यूँ आया

छम छम नाचैं सब नर नारी मैं बैठी दुखां की मारी

मेरे मन में जब अंधेरा मचा तैं चान्द का चांदण क्यूँ आया

इस पीया आया जी खित्याना जब जी आया पी मित्याना

साजन बिन जोबन क्यूँ आया जोबन बिन साजन क्यूँ आया

मन की तै अर्थी बंधी पड़ी आंख्यां मैं लागी हाय झड़ी

जब फूल मेरे मन का सूक्या लजमारा फागण क्यूँ आया

मेरी नई नई जवानी बिगाड़ी रसिया मैं तो दावा करूंगी अदालत में

बाजरे की रोटियां चने का साग तुझे जेलों का पानी पिला दूं रसिया

मैं तो दावा करूंगी अदालत में

मेरा नई दिल्ली का मुकदमा आगरे पहुंचा दूं

तुझे सिमले की जेल करा दूॅ सिया

मैं तो दावा करूंगी अदालत में

ससुर को पेस करूं जेठे को पेस करूं छोटे देवर की दे दूं गवाही रसिया

मैं तो दावा करूंगी अदालत में

मेरी नई नई जवानी बिगाड़ी रसिया मैं तो दावा करूंगी अदालत में

तीज व्रत त्यौहार आदि के गीत :–

आया तीजा का त्योहार

आज मेरा बीरा आवैगा

सामण में बादल छाए

सखियां नै झूले पाए

मैं कर लूं मौज बहार

आज मेरा बीरा आवैगा

\+ + +

आया तीजां का त्योहार

आज मेरा बीरा आवैगा

सा रै मन में चाव घणा

क्या सुंदर समय बणा सै

मन्नै कर द्यो तुरत तैयार

आज मेरा बीरा आवैगा

+ + +

आया तीजां का त्योहार

आज मेरा बीरा आवैगा

कच्चे नीम्ब की निम्बोली सामण कद कद आवै रे

जीओ रे मेरी मां का जाया गाडे भर भर ल्यावै रे

बाबा दूर मत ब्याहियो दादी नहीं बुलाने की

बाब्बू दूर मत ब्याहियो अम्मा नहीं बुलाने की

मौसा दूर मत ब्याहियो मौसी नहीं बुलाने की

फूफा दूर मत ब्याहियो बूआ नहीं बुलाने की

भैया दूर मत ब्याहियो भाभी नहीं बुलाने की

काच्चे नीम्ब की निम्बोली सामणया कद आवै रे

जीओ रे मेरी मां का जाया गाडे भय भय ल्यावै रे

+ + + +

जब साजन ही परदेस गये मस्ताना फागण क्यूँ आया

जब सारा फागण बीत गया तैं घर में साजन क्यूँ आया

+ + + +

छम छम नाचैं सब नर नारी मैं बैठी दुखा की मारी

मेरे मन में जब अंधेरा मचा तैं चान्द का चांदण क्यूँ आया

+ + + +

मन की तै अर्थी बंधी पड़ी आख्या मैं लागी हाय झड़ी

जब फूल मेरे मन का सूक्या लजमार फागण क्यूँ आया

झूलण आली बोल बता के बोलण का टोटा

झूलण खातर घाल्या करैं सैं पींग सामण में

मीठी बोली तेरी सै जणो कोयल जामण में

तेरे दामण में लिसकार उठै चमक रिहा घोटा

झूलण आली बोल बता के बोलण का टोटा

लरज लरज कै जावै से योह जामण की डाली

पड़ के नाड़ तुडा लै तैं रोवै तन्नै जामण आली

तेरे ढुंगे पै लटकै काला नाग सा मोटा

झूलण आली बोल बता के बोलण का टोटा

मोटी मोटी अंखियाँ के माह डोरा स्याही का

के के गुण मैं कहँ तेरी इस नरम कलाई का

चन्द्रमा सा मुखड़ा तेरा जणों नूर का लोटा

झूलण आली बोल बता के बोलण का टोटा।

विभिन्न जातियों के गीत :–

लोक की जड़ों का आमजन के भीतर से ही पोषण होता है, लोकगीत का वर्गीकरण का एक आधार जाति की दृष्टि से भी होता है, हमारे अनेक धर्म एवं जनजातियाँ उप जातियाँ मिलती हैं, वैसे देखे तो हर जाति की अपनी–अपनी विशिष्ट पहचान होती है। एक समय था जब गांव में कुछ जातियाँ अपने–अपने गीतों के माध्यम से कुछ विशिष्ट गीतों के द्वारा विशिष्ट जातियों का बोध होता था।

हिन्दी में विभिन्न बोलियों में अनेक गीत ऐसे मिलते हैं, जो विशेष रूप से जाति गीतों के संबंध की श्रेणी में आते हैं, जैसे 'बिरहा', नामक गीत का संबंध है अहिर जाति से है, शादी–ब्याह के अवसर पर, रास्ता चलते समय, गाड़ी हाकते समय, पशु चराते समय, लोगों को बिरहा गाते हुए सुना जा सकता है।[36]

डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय के अनुसार–''बिरहा शब्द के दो भेद हो सकते हैं, छोटा बिरहा और बड़ा बिरहा।'' छोटा बिरहा 4 कड़ियों का होता है जबकि लंबे बिरहा में कोई विशेष कथा पाई जाती है। ऐसी कथा का संबंध सामान्यतय किसी ऐतिहासिक घटनाओं एवं रामायण महाभारत से होता है।

'कहरवा' नामक गीत का संबंध 'गोड़ जाति' से बताते हैं कि पहले इस जाति के लोग मुख्य रूप से ब्याह शादी के अवसर पर कहरवा नामक गीत गाते थे और पालकी ढोने का कार्य करते थे, इन गीतों के अतिरिक्त कुछ अन्य जातियों के गीत भी हैं जैसे धोबियों के गीत, चमारों के गीत, मछुआरों के गीत, तेलियों के गीत आदि।

जाति संबंध गीत :–

कातिक बदी अमावस थी और दिन था खास दीवाली का

---

[36] डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–97

आंख्यां कै म्हां आंसू आ–गे घर देख्या जिब हाली का।

किते बणैं थी खीर, किते हलवे की खुशबू ऊठ रही

हाली की बहँ एक कूण मैं खड़ी बाजरा कूट रही।

हाली नै ली खाट बिछा, वा पैत्यां कानी तैं टूट रही

भर कै हुक्का बैठ गया वो, चिलम तले मैं फूट रही।।

\+ \+ \+ \+

चाकी धोरै जर लाग्या डंडूक पड़्या एक फाहली का

आंख्यां कै म्हां आंसू आ–गे घर देख्या जिब हाली का।।

सारे पड़ौसी बालकां खातिर खील–खेलणे ल्यावैं थे

दो बालक बैठे हाली के उनकी ओड़ लखावैं थे।

बची रात की जली खीचड़ी घोल सीत मैं खावैं थे

मगन हुए दो कुत्ते बैठे साहमी कान हलावैं थे।

कोए किसै का ना गोती नाती, या दुनिया कहती आई

चाल, चरित्र, चेहरा बदलै, सत्ता गैल्यां भाई

\+ \+ \+ \+

फूल्या–फूल्या हाडें जा भाई, चौधर थ्यागी भारी

जूण से जूण से खटकै सैं ईब, रड़क मेटद्यूं सारी

कुड़ते म्हं तैं ल्यकड़न नै होर्या, हुई नेता गैल्यां यारी

सत्ता किसै की ना होती, तेरी क्यूँ गई अक्कल मारी

ऊपर–ऊपर रहे नजर, ना धरती देवै दिखाई।

\+ + + +

चुपड़ चौधरी गैल्यां बैठ, कुछ कान भरणिये हो ज्यां सै

कुछ काम कढ़ाऊ होक्का पाडू, बात घड़णिये हो ज्यां सै

बाबू जी की शान देख कुछ, सहम डरणिये हो ज्यां सै

पांच, सात, संग हांडण नै, गैल फिरणिये हो ज्यां सै

मनै इसै–इसै कई दिखै सैं, ज्यब चौगरदे नजर घुमाई

कोठी बंगला गाड़ी ले ली, जुड़गी दौलत भारी

कान्धे ऊपर पिस्टल झूलै, बणग्या कब्जेधारी

हलके का एम.एल.ए. बणनै की, मन मन म्हं तैयारी

भाईचारे की पड़ै मानणी, या जनता हांगा लारी

पीस्सा हांगा दोनूं होगे, होग्ये ख्याल हवाई।

\+ + + +

जै लूटखोर तै बचणा सै तो लेणी पड़ै संभाल तन्नै

भूंडे माणस के हुंकारे भरण की, करणी होगी टाल तन्नै

अंग्रेजां सी सियासत का यो, पड़ै काटना जाल तन्नै

'मुकेश' चूकगी मौके नै तो, जिन्दगी भर मिलै गाल तन्नै

म्हारी मेहनत पै पलरे सैं ये, खूनी जोंक कसाई।

देवी–देवताओं के गीत :–

हमारे धार्मिक जीवन में त्यौहार एवं पर्वों का बहूत महत्व है। समय–समय पर हम धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर कई व्रत करते हैं, और देवी–देवताओं

का स्मरण करते हैं। इन सभी क्रियाओं को करते समय पूजा–पाठ के साथ–साथ भजन व गीत भी गाए जाते हैं–

महल सारदा तोहे मनाऊँ तेरी पोथी अधक सुनाऊँ

मोरधज से राजा भारी लड़का लिया बला

सीस धर भरी करौती भगत ने हेला दे बलवाया

धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया

धानू बोया खेत बीज नै आप्पै चाब्बा

लोग करै गिल्लान ऊपरा तोता भया

अरे भगत ने बिना बीज निपजाया

धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया

दीना अवा लगा आंच अवा में डारी

मंझारी के बच्चे चण दिये चार कूंट का करै कुम्हारी

कुल कै लाग्या दाग आप उतरे गिरधारी

अरे भगत ने बच्चा का सो बरतन कच्चा पाया

धर रे दीनानाथ पार तेरा ना किसी ने पाया

ताता खंभ कर्या तेरा कित ग्या भाई

देख खंभ की राह खड्या तुरग बहराई

अरे खम्भ पै कोड़ी नाल दरसाया।

दैनिक क्रिया संबंधी गीत :–

प्राचीन काल से हमारे समाज में ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग अपने विभिन्न कार्य करते समय गीत गाते थे, जैसे ग्रामीण महिलाओं द्वारा चक्की चलाते समय गाए जाने वाले गीत, फसल कटाई के समय गाए जाने वाले गीत, फसल की रोपाई के समय गाए जाने वाले गीत, पनघट पर जाती हुई महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले गीत, किसी भी समूह में एकत्रित होकर कार्य करते समय गाए जाने वाले गीत, इन गीतों के अंतर्गत ही आते हैं।

ग्रामीण जीवन के घरों में पत्थर की चक्की होती थीं और अनाज पीसने के लिए दो पाटों से बनी चक्की का उपयोग घर की महिलाएँ करती थीं। चक्की चलाने का काम सरल नहीं होता था। लेकिन फिर भी महिलाएँ सवेरे जल्दी उठकर घर की चक्की चलाने का कार्य करती थी और आटा–पिसाई का काम करती थी और इस प्रकार के कार्य को करते समय भी वे गीत गाती थी। इसी प्रकार धान की रोपाई करते समय भी गीत गाती थी। जो निम्न प्रकार से हैं–

टोकणी पीतल की रे रोहतक तै मोल मंगाई

ईढवां जाली का मैंने उसपै दोगढ़ जचाई

छेल तराइये ओ तेरी हँर लरजदी आई

घर ने मत आइए तेरा आ रा सुभे सिंह भाई

इतनी सी सुन कै हो सासड़ ने नणद दौड़ाई

पाणी के म्हारे रिते पड़े तेरा मरियो सुबेसिंह भाई

नणद चाली गाल मत दे सुबेसिंह की के लगै सै लुगाई।

1. उठ उठ री नणदल पानी ने चाल

सरवर दिखादे अपणे बाप का

चाली री नणदल कोस पचास

सरवन न आया तेरे बाप का

वा दीखै री भावज ऊॅची नीची पाल

वो दीखौ सरवर मेरे बाप का

तुम तै री नणदल घड़ला डबोय

मैं करूं दातण हरियल जाल की

आया री भावज डालिडा का साथ

टूटा तै लस्कर पाणी पीवेगा

घड़ला भावज दिया सै मंधाय

गिरवै छुहारा घड़ला भर दिया

उठ उठ री मायड़ घड़ला रिताय

बोझ मरै तेरी चिड़कली

हम तै हे बेटी उठा ना जाय

जाय उतारो बड़े भाई कै

उठ उठ री भावज घड़ला रिताय

बोझ मरै तेरी नणदली

म्हारी री नणदल दुखै सैं आंख

गोद भतीजा थारा रोवता

उठ उठ री मायड़ घड़ला उतार

न फोड़ू तेरे बारणै

किसने हे बेटी बोले सै बोल

किस ने मुख कर दीहनी गाल

काटूं हे बहूड़ तेरी हे जीभा

आख धतूरे मुख मैं भरूं

चूमूं हे बेटी तेरी हे जीभ

गिरी छुहारों तेरा मुख भरूं

2. मैं तो माड़ी हो गई राम

धंधा कर के इस घर का

बखते उठ कै पीसणा पीसूं

सदा पहर का तड़का

चूल्हे मैं आग बालगी

छोरे ने दिया धक्का

बासी कूसी टुकड़े खागी

घी कोन्या घर का

सास ननद निगोड़ी न्यूं कहे

तने फेरा क्यूं ना चरखा

मार कूट कै नै पापण मेरी

देवर कर लिया घर का

बड़े जेठ की मूंछ उखाड़ी

सुसरे का कालजा धड़का

मैं हठीली हट की पूरी

कहा न मानूं किसे का

3. ऊठ बहँ मेरी पीस ले यो दिन धोला लिकड़ आया हो।

तन्नै कै सासू पीसणा मैं काच्ची नींद जगाई हे।

सेजां पै तै बालम बोल्या सुण ले अम्मां मेरी हो।

भले घरां की ब्याह के ल्याण इब नां चालै थारी हे।

भारी सी मैं झोट्टी ल्यूंगा छोटा बीरा ल्यूंगा पाली हे।

बलध्यां की मैं जोड़ी ल्यूंगा बाबल ल्यूंगा हाली हे।

भारी सी मैं चक्की ल्यूंगा थम ने ल्यूं पिनहारी हे।

गोबर कूड़ा थमै करोगी गरज पड़ै रह जाइयो हे।

यात्रा संबंधी, तीर्थ संबंधी तथा मेला संबंधी गीत :–

ग्रामीण आंचल में भरने वाले मेलों में जाते समय एवं तीर्थ यात्रा पर जाते समय ग्रामीण औरतों द्वारा जो गीत गाए जाते हैं, उस प्रकार के गीतों के यात्रा तीर्थ तथा मेला गीत कहते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में मेलो का बड़ा महत्व है और ग्रामीण औरतें एवं बच्चे मिलजुल कर एक समूह में एकत्रित होकर मेलों में जाते हैं। उस समय जो गीत गाए जाते हैं वे इस प्रकार हैं–

मन्नै तो पिया गंगा न्हुवादे जा रा सै संसार,

हाँ ए जा रा सै संसार

तन्नै तो गोरी क्यूंकर न्हुवाद्यूं हात्तड़ पड़ री भैंस,

हाँ ए हात्तड़ पड़ री भैंस,

एक जतन पिया मैं बतलाद्यूं कर दे बेड़ा पार,

हाँ ए कर दे बेड़ा पार

खूंटी पै मेरा दामण लटकै चुंदड़ी छापेदार,

हाँ ए चूंदड़ी छापेदार

डब्बे में मेरी नथ धरी सै पहर काढियो धार,

हाँ ए पहर काढ़ियो धार

बाहर तै एक मोडिया आया बेब्बे भिक्षा घाल,

हाँ ए बेब्बे भिछा घाल

बेब्बे तो तेरी न्हाण गई सै जीज्जा काढै धार,

हाँ ए जीज्जा काढे धार

खुंटा पड़ागी जेवड़ा तुड़ागी भाजगी सै भैंस,

हाँ ए भाजगी सै भैंस

डंडा लैके पाछे होलिया लैण गया था भैंस,

हाँ ए लैण गया था भैंस

गाती खुलगी पल्ला उडग्या मूंछ फड़ाके ले,

हाँ ए मूंछ फड़ाके ले

गलियाँ में यो चरचा हो रही देखी मुछड़ नार,

हाँ ए देखी मुछड़ नार

कोट्ठे चढकै रुक्कै मारे कोई मत भेज्जे न्हाण,

हाँ ए कोए मत भेज न्हाण ...... ।''

बच्चों के खेल संबंधी गीत :—

ग्रामीण क्षेत्र में बच्चे अनेक प्रकार के खेल खेलते हैं इन खेलों को खेलते समय वे अपने मन के भावों को गीत गाकर भी प्रस्तुत करते हैं। खेलों के समय में गाए जाने वाले गीत जैसे कबड्डी खेलते समय एक गीत हम सब भी गाते हैं और सुना भी है जैसे—

कबड्डी, कबड्डी, कबड्डी आई मेरी बारी।

कबड्डी, कबड्डी, कबड्डी आई मेरी बारी।।

इस प्रकार से सभी बच्चे अपनी अपनी बारी का इंतजार करते रहते हैं और बारी—बारी से अपनी बारी को खेलते हैं और मनोरंजन पूर्वक खेल खेलते रहते हैं।

विविध प्रकार के गीत :—

ऊपर वर्णित लोकगीतों के प्रमुख भेद एवं उपभेदों के अतिरिक्त लोक में अन्य गीतों का परचलन है। इन गीतों को हम अलग—अलग प्रकार में विभक्त न

करके यहाँ पर विविध गीतों के अंतर्गत समावेश कर रहे हैं। डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय एवं देवराज यादव ने अपनी पुस्तकों में लोकगीतों के वर्गीकरण के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के गीतों का विशेष रूप से परिचय दिया है–

खड़ी लुगाइयाँ के मांह सुथरी श्यान की बहँ

पर थी कर्म हीन कंगाल किसान की बहँ

गल में सोने का पैंडल या हार चाहिए था

बिन्दी सहार बोरला सब सिंगार चाहिए था

सूट रेशमी चीर किनारीदार चाहिए था

इसी इसी नै तो ठाडा घर बार चाहिए था

रुक्का पड़ता जो होती धनवान की बहँ।

चारों तरफ लुगाइयाँ की पंचात कर रही थी

सब की गेलां मीठी मीठी बात कर रही थी

बात करण म्हं पढ़ी लिखी नै मात कर रही थी

दीखै थी जणु सोलह पास जमात कर रही थी

बैठी पुजती जो होती विद्वान की बहँ।

1. हो पिया भीड़ पड़ी मैं नार मर्द की खास दवाई हो,

मेल मैं टोटा के हो सै

टोटे नफे आंवते जाते, सदा नहीं एकसार कर्मफल पाते

उननै ना चाहते सिंगार जिनके, गात समाई हो

मर्द का खोटा के हो सै

परण पै धड़ चाहिए ना सिर चाहिए,

ऊत नै तै घर चाहिए ना जर चाहिए

बीर नै तै बर चाहिए होशियार, मेरी नणदी के भाई हो

अकलमंद छोटा के हो सै

पतिव्रत बीच स्वर्ग झुलादे, दुख बिपता की फांस खुलादे

भुलादे दरी दुत्तई पिलंग निवार, तकिया सोड़ रजाई हो

किनारी घोटा के हो सै।

1.5) लोकगीत का महत्व :–

लोकगीतों के महत्व को जानने के लिए उस प्रदेश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज, साहित्य एवं कला तथा आकांक्षाओं के सूक्ष्म अवलोकन का अध्ययन करना आवश्यक है। लोकगीत लोक साहित्य के विशेष अंग होते हैं, मानव सभ्यता एवं संस्कृति की टूटी श्रृंखलाओं को जोड़ना लोक साहित्य का प्रमुख काम है, साहित्य समाज का दर्पण होता है, इसमें कोई संदेह हो सकता है। लेकिन लोकगीत समाज का यथार्थ चित्र अंकित करते है, समाज के प्रत्येक स्पनदन का अवलोकन, पौराणिक व ऐतिहासिक चरित्र के द्वारा चित्रण, गेयता, भावव्यंजकता, भावोच्छ्वास, की सहजता, अनिर्वचयनीय, आदिम सत्ता, विभिन्न प्रकार के संस्कार, ऋतु, विवाह पर्व, माह आदि की अभिव्यंजना जिस सरलता के साथ लोकगीतों में होती है। वैसी अन्यंत्र मिलना एक दुर्लभ कार्य है। डॉ. श्याम परमार ने लोकगीतों की सुरभि अधोलिखित शब्द में की है, ''सदियों के घात प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है, मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने ताने–बाने बुने हैं, स्त्री–पुरुष ने थककर इसके माधुर्य में अपने थकान मिटाई है उनकी ध्वनि में बालक सोये हैं, जवानों में प्रेमी की मस्ती आई है। बूढ़ों ने मन

बहलाया है, वैरागियों ने उपदेश से अमृत का पान कराया है। विरही युवकों ने मन की कसक मिठाई हैं, विधवाओं ने अपने एकांकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने थकावट दूर की हैं, किसानों ने बड़े–बड़े खेत जोते हैं। मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं, मौजियों ने चुटकुले छोड़े हैं।''

लोकगीत आदिम से लेकर आधुनिक काल तक के मानव सफर में आने वाले परिवर्तनों का प्रत्येक पहलू हमें लोकगीतों में दिखाई देता है, सामाजिक परिवेश में पारिवारिक संबंध, रीति–रिवाज, आदर्श प्रेम तथा नारी की परतंत्रता आते हैं, जातियों का अध्ययन करने के लिए लोकगीत भी उत्तम साधन माना गया है, इसके अंतर्गत सामाजिक आचार–विचार, रीति–रिवाज और सामाजिक कुरीतियाँ आदि का भी उल्लेख गीतों के माध्यम से उपलब्ध होता है। डॉ. ग्रियर्सन के शब्दों में–''लोकगीत अनुभवी खाने हैं, उनकी संभवत कोई भी पंक्ति ऐसी नहीं, जो यदि प्रकाशित हो जाए, तो भाषा विज्ञान की किसी ने किसी समस्या के लिए मूल्यवान सामग्री न प्रस्तुत करें।''[37]

लोकगीत, लोक साहित्य के प्राण होते हैं लोकगीत मानव जीवन में और मुक्ति दोनों प्रदान करने वाले हैं, हमारे देश का सौभाग्य हमारे लोकगीतों में सुरक्षित है, यह मानव समाज का आईना होते हैं तथा समाज में लोगों को एक–दूसरे के समीप लाते हैं, लोक गीतों की लोकप्रियता इस बात को सिद्ध करती है कि समाज में इनका महत्वपूर्ण स्थान है, देश के विभिन्न अंचलों में दूर–सुदूर प्रदेशों में, पर्वतों के शिखरों पर, नदियों की घाटियों में और समुंदर के तटों पर, रेगिस्तानी क्षेत्रों में तरह–तरह के गाए जाने वाले गीत एक सीमा तक परस्पर इतनी ही समानता लिए हुए होते हैं कि इनके माध्यम से विविधता में एकता के दर्शन दिखाई देते हैं।

श्याम चरण दुबे का मानना है कि–''ग्राम गीतों का समस्त महत्व उनके काव्य सौंदर्य तक ही सीमित नहीं है। इनका एक बहूत ही महत्वपूर्ण कार्य

---

[37] गुणपाल सिंह सांगवान, हरियाणवी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या–70

है, एक विशाल सभ्यता का उद्घाटन जो अब तक विस्मृति के समुद्र में डूबी हुई है, या गलत समझ ली गई है।''[38]

लोकगीत मन में एक उमंग पैदा करते हैं, लोकगीतों को सुनकर मन में अलौकिक आनंद की अनुभूति होती है, लोकगीतों से दूखों को कम किया जा सकता है। ''रीति नीति, इतिहास और आदर्श सब कुछ इनके अंतर्गत होते हैं, देश का सच्चा इतिहास और उसकी नैतिक और सामाजिक आदर्श न गीतों में ऐसे सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।''[39]

लोकगीत हमारे धर्म एवं लोक संस्कृति के प्राण हैं, मानव आधुनिक, यांत्रिकता एवं सभ्य वातावरण का अभ्यस्त न था। वह जीवन की भौतिकता से अनभिज्ञ था। सरलता, रीति–नीति, प्रकृति पूजा एवं देव पूजा आदि उनके लिए श्रेष्ठ कर्म थे। यही उनकी सभ्यता और संस्कृति की प्राचीन समय की धार्मिक परंपराएँ, मानव समाज के नियम कानून, मानव मन के सहज उच्छवास, जिनके बारे में इतिहास मौन है, जिनका अब प्रचलन तक नहीं लोक गीतों के माध्यम से उद्घाटित होते हैं।

1.6) हरियाणवी लोकगीतों का जन्म :–

भारत 'अनेकता में एकता' के सूत्र में बंधा हुआ देश है। यहाँ विभिन्न जातियों, अनेक धर्मों, बहूरंगी संस्कृति एवं विविध भाषाओं के लोग रहते हैं। अनेक प्रकार की विविधता एवं भिन्नता होते हुए भी यहाँ के जनजीवन में सांस्कृतिक एकता पाई जाती है। आवागमन की सुलभता, टी.वी., इंटरनेट, मोबाइल आदि के बढ़ते प्रयोग ने किसी भी प्रदेश के लिए संगीत को आसानी से उपलब्ध करवाया है। वर्तमान समय में विविध प्रकार के उत्सवों का आयोजन होता है जिसमें विविध प्रदेशों के विविध लोक कलाकार अपने–अपने लोकगीतों

---

[38] श्याम चरण दुबे, छत्तीसगढ़ी लोकगीतों का परिचय, भूमिका
[39] कविता कौमुदी, भाग–5, लाला लाजपत राय के पत्र से उद्धृत

व लोकनृत्यों को विभिन्न माध्यमों से प्रस्तुत करते हैं। किसी भी देश प्रदेश का संगीत उस स्थान के लोकजीवन की सभ्यता व संस्कृति का दर्पण है।

हरियाणा में लोकगीतों की परम्परा अनन्त एवं प्राचीन है। श्री एस.एस. चिब ने यहाँ के लोकगीतों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है–

"Like folk songs of all regions this tract too has folk songs befitting every occasion, Birth, Marriage, separation, changing seasons, Harvest, Rain, Drought, Fairs, festivals etc. Are commemorated througha folk songs, sister-in-aw, mother-in-law home etc. All find place througha rhymes, comr, lores and pitiful observations."

अर्थात् जैसे–जैसे लोकगीत सभी प्रदेशों में होते हैं, उसी प्रकार ही प्रत्येक अवसरों पर लोकगीत गाये जाते हैं। जन्म, शादी, प्रयोग, मृत्यु, बदलता मौसम, अनाज काटने का समय, वर्षा, सूखा, पर्व, त्योहार आदि उत्सव सभी लोकगीतों के माध्यम से मनाए जाते हैं। साली, सास, पतोहँ, साला, माता–पिता का घर, सास–ससुर के घर आदि सभी स्थलों पर ताल–ताने हंसी–मजाक शिक्षा और धैर्य पूर्व मजाक किए जाते हैं। यहाँ प्रत्येक माह, ऋतु, पर्व आदि से जुड़े हुए लोकगीत है, जिसमें सम्पूर्ण वर्ष के बदलते मौसम का विवरण मिलता है।

लोकगीतों का जन्म यानि की हमारा जन्म। भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व की अगर हम बात करें तो हम यह पाते हैं कि मानव प्राचीन काल से ही मनोरंजन के साधनों का आदि रहा है। परिणामतः जब प्राचीन काल में मानव का जन्म हुआ वहीं से मानव स्वभाव का भी जन्म हुआ। जैसे–जैसे मानव का विकास हुआ उसी के अनुरूप उसके शौक, रहन–सहन खान–पान एवं मनोरंजन के साधनों का भी क्रमशः विकास होता चला गया।

अगर लोकगीतों की बात करें तो लोकगीत मानव स्वभाव का ही एक अंग है। जब हमारे पास मनोरंजन के साधन नहीं थे, तब हमारा विकास नगण्य था। उस समय मानव के जन्म के साथ ही लोक सभ्यता एवं लोक परम्परा के साथ ही हमारे लोकगीतों का भी जन्म हुआ। लोकगीत मुख्य रूप से दो शब्दों से मिलकर बना है लोक+गीत अर्थात् उन समस्त व्यक्ति विशेष के अपने वह गीत जो जन्मजात है।

चाहे हम हरियाणवी लोकगीतों की बात करें या विश्व के किसी अन्य क्षेत्र के लोकगीतों की सभी की भाषा में कोई न कोई अन्तर अवश्य हो सकता है। परन्तु उन सभी के भावों में न तो कोई भेद है और न ही कोई परिवर्तन। लोकगीतों के जन्म की बात करें तो लोकगीतों का जन्म सम्भव मानव के जन्म के साथ ही हुआ होगा। जब किसी नवजात शिशु का जन्म होता है। तभी से वह रोना और हंसना जानता है। ये दोनों क्रियाएँ उसके अंदर जन्म से ही पाई जाती है। न उसे कोई हंसना सिखाता है और न कोई उसे रोना सिखाता है। जब वह खुश होता है, तो उसके चेहरे पर मुस्कुराहट होती है और जब उसे भूख लगती है या अन्य किसी प्रकार से कष्ट होता है तब वह स्वाभाविक रूप से रोता है। परिणामतः वर्तमान समय में भी ऐसा ही होता है कि यदि मनुष्य खुश है तो आनंद विभोर होकर हंसता है, खुशियाँ मनाता है और जब वह दुखी होता है तो वह शोक मनाता है। इन सुखों तथा दुखों के पलों में उसके खुशी एवं विरह–वेदना के स्वर अपने आप ही उसके कंठ से फूट पड़ते हैं।

जब प्राचीनकाल में मनुष्य आदि जनजाति के रूप में जंगलों में निवास करता था। तो वहाँ वह जंगली जानवरों के भय से कंदराओं या गुफाओं में निवास करता था और सुरक्षा की दृष्टि से अपने समुदाय के लोगों को भी अपने साथ रखता था। जब उसे अपनी खुशी या वेदना को व्यक्त करना पड़ा होगा तब वह अपनी भाषा में कुछ यही गुनगुनाता रहा होगा और उसी गुनगुनाहट के स्वरों को कुछ बुद्धिजीवियों ने संशोधित किया होगा और उन समस्त स्वरों में से

जो राग–रागनियाँ ज्यादा व्यक्तियों को पसंद आई होंगी वही वहाँ के लोकगीतों के रूप में विकसित होने लगी और तभी से हमारे लोकगीतों की शुरूआत हुई होगी।

मानव उस समय प्रकृति के अत्यधिक नजदीक था और प्रकृति से उसका सीधा संबंध होने के कारण वह सरल था उसमें किसी भी प्रकार का कोई दिखावटीपन या आडम्बर नहीं था। वह पूर्ण रूप से प्रकृति की गोद में पलने वाला जीव था। उसके सरल व सादगीपूर्ण रहन–सहन विचारों वास्तविक एवं सहज जीवन के कारण ही उसके गीतों में स्वच्छता एवं स्वाभाविकता का पुट अधिक था और वही सरलता मधुरता ज्यों की त्यों हमारे लोकगीतों में वर्तमान में भी बनी हुई है।

जब हम इतिहास के पन्नों को पलटते हैं तो हम पाते हैं कि समस्त विचारों और प्राचीन काल की समस्त पुस्तकों, रीति–रिवाज आदि में काफी हद तक मतभेद देखने को मिलता है ठीक उसी प्रकार वर्तमान समय में लोकगीतों के उद्‌भव और विकास को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। लोकगीतों का सृजन कैसे हुआ? इन गीतों के रचयिता कौन हैं? लोकगीतों को स्वर किसने दिया? लोकगीतों को किसने गाया? आदि का स्पष्टीकरण करना अत्यंत कठिन कार्य है। क्योंकि जब हमारी लोक परम्पराओं और सभ्यताओं का जन्म हुआ, तो उस समय का कोई ठोस दस्तावेज हमें प्रांत नहीं होता है। जिसके माध्यम से हम यह पता लगा सकें कि लोक गीतों का सृजन कैसे हुआ?

निष्कर्ष :–

अतः लोकगीतों के जन्म को लेकर कुछ भी कहना सरासर झूठ होगा। इसे लेकर केवल सम्भावनाएँ जताई जा सकती है। जबकि पूर्ण आत्मविश्वास के साथ यह नहीं कहा जा सकता की लोकगीतों की उत्पत्ति कहा से हुई।

1.7) हरियाणवी लोकगीतों का इतिहास :–

हरियाणा में लोकगीतों की एक समृद्ध परम्परा रही है जो मुख्य रूप से हमारे समाज के सभी वर्गों की जरूरतों को पूरा करती है। जब हम हरियाणवी लोकगीतों की बात करते हैं तो मुख्य रूप से हमारे मन में कुछ प्रश्न आते हैं कि हरियाणवी लोकगीतों का जन्म क्यों हुआ? कब हुआ? और हरियाणवी लोकगीतों का इतिहास क्या था? यह किस प्रकार आगे बदले हुए वर्तमान समय तक आ पहुँचा है?

हरियाणवी लोकगीतों का इतिहास को जानने में पहले हमें भारत एक विश्व के इतिहास को जानना होगा। तब हमें हरियाणवी लोक संस्कृति के साथ–साथ लोकगीतों को भी जान पायेगें।

लोकगीत की रचना प्रायः अज्ञात होती है। लोकगीत लोक के गीत होते हैं, जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा समाज अपनाता है। लोकगीत सामूहिक रीति में निर्मित होते हैं।

लोकगीत का सृजन सर्वप्रथम एक व्यक्ति के मन में उत्पन्न भावों को व्यक्त करने के द्वारा और फिर मौखिक परम्परा में रहने के कारण समय–समय पर किया जाता है। मानव हृदय की रसात्मक अनुभूति चाहे वह हर्ष की हो या वियोग की हो। उन समस्त अनुभूतियों को हृदय की सीमा में बाहर प्रस्फुलित होने व वाणी के भाव विचार मुखरित होने पर लोकगीतों का प्रवाह उमड़ पड़ता है।

हरियाणवी लोकगीतों का इतिहास एवं सृजन को खोजना सम्भव कार्य नहीं है। फिर भी इनके बारे अलग–अलग विद्वानों की अलग–अलग राय है, कुछ विद्वान इसे संस्कारों की उत्पत्ति के साथ मानते हैं तो कुछ विद्वान इसे मानव सृजन के साथ जोड़ते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव में मन को बहलाने के लिए इन लोकगीतों को अपने मधुर कंठ द्वारा प्रस्तुत किया गया।

हरियाणा संगीत परम्परा में समृद्ध है और यहाँ तब कि स्थान के नाम भी रागों के नाम पर रखा गया है, उदाहरण के लिए चरखी, दादरी जिले के गांव जैसे– जयसरी, हिंडोला, टोड़ी, गोपी, जाका, सांरगपुर, नंदयम आदि। हरियाणा संगीत का शास्त्रीय रूप भारतीय शास्त्रीय संगीत में जुड़ा हुआ है। हरियाणवी शास्त्रीय संगीत में लोक संगीत व नवचारों का प्रयोग हुआ है। जबकि भारतीय शास्त्रीय संगीत में राग गाने का उपयोग होता था।

हरियाणा संगीत देशी प्रपत्र पर आधारित है इसमें राग, राग भैरव, राग पहाड़ी, राग काफी तथा मौसमी गीत, गाने के लिए प्रयोग होने वाले गीत। शादी, बहादुरी के किस्सा, रास लीला, रागिनी आदि है। इसके साथ–साथ हरियाणवी लोकनृत्य जैसी–खोरिया चौपैया, लूर, बीन, घूमर, धमाल, फाग सगाई, बान, कुम्भ पूजन आदि शामिल है।

आजकल हरियाणवी लोकगीत फिल्मी धूनो पर भी देखा जा सकता है। हरियाणा के लोक संगीत को सांगियों और जोगियों ने फैलाया है। हरियाणवी लोक संगीत के साथ–साथ लोकगीतों को भी अपनाया गया है। हरियाणा में लोकगीतों की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस परम्परा का मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं ने गीत, बोली, शैली, शब्दों द्वारा इसे आगे बढ़ाने का कार्य किया है। ग्रामीण महिलाएँ आमतौर पर मंगल गीत, कुआ पूजन गीतों के द्वारा समाज में अपनी परम्परा को आगे बढ़ा रही है। जब लोक मानस गाने लगता है तो लोकगीतों का सृजन होता है। ऐसे गीत जो एक नामी व्यक्ति द्वारा निर्मित न होकर 'लोक' द्वारा निर्मित होते हैं। लोकगीत में गेयता का होना जरूरी है। हरियाणा के लोकगीत किसी संदर्भ ग्रंथ से कम नहीं है।

हरियाणवी लोकगीतों के इतिहास के बारे में हम बात करें तो सर्वप्रथम हमें भारत को एक विश्व के लोकगीतों के इतिहास के रूप में जानना होगा। लोकगीत ही समाज एवं राष्ट्र को मार्गदर्शन प्रदान कर हमारी सभ्यता एक

संस्कृति को जीवित रखने का कार्य भी करते हैं। लोकगीत आज भी समाज में किसी न किसी रूप में जाने जाते हैं।

अध्याय-२

जन्म एवं मृत्यु संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

जन्म एवं मृत्यु संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

संस्कार, अर्थ , परिभाषा :-

संस्कार शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की सम पूर्वक कृंज धातु से धंज्य प्रत्यय द्वारा हुई है। (सम+क्र+धज्ज = संस्कार) जिसका अर्थ शुद्धता से है, संस्कारों से ही हमारी संस्कृति बनी हुई है। हमारे ऋषि–मुनियों ने मनुष्य जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए संस्कारों की खोज की। इसके अतिरिक्त विभिन्न दर्शनों में संस्कार का अर्थ विस्तार पूर्वक किया गया है। मीमाँसक विधिवत शुद्धि से इसका अर्थ समझते हैं। अद्वैत वेदांती जीवन पर शारीरिक क्रियाओं में मिथ्या आरोप (निश्चित ही शुद्धीकरण के प्रयास में) को संस्कार मानते हैं, जबकि न्याय दर्शन आचार्य भावों को व्यक्त करने की आत्म व्यंजन शक्ति को संस्कार समझते हैं, दूसरी ओर संस्कृत साहित्य की विशाल साहित्य संपदा में इसे शिक्षा, संस्कृति, प्रशिक्षण सौजन्य, पूर्णतया, स्वभाव, शुद्धि क्रिया, धार्मिक विधि–विधान, अभिषेक विचार भावना आदि के अर्थों में प्रयोग करते हैं।[1]

हिन्दू धर्म की संस्कृति संस्कारों पर ही निर्भर है। हिन्दुओं का जीवन जन्म से लेकर अंत तक संस्कारमय होता है। 'संस्कार' या 'संस्कृति' संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है–मनुष्य का वह कर्म जो अलंकृत हो। हिन्दू धर्म में मुख्य रूप से 16 संस्कारों का वर्णन किया जाता है। जो मनुष्य की अवस्था के अनुसार उस पर लागू होते हैं।

संस्कारों से ही संस्कृति बनी हुई है और संस्कारों के द्वारा ही मानव जीवन चला रहा है, हमारे जीवन के सभी कार्य सदाचार एवं सुसंस्कार से जुड़े हुए होते हैं, भारतीय जन जीवन का प्रत्येक कार्य धर्म कर्म से जुड़ा हुआ है,

---

[1] डॉ. सुखविंदर कौर, पंजाब के संस्कारगत लोकगीतों का विश्लेषण, पृष्ठ संख्या–12

संस्कार हमारे जीवन को संतुलित बनाने में भूमिका अदा करते हैं, संस्कारों के माध्यम से ही हमारा दैनिक जीवन विकसित होता है, संस्कार = सम (सम्यक) + कर। सम का अर्थ है अच्छा और कर का अर्थ काम या क्रिया।

व्यक्ति के प्रत्येक कर्म अच्छे संस्कारों से युक्त होने चाहिए। उदाहरण के लिए केला खाना और छिल्का फेंकना एक क्रिया है। छिलके को कूड़ेदान में डालना एक प्रकृति है। केला खाकर छिलके को सड़क पर फेंकना एक विकृति है और अन्य व्यक्ति द्वारा रास्ते पर फेंके गए छिलके को उठाकर कूड़ेदान में डालना एक संस्कृति है। सद्गुणों को बढ़ाना एवं अवगुणों को घटाना संस्कृति है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अच्छा कार्य करना ही संस्कृति है, वस्तुतः संस्कार सुखद मानव जीवन को ढालने की टकसाल है, संस्कारों में वर्णित कर्म कांड आचार व्यवहार प्रथाएँ आदि प्रायः सभी देशों में पाई जाती है। सच तो यह है कि संस्कार संस्कृति की नींव के पत्थर हैं जिन पर संस्कृति का महल खड़ा किया जा सकता है।

इन संस्कारों का अतीत हमारे जीवन काल से जुड़ा हुआ है। प्राचीन संस्कृतियों में संस्कारों का प्रतिष्ठित स्थान और आधुनिक काल में भी इनका बहूत महत्व है।

1. राजबली पांडेय मतानुसार–''वास्तव में संस्कार व्यंजक तथा प्रतीकात्मक अनुष्ठान है, उनमें बहूत से अभिनयात्मक उद्गार और धर्म वैज्ञानिक मुद्राएँ इंगित पाई जाती है।''

2. जैमिनी के विचारों अनुसार–''संस्कार व प्रक्रिया है, जिसके करने से पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य को करने योग्य हो जाता है।''

3. डॉक्टर बैरिस्टर सिंह यादव का मत है कि–''संस्कार की दृष्टि से हमारे यहाँ जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के पश्चात् तक संस्कारों का विधान है। जीवन भर, अवस्था और अवसर के अनुसार कोई न कोई संस्कार होता रहता है।''[2]

4. डॉक्टर श्रीधर मिश्र का कथन है कि–''परिवार ही मानव की प्रथम पाठशाला है, यहीं से शिक्षा प्रारम्भ होती है और परिवार से हमारे संस्कार प्रारम्भ होता है।''[3]

5. डॉ. सत्या गुप्ता का मत है कि–''संस्कार और मानवीय काया कलाप, विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं, जिनसे होकर जीवन धारा प्रभावित रहती है, यही दो किनारे धारा को मर्यादित संतुलित तथा नियमित होने में सहायता करते हैं, इनका अतिक्रमण धारण साधारण रूप से नहीं होता, यदि होता है तो उसको सामाजिक, धार्मिक तथा ऐसी ही किसी क्रांति के नाम से पुकारा जाता है।''[4]

6. ''इसके अतिरिक्त मानव जीवन में सद्गुणों का विकास करना और दोषों का निराकरण करने को संस्कार कहा गया है।''[5]

इन परिभाषाओं के अनुसार संस्कार मानव जीवन को आधार प्रदान करते हैं, उसके अवगुणों का निदान कर उनमें सद्गुणों का संचार करते हैं, उसे जीवन में जीने की राह दिखाते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी शब्दकोश में अनेक अर्थ प्रस्तुत किए गए हैं, जैसे जन्म से मरण पर्यंत द्विजातियों के शास्त्रों में बताया तबलाए गए अनुष्ठान द्वारा त्रुटि दूर करना इंद्रियों पर बह आर्य बिषयों से पड़ने वाला प्रभाव, पूर्व जन्म का अर्जित गुण, दोष का प्रभाव, संगत आदि से चित पर पड़ने वाला प्रभाव, पवित्र करना, धारणा विश्वास, स्वभाव का शोधन,

---

[2] डॉ. हरीशरण वर्मा, हरियाणवी संस्कार गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठाभूमि, पृष्ठ संख्या–20
[3] भोजपुरी लोक साहित्य, सांस्कृतिक अध्ययन, प्रश्न 88
[4] खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–20
[5] शंकर बसे वेदांश उत्तर अध्याय 1.4

शिक्षा उपदेश, भूषित करना, सजाना, जियोनोद्वार करना को संस्कार का नाम दिया गया है।

संस्कार शब्दको एक दिव्य शब्द का गया है। इसी कारण से तो विश्व संस्कृति के आदिकाल से संस्कारों का प्रचलन पृथ्वी के प्रत्येक भू–भाग पर, किसी न किसी रूप में हमेशा रहा है और रहेगा संस्कार मनुष्य के गर्भ में आने से पूर्व से लेकर मृत्यु तक चलते हैं, संस्कार के द्वारा ही मनुष्य और पशुओं में अंतर देखा जा सकता है।

समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कार :–

हमारे हिन्दू धर्म में सभी कार्य संस्कारों से भरे हुए हैं हिन्दू समाज में 16 संस्कारों का वर्णन किया गया है– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म, कर्ण छेदन, विद्या आरम्भ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन विवाह, अन्त्येष्टि।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सोलह संस्कार मानव जीवन के पूर्ण विकास में आवश्यक है। पर आजकल इन संस्कारों में केवल तीन ही संस्कार प्रचलित हैं, जन्म, विवाह, मृत्यु। इन संस्कारों को गीतों के माध्यम से प्रचलित किया जाता है। इस प्रकार संस्कार गीत वे गीत हैं जो संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं, इनमें कुछ अनुष्ठान के अंग हैं, शेष मनोरंजन, हर्ष उल्लास, एवं आनंद की भावना से पूर्ण होते हैं। समाज में व्यक्ति के लिए जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत अवसर युक्त संस्कार निर्धारित किए गए हैं। संस्कार प्रधान देश होने के कारण भारत में हिन्दू शास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान है। इनमें जन्म, विवाह और मृत्यु पर अधिक गीत गाए जाते हैं, इन गीतों में पुत्रइच्छा, पुत्री अनिच्छा, गर्भधारण के बाद बहू रानी की इच्छा, प्रसव पीड़ा, ननद के उपहार, पीला ओढ़ाना, जच्चा के लिए व्यंजन, कन्या विवाह की चिंता, सुहाग, भात, उबटन,

सेहरा, घोड़ी, बारात, छंद, कन्या विदाई, वधू आगमन पर बधाई और मृत्यु से संबंधित शोक गीत सम्मिलित किए गए हैं।[6]

समय के साथ–साथ कई संस्कार लुप्त हो गए हैं और इन संस्कारों का महत्व कम हो गया है। लोक वार्ता की दृष्टि से उपरोक्त 3 संस्कारों के अतिरिक्त, मुंडन, संस्कार का कुछ महत्व अतिविशिष्ट है। कर्ण छेदन और जनेऊ (यज्ञ पवित) आदि ऐसे संस्कार हैं, जो शास्त्रोंगत विधि विधान के साथ खड़े हैं। वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में संस्कारों के दो प्रकार प्रचलित हैं। एक शास्त्रीय स्वरूप को विधिपूर्वक मंत्र उच्चारण द्वारा ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है। संस्कारों के दूसरे स्वरूप को महिलाएँ ही सम्पन्न कर लेती हैं, महिलाएँ अपने लोकगीतों के द्वारा समाज की परंपराओं को ध्यान में रखते हुए हैं, संस्कारित गीतों को अपने कोमल कंठ से गीत गाकर जन–जन का मनोरंजन करती हैं, संस्कार गीत प्रसन्नता के अवसर पर खुशी प्रदान करते हैं, तो दुख के समय में शोकाकुल हो करुणामय दृश्य भी प्रस्तुत करती हैं।

हमारा संपूर्ण जीवन संस्कारों से भरा हुआ है इसलिए संस्कारों से संबंधित गीत अत्यधिक हैं।

जन्म संस्कार संबंधी लोकगीतों की समीक्षा :–

संस्कारों में सबसे महत्वपूर्ण जन्म संस्कार को माना गया है, जन्म संस्कार से अभिप्राय पुत्र जन्म से न हों कर पुत्री जन्म से भी माना गया है। पुत्र जन्म पर सभी संस्कार लोकगीतों के माध्यम से पूर्ण किए जाते हैं जबकि कुछ–कुछ समाज में लड़कियों के जन्म से संबंधित लोकगीत नहीं गाए जाते। नारी को पुत्र रत्न प्राप्ति होने पर ही पूर्णतया नारी प्राप्त करती हैं। क्योंकि शख के विचारों अनुसार–''जिसे जीवन में पुत्र और पौत्र प्राप्त हो गए, जिसका वेद

[6] डॉ. गुणपाल सांगवान, हरियाणवी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या–27

ज्ञान, यज्ञ या स्वाध्याय और यज्ञ (सत्य कार्य) कार्य चल रहा है, स्वर्ग उसके हाथ में था।''[7]

जो स्त्री पुत्र रत्न प्राप्त नहीं करती उसे समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है, और उसे बांझ औरत का समाज में दर्जा दे दिया जाता है। इस दुख से नारी अपने हृदय वेदना एक गीत के माध्यम से प्रस्तुत करती है। नारी अपनी वेदना को किस प्रकार से प्रकट कर रही है जो एक लोक गीत के माध्यम से नारी की वंदना बांझ औरत की वंदना प्रस्तुत की गई है। जिसमें उसने अपने करुणामयी चित्रण को प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है–

एक दुःख री मैंने कोख का,

कोई या मेरे मारे से मान,

तेरी रही बाहन कै सात पुत्तर,

कोई एक उधारा ले लय,

सोना री चांदी मिले से उधारे

कोई लाल, उधारी ना देए,

गेहूँ चावल मिले से उधारे,

कोई लाल उधारी ना दे,

मेरे पिछोकड़ खाती का,

कोई ल्याहुए छुरी गढ़वाए,

चीरू ए फाडू या कोख नै,

---

[7] डॉ. हरीश शरण वर्मा, हरियाणवी संस्कार गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या–55

कोई या मेरे मारे से माँन।

उपरोक्त लोकगीत में नारी की पीड़ा को व्यक्त किया गया है। जिसमें एक बांझ औरत ने अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि सोना, चांदी धन दौलत सब कुछ मिल जाते हैं। लेकिन धन दौलत और सोना, चांदी के बदले पुत्र नहीं मिलते। वह इतनी दु:खी है कि अपनी कोख को चिरफाड़ करने के लिए खाती के पास जाने की प्लान बनाती है। ताकि वह अपनी कोख को चीर फाड़ कर अपने लाल का मुख देख सके। संतान के अभाव में उसका संपूर्ण शरीर निस्सार लगता है पुत्र कामना के लिए नारी हर प्रकार की पीड़ा झेलने को तैयार है, लेकिन प्राचीन समय में चिकित्सा पद्धति उपलब्ध न होने के कारण नारी को बांझ नारी का दर्जा दे दिया जाता था और उसे हेय की दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन वर्तमान समय में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध होने के साथ–साथ विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि नारी संतान उत्पत्ति के लिए जितनी उत्तरदायी है, उतना ही पुरुष भी है। जबकि पुरुष भी उतना ही उत्तरदायी है, नारी में ही नहीं अपितु शारीरिक असमर्थता पुरुष में भी हो सकती है फिर नारी को क्यों हेय दृष्टि से देखा जाता है। नारी को संतान उत्पत्ति न करने की इस स्थिति के लिए बांझ कहकर पुकारना एक सत्य बात हैं लेकिन आज की चिकित्सा सुविधा ने नारी पर लगे इस कलंक को मिटा दिया है और अपने चिकित्सीय परीक्षण के द्वारा इलाज करा करके दांपत्य जीवन को संभव बना दिया है, विज्ञान ने इस असंभव कार्य को संभव कर दिया है।

हरियाणा के लोक समाज में जिन स्त्रियों को गर्भधान नहीं हो पाता उनकी व्यथा को भी लोकगीतों में स्वर प्रदान किया गया है। संतानवान होना स्त्री का पहला गुण माना गया है। एक मुहावरा भी है–''औरत का चेहरा नहीं कोख देखी जाता है, स्त्री को समाज में पुत्रवती होने पर ही सम्मान मिलता है। बाझ औरत के भाग्य में यातनाएँ व उपेक्षा ही रहती है। सन्तानोत्पत्ति के लिए स्त्री अपना सब कुछ बलिदान देने के लिए तैयार रहती है। वह अपने पति को

दूसरी शादी के लिए भी कहती हैं ताकि अपने परिवार का वंश चल सके। नारी अपने बांझपन में निराश होकर अपनी बहन से अपने पति की शादी करवा देती थी और अपने जीवन को स्वयं नरक बना लेती थी। लेकिन आज के युग में दूसरी शादी कानूनी रूप से हिन्दू धर्म में अवैध है। एक प्रस्तुत गीत में बांझ स्त्री की करुणामयी चित्रण किया गया है–

पिया एक कहया मेरा मान, दूजा ब्याह करवा ले हो।

गोरी मत ले ब्याह का नाम, दुःखड़ा हर्या हो जयागा।

पिया जाइये हो म्हारे गाम, बहाण मेरी माँ की जाई हो।

पिया दे दयूँ सारा सिंगार, दे दयू तीयल रेशमी हो।

पिया सौप दयूंगी मैं घर बार, जऊँ हाथ तलै की हो।

प्रस्तुत लोकगीत में नारी की त्याग भावना एवं बलिदान का वर्णन दिखाई देता है। वह अपने पति का वंश चलाने के लिए अपनी हर खुशी कुर्बान कर देती है। अपनी सगी बहन की अपने पति के साथ शादी करवा देती है और अपनी सौतन बना लेती है। माता–पिता अपनी बड़ी बेटी का घर बनाने के लिए अपनी छोटी बेटी की खुशियों के साथ खिलवाड़ कर देते हैं। संकोच एवं मर्यादाओं में बंधी हुई लड़की अपने परिवार के सामने कुछ नहीं कह पाती है और अपनी खुशियों के साथ समझौता कर लेती है। लेकिन आधुनिक दौर में शिक्षा के कारण समाज में बदलाव आया है। माता–पिता शिक्षित हो गए हैं एक बेटी की खुशी के लिए दूसरी बेटी का बलिदान नहीं चढ़ाना चाहते क्योंकि इसे चिकित्सकीय सुविधाओं की सलाह देते हैं। आज की शिक्षित लड़की अपनी बहन के पति के साथ ब्याह नहीं करना चाहती। माता–पिता के दायित्व डालने पर अपनी मर्यादा रूपी कथन को दोहरा देती है और अपने जीवन का निर्णय स्वयं लेती है। संतान सुख की प्राप्ति के लिए किसी और के जीवन के साथ

खिलवाड़ करना अनुभित है। क्योंकि एक पति के साथ दो पत्नियाँ कभी भी खुश नहीं रह सकती चाहे वह सगी बहन ही क्यों ना हो? उनमें ईर्ष्या एवं द्वेष की भावना उत्पन्न होकर परिवार के कलह का वातावरण पैदा हो जाता है। बल्कि आज के समय में दो सगी बहनों को एक ही घर में सगी भाईयों के साथ शादी करने पर भी दोनों बहनों एवं दोनों सगे भाईयों में ईर्ष्या की भावना पैदा होने लगती है। जिस कारण वे उनमें भी बोल चाल बंद हो जाती है। जबकि वो तो अलग–अलग भाईयों के साथ जीवन साथी बनी हुई है। बल्कि एक के साथ दो स्त्री कभी भी सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सकती इस लोकगीत में इस प्रकार की स्थिति की भी उजागर किया गया है।

समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कार इस प्रकार है–

(क) जन्म संबंधीत लोकगीतों का वर्णन इस प्रकार है :–

- सोहर गीत
- ओजणा गीत
- प्रसव गीत
- भेली गीत
- छठी गीत
- नेग गीत
- कुँआपूजन गीत
- पालना व लोरी गीत

(ख) मृत्यु संस्कार संबंधित गीत :–

- युवक की मृत्यु पर विलाप गीत
- विवाहिता पुत्री की मृत्यु पर गीत

* बूढ़े व्यक्ति की मृत्यु पर गीत

सोहर गीत :–

जन्म गीतों का प्रारम्भ सोहर गीतों से होता है। 'सोहर' एक प्रकार मंगलगीत जिसे स्त्रियों बच्चा पैदा होने पर गाती है।[8] इस शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार 'सोहर' नामक मंगल गीत केवल प्रसूति गृह से ही संबोधित नहीं बलि इस गीतों के पीछे शुभ या शोभा का भाव भी निहित है।[9]

डॉ. अग्रवाल के अनुसार 'सोहर' का संबंध सौर गृह (प्रसूतिगृह) में ही है। बुन्देलखण्डी साहित्य में जच्चा के मन को बहलाने वाले गीत सोहर कहा जाता है। पुत्र जन्म के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को सोहर नाम से पुकारा जाता है। क्योंकि पुत्र जन्म उत्सव आदिम मानव से लेकर आज तक बराबर हर्ष उल्लास का अवसर रहा है। जन्म संस्कार के सभी संस्कारों में मुख्य माना गया है। जन्म संस्कार का अर्थ है, बच्चे के जन्म के समय निभाई जाने वाली रस्मे। यहाँ जन्म संस्कार का अर्थ पुत्र जन्म में ही नहीं बल्कि पुत्री जन्म में भी हो अक्सर केवल यह देखा जाता है कि पुत्र जन्म पर यह संस्कार गीतों के साथ–साथ छठी, जलवा पूजन, कुँआ पूजन, पीलिया आदि के साथ सम्पन्न किया जाता है। जबकि पुत्री जन्म के सभी संस्कार बिना गीतों के ही पूर्ण किए जाते हैं। समय के साथ समाज में कुछ परिवर्तन अवश्य हुए हैं। आधुनिक समय में कुछ क्षेत्रों में पुत्री के जन्म पर भी छठी का कार्यक्रम, हवन कार्यक्रम, कुँआँ पूजन, जलवा पूजन एवं पीलिया आदि के साथ सम्पन्न किया जाता है। वर्तमान समय में समाज में लड़का और लड़की को एक समान मानने की अवधारणा विकसित हो रही है। इसलिए पुत्र जन्म के लोकगीतों को हम मंगलगीत या सोहर गीत कहते हैं–इनमें दोहद कामना, प्रसव पीड़ा, गांव की दाई को बुलाना,

---

[8] डॉ. नरेश कुमार, हिन्दी व्युत्पत्ति कोश, पृष्ठ संख्या–14
[9] डॉ. नरेश कुमार, हिन्दी व्युत्पत्ति कोश, पृष्ठ संख्या–14

नेग–जोग, छठी,जलवा पूजन, कुँआँ पूजन, पीलिया आदि विषयों का वर्णन मिलता है–

दोहद या ओजणा संबंधी गीत :–

जब स्त्री गर्भधारण करती हैं तो उसके शरीर में दो ह्दगीं का नाम होता है। इस अवस्था में स्त्री का मन विभिन्न प्रकार के व्यंजन खाने को करता है। गर्भिणी की इस इच्छा को 'दोहद' या 'ओजणा' कहते हैं। दोहद का अर्थ है– गर्भावस्था में स्त्री के शरीर में दो ह्दयी का होना। हरियाणवी समाज में यह धारणा है कि यदि गर्भिणी को खाने–पीने संबंधी इच्छाओं की पूर्ति नहीं किया जायेगा तो होने वाला बच्चा शारीरिक व मानसिक विकारों से पीड़ित होगा। आजकल मनोविज्ञान ने उसी यह सिद्ध कर दिया है कि इच्छाओं का दमन करना मानसिक अवस्था का कारण होता है। माँ के मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव होने वाले शिशु के मानसिक व शारीरिक विकास पर पड़ता है। इसी कारण हमारे पूर्वज गर्भवती की खाने–पीने की इच्छाओं को महत्व देते हैं।

गर्भधारण से लेकर संतान उत्पत्ति तक का समय पूरे परिवार के लिए उल्लासमय होता है। गार्भिणी स्त्री स्वयं भी पुत्र की कामना करती है, क्योंकि पुत्री जन्म पर उनका आदर कम हो जायेगा। आमतौर पर परिवार के सदस्य उसकी इच्छापूर्ण करने में लग रहे थे, वह पुत्री जन्म की उसको कोसना शुरू कर देते हैं। उनके ताने सहने पड़ते हैं। शिशु नौ माह तक माता की गर्भ में विकसित होता है। इन नौ महीनी के अन्तर्गत प्रत्येक माह में गर्भिणी को इच्छाओं में परिवर्तन आता हे। दिन का वर्णन इस लोकगीत के माध्यम से किया गया है–

पहला मास लग्या जच्चा नै, सेब संतरे भावण लगे

दूजा मास लग्या जच्चा नै, सभी खटाई भावण लगी–2

तीजा मास लग्या जच्चा नै, आम सुरीली भावण लगे

चौथा मास लग्या ए जच्चा नै, दूध रै दलिया छोड़ दिया

पांचवा मास लग्या जच्चा नै, बासी खाणा छोड़ दिया

छठमा मास लग्या ए जच्चा नै, गूंद पंजीरी भावण लगी

सातमा मास लग्या ए जच्चा नै, झूठ बोलणा छोड़ दिया

सबतै भूण्डी चीज जगत मैं, घाट तोलणा छोड़ दिया

अठमा मास लग्या ए जच्चा नै, परदे भीतर रहण लगी

नौमा मास लग्या ए जच्चा नै, होलर का उण जनम दिया।

इस लोकगीत के माध्यम से बताया गया है कि गर्भधारण का सबसे पहले सास के पता चल जाता है। वह गर्भिणी के ज्यादा नजदीक रहती है। वह सबसे पहले अपनी खुशी को अपनी सास में बांटती है दूसरे वह अपने अनुभव से भी इस खुशी के जान जाती है, फिर धीरे–धीरे परिवार के अन्य सदस्यों जैसे पति, ननद, जेठानी, देवर, देवरानी आदि की पता चल जाता है। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य अपने सामर्थ्यनुसार गर्भिणी की इच्छानुसार खाद्य पदार्थ उपलब्ध करवाते हैं। इस लोकगीत में संयुक्त परिवार के प्रेम को दर्शाया गया है। संयुक्त परिवार में एक–दूसरे की खुशी में खुशी का अनुभव करते हैं। प्राचीन काल में गार्भिणी पहले अपने सास, जेठानी व ननद को बताती थी। वह अपने पति को संकोच व शर्म के कारण कुछ नहीं बता पाती थी। जेठानी व ननद ही हंसी मजाक के माध्यम से पति को इस खुश खबरी के सुना देती थी। आधुनिक युग में सबसे पहले पति को पता चला जाता है। जबकि सास व जेठानी आदि के बाद में पता चलता है। पति को ही सर्वस्व समझा जाता है। सास, ननद, जेठानी परिवार के सदस्य न होकर रिश्तेदार बनकर रह गए हैं।

प्रस्तुत लोकगीत में गर्भिणी के नौ माह के अन्तर्गत खाने वाले व्यंजकों के साथ–साथ उसके आव–भाव का वर्णन किया गया है। गर्भिणी का पहले मास में दूध, दही, दूजे मास में नीबू में, तीजे मास में बेर में, चौथा माह में लड्डूओं में पाँचवें माह में खीर पूरी में, छठे माह में गोला गिरी में, सातवां माह में फलिहार, आठवां माह में धाणी में मन करता है और नौवां माह लगता है तब होलर शब्द सुनाने लगता है। अर्थात् पीड़ा का अनुभव होता है।

(3) दूसरी तरफ एक अन्य लोकगीत के गर्भिणी प्रत्येक सदस्यसे अपना इच्छित व्यंजक लाने के लिए कहती है लेकिन सभी सदस्य टाल–मटोल कर देते है। अन्त में वह अपने पति से इच्छित पदार्थ की माँग करती है, वह उसकी इच्छा को पूरी करता है। जो इस लोकगीत में दर्शाया गया है–

पक ज्या पक ज्या हो प्रेमी जल्दी बेर, जच्चा का मन बेरां म्हं,

कहिये हे उस सुसरे मेरे न, जच्चा न भावै बेर

अपणे नोहरा म्हं लगवा ल्यो बड़बेर, जच्चा का मन बेरां म्हं

कहियो हे उस जेठ मेरे न बहू न भावैं बेर

अपणे ट्यूबल पै लगवा ल्यो बड़बेर, जच्चा का मन बेरां म्हं

कहियो री उस देवर मेरे न, भावज न भावैं बेर

अपणे कॉलेज म्हं लगवा ल्यो बड़बेर, जच्चा का मन बेरा म्हं

कहियो री उस राजा मेरे न, गौरी न भावैं बेर

अपणी सेजां पै लगवा ल्यो बड़बेर, जच्चा का मन बेरां म्हं

प्रस्तुत ये लोकगीत गाकर गर्भिणी के मनोभावों का वर्णन किया गया है। इन लोकगीतों में गर्भिणी का मन बेमौसमी पदार्थों में करता है। उसका वर्णन किया गया है। जब स्त्री को गर्भधारण होता है तब उसका मन खट्टा–मिठा खाने को करता है। प्राचीन समय में संयुक्त परिवार होते थे उस समय सभी सदस्य गर्भिणी के लिए खाद्य पदार्थ नहीं लाते थे तो गर्भिणी सभी से बारी–बारी आगृह करके खाद्य पदार्थ लाने को कहती है।

गर्भिणी स्त्री का बेमौसमी खाद्य पदार्थों को खाने का मन करता है और वह अपने ससुर, जेठ, देवर आदि सभी में इच्छित पदार्थ लाने को कहती हैं–

सुसरे तै अरज करूँ थी,

मन्ने मनखादाख मँगा दो,

जच्चा ने ओजणे भावै

बहू दूध अर दलिया खाले,

इस रुत म मन खदाख नहीं सै

जच्चा ने ओजणे भावे।

इस प्रकार वह जेठ–देवर पति सभी से प्रार्थना करती है, लेकिन सभी बहाना बना देते हैं। बाद में अपनी सास जेठानी से प्रार्थना करती हुई कहती हैं–

सासड़ तै अरज करुँ भी,

मन्नै मनखादाख मंगा दे री,

जच्चा रागी ने ओजणे भावै

बेटी पठान न आवण दे,

पूरी मणभर मैं तुलवा दू हे,

जच्चा राणी न ओजणे भावै,

जेठानी तै अरज करुँ थी,

मन्नै मनखादाख मंगा दे री,

जच्चा राणी न ओजणे भावै

बेबे तेरे जेठा नै परदेश खंदाउँ और मनखदाख मँगाऊ

जच्चा रानी न ओजने भावै

बीरां नै बीर की जाण मै,

मरदां नै के ओजणे भावै

जच्चा राणी ने ओजणे भावै।

इस गीत में सास व जेठानी के सहयोग की भावना प्रतीत होती है। संयुक्त परिवार में सुखद वातावरण प्रतीत होता है। गर्भिणी स्त्री पूरे परिवार के स्नेह की पात्र है। हरियाणवी संस्कृति में सास, जेठानी, देवरानी आदि सभी गर्भिणी का खुश रखते हैं। क्योंकि गर्भिणी की मनोदशा का प्रभाव शिशु पर देखने को मिलता है।

उपरोक्त में दिखाई देता है कि जहाँ पुरुष वर्ग गर्भिणी को मनोवांछित पदार्थ उपलब्ध नहीं करवाता, वही स्त्री वर्ग उसकी मन की इच्छा की पूर्ति करती है। क्योंकि प्रत्येक स्त्री इस अवस्था से गुजरती है इसलिए वह गर्भिणी के मनोभावों को अनुभव करती है। अतः वे कोई न कोई बहाना न बनाकर

गर्भिणी के लिए दुर्लभ पदार्थ भी उपलब्ध करवाती है। दूसरी तरफ जेठानी का गर्भिणी के प्रति स्नेह दिखाई देता है। कुछ वर्षों पहले तक ग्रामीण महिलाएँ घर–गृहस्थी के कार्य में लगी रहती थी उन्हें घर से बाहर शहर इत्यादि में जाने की अनुमति नहीं होती थी। वे घर के बाहर का कार्य पुरुषों से करवाती थी। वे ज्यादातर बाहर के कार्य के लिए पुरुषों पर निर्भर रहती थी या फिर गाँव में आने वाले विक्रेताओं से आवश्यकतानुसार वस्तुएँ खरीदती थी। प्रस्तुत गीत में सास के आने पर मनखादाख लेने की बात करती है। तो जेठानी अपने पति को परदेश भेजकर गर्भिणी के लिए मनखदाख लाने की कहती है। आज के आधुनिक युग में महिलाएँ स्वयं बाहर जाकर अपनी इच्छानुसार वस्तुएँ खरीदती है। शहरों में महिलाएँ और परिवार के लिए सभी वस्तुओं की पूर्ति करती है। आज कल ग्रामिण महिलाएँ भी शहरों की तरफ जाने लगी है और अपनी आवश्यकतानुसार वस्तुएँ खरीद कर लाती है। अब वे पुरुषों पर निर्भर नहीं है। गाँव में आने वाले विक्रेताओं पर निर्भर न रहकर अच्छी व टिकाऊ दुकान से वस्तुओं की खरीदारी करती हैं। यातायात के साधन होने के कारण भी पुरुष–स्त्री शहरों की तरफ आने लगे हैं।

एक अन्य लोकगीत में सास, जेठानी, देवरानी के रिश्तों में अब कड़वाहट का गर्भिणी द्वारा इस प्रकार वर्णन किया गया है–

> कोई माँगी कढाई ना दे, म्हारा दिल हलवे में होया
>
> माँग–माँग कढ़ाई भी ल्याई, तो सासड़ घी चून ना दे,
>
> म्हारा दिल हलवे में
>
> पैर दाब–दाब कै मन्नै घी चून लिया
>
> जिठानी तो खाण्ड ना दे, म्हारा दिल हलवे में ....
>
> बेबे भाण कनै मन्नै खाण्ड ले ली

दुराणी तो करण ना दे, म्हारा दिल हलवे में ....

रोटी–राही पो कै मन्ने दुराणी मनाई

नणद तो खाण ना दे, म्हारा दिल हलवे में।

प्रस्तुत लोकगीत में संयुक्त परिवार में गर्भिणी अपनी मन की इच्छाओं को पूरा करने के लिए किस–किस प्रकार से परिवार के सभी सदस्यों की जी हुजूरी करती है। उसे खाने के लिए हलवे का मन करता है। तो उसकी सास, जेठानी, देवरानी व ननदी के द्वारा उसे मना करने की स्थिति में वह अपने सभी परिवार के सदस्यों को कैसे मनाती है, और वह हलवा बनाने के लिए कढाई की माँग करती है, तो उसे कढाई नहीं मिलती है, तब वह कढ़ाई पड़ोसी के पास से ले आती है तब उसकी सास उसे घी और आटा नहीं देती है। एक गर्भिणी अपनी सासू माँ के पैर दबाकर उसका कार्य करके ही घी और आटा लेती है। इसी प्रकार जेठानी को अपनी सगी बहन जैसा बताकर उससे खाड़ लेती है। देवरानी के हिस्से का कार्य कर उसे खुश करती हैं नणद देवर को साथ खिलाने का प्रलोभन देकर हलवा बनाती है। सभी गर्भिणी मनवांछित व्यंजक हलवा नहीं बना पाती है। प्राचीन काल में घर की बड़ी–बुजुर्ग औरतों के पास में खाद्य पदार्थ मगाते की इजाजत होती थी। उनकी ही अनुमति से घर में कोई खाद्य पदार्थ आ पाता था। घर की सभी औरतें बड़ी–बूढ़ी का सम्मान करती थी। बड़ी–बूढ़ी औरत सभी को बांटकर खाद्य पदार्थ देती थी। सभी सम्मान व खुशी से उनका कहना मानते हैं।

प्राचीनकाल में घर की बुजुर्ग औरत सभी परिवार के सभी सदस्यों का खाना अपने हाथों से डालकर देती थी तभी परिवार के सदस्य खाना खाते थे। बड़ी–बूढ़ी औरत सभी को उनके कार्य के अनुसार खाद्य पदार्थ देती थी। जो भारी भरकम कार्य को करता था उसे अधिक खाने को दिया जाता था। इस समय बूढ़ी औरतें अकसर बहूओं के साथ खाने–पीने की चीजों में भेदभाव करती

थी। अक्सर लड़का व लड़की के खाने में भी अन्तर देखने को मिलता था। लेकिन आजकल के भौतिक युग में न ही वे गृह कार्य है और न ही बड़ों से प्रति आदर भाव है और न ही लड़का–लड़की में ऐसा कोई भेदभाव किया जाता है। अधिकतर संयुक्त परिवार टूट चुके हो सास किसी वस्तु को ताला लगाकर नहीं रखती है। आज की बहू घर में अपना पूर्ण अधिकार चाहती है। सास के दबाव में नहीं रहना चाहती है। सास ने भी समय के साथ आए परिवर्तन में अपने आपको बदल लिया है।

जब विवाहिता गर्भवती पाँच माह की होती है तो विवाहिता में मायके से मिठाई, जलेबी, चावल, सूट तथा रूपये भेजे जाते हैं। मायके वाले मिठाई में ज्यादतर जेलेबी भेजते हैं। इस तरह से जलेबी हरियाणा की खास मिठाई मानी जाती है। जिसे प्राप्त करने के लिए गर्भिणी यथा सम्भव प्रयास करती है। आर्थिक रूप से कमजोर होने पर भी वह सास और जेठानी को गिरवी रखकर जलेबी की चाहना रखती है। जो इस प्रकार है–

जच्चा की चटोरी जीभ जलेबी भावै सैं

उसकी सासू गिरवी रखद्यो

ससुरे का लगादो मोल जलेबी भावै सैं

जच्चा की चटोरी जीभ जलेबी भावै सैं

उसकी जिठानी ने गिरवी रख द्यो

जेठ का लगा दंयू मोल लगानो मौन जलेबी भावै सैं

जच्चा की चटोरी जीभ जलेबी भावै सैं

इसकी देवराणी नै गिरवी रख द्यो,

देवर का लगा द्यूं मोल जलेबी भावै सैं

जच्चा की चटोरी जीभ जलेबी भावै सैं

उसकी ननदी ने गिरवी रख द्यो न

ननदोइया का लगारी मौन जलेबी भावै सैं

जच्चा की चटोरी जीभ जलेबी भावै सैं

प्रस्तुत लोकगीत में गर्भिणी की इच्छा जलेबी खाने को होती है। मीठी वस्तुएँ गर्भिणी को अधिक भाती थी उस समय पैसों का अभाव था तब मीठी वस्तुएँ कैसे लाए यह प्रश्न सभी के मन में होता था। जच्चा का मन जलेबी खाने को करता था तब वह जलेबी के लिए अपने सास, ससुर, जेठ, जेठानी, देवर, देवरानी आदि गिरवी रखना चाहती है। लेकिन आधुनिकता के दौर में खान–पान एवं खाद्य व्यंजकों में बदलाव आ गया है। आजकल गर्भिणी मीठे की बजाए चटपटे व तीखे खाने को मन करता है। पहले लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी इसलिए ये बाजारू खाद्य पदार्थ ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं मिलते थे। आजकल समय के बदलाव के साथ–साथ लोगों की आर्थिक स्थिति भी अच्छी है और खाद्य पदार्थों का गर्भिणी के पास कभी भी अभाव नहीं रहता है।

प्रसव गीत :–

प्रसव का समय जैसे–जैसे नजदिक आता है वैसे–वैसे गर्भिणी के मन में चिन्ता का भाव उत्पन्न होता है। पहले प्रसव के समय प्रसूता का पूर्व अनुभव न होने के कारण वह प्रसव पीड़ा से घबराती है। वह सभी से सहानुभूति की आशा रखती है। साथ ही उसे संतान पैदा होने की खुशी भी है प्रसव के समय जो पीड़ा होती है। वह प्रसव से गुजरने वाली ही समझ सकती है। प्रसव की इस असहय वेदना में उसका पति एवं सास सबसे अधिक सहानुभूति रखते है।

उसको इस कष्ट से मुक्ति दिलाने के लिए भरपूर प्रयास किए जाते हैं। इस लोकगीत में एक प्रभूता की वेदना को दर्शाया गया है–

कौड्डी कौड्डी बगड़ बुहारु

दर्द उठाया सै कमर में,

हो राजीडा इब ना रहूँगी तेरे घर में

दोराणी जिठानी बोल्ली मारै,

जिब क्यूं सौवे थी बगल में

हो राजीड़ा इब ना रहूँगी तेरे घर में

कौड्डी कौड्डी बगड़ बुहारु

दर्द उठ्या सै कमर में,

हो राजीडा इब ना रहूँगी तेरे घर में

सास नणद मेरी धीर बन्धावै,

होती आवै में जगत में,

हो राजीड़ा दूब ना रहूँगी तेरे घर में

कौड्डी कौड्डी बगड़ बुहारु

दर्द उठ्या सै कमर में,

हो राजीडा दूब ना रहूँगी तेरे घर में

छोटा देवर घणा रंगीला,

दाई ने बुलावै इक छन में,

हो राजीड़ा दूब ना रहूँगी तेरे घर में,

कौड्डी कौड्डी बगड़ बुहारु

दर्द उठा में कमर में,

हो राजीडा दूब ना रहूँगी तेरे घर में

छोटा देवर ने बाहण बियाह द्‌यूं,

दाई बुलाई इक छन में,

हो राजीड़ा इब ना रहूँगी तेरे घर में,

कौड्डी कौड्डी बगड़ बुहारु

दर्द उठ्या सै कमर में,

हो राजीडा दूब ना रहूँगी तेरे घर में।

इस लोकगीत में प्रसूता इतनी भयभीत है कि वह अपने पति से वेदना करे स्वर में कहती है कि उसे लगता है कि इस प्रसव वेदना से उसके प्राण निकल जाएगे अर्थात् वह मर जाएगी। देवरानी, जेठानी उसका मजाक करती है कि इस लोकगीत में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव भी दर्शाया गया है। पहले ग्रामीण क्षेत्रों में दाई द्वारा ही प्रसव करवाया जाता था। दाई द्वारा ही सभी कार्य भली–भांति निपटा लिए जाते थे। जब देवरानी, जेठानी सभी रूठ जाती है तो गर्भिणी को भारी समस्या का सामना करना पड़ता था। ऐसे समय में प्रभूता के उसका देवर ही उसके काम आता है वह दाई को बुलाकर लाता है और अपनी भाभी को प्रसव पीड़ा से मुक्ति दिलाता है। इस प्रकार गर्भिणी शिशु को जन्म

देती है। वह अपने देवर की इस सहायता से खुश होकर अपनी छोटी बहन का देवर संग रिश्ता करवाने को कहती है। प्रसूता को जब सबसे ज्यादा समस्या होती है। जिस समय उसकी देवरानी, जेठानी सभी रूठ जाती है। ऐसी स्थिति में गर्भिणी के मनोभावों द्वारा अनुमान लगाया जा सकता है। जो इस लोकगीत में दर्शाया गया है–

उठै कमर में पीड़ सास तन्नै आणा ही पड़ेगा

जै री सास तुम पैदल नहीं आओ भेंजू मोटर–कार

कार के संग बाजा, बाजे संग राजा

राजा के संग आना ही पड़ेगा।

उठै कमर में पीड़ जेठानी तन्नै आना ही पड़ेगा

जै री जेठानी तू पैदल नहीं आओ भेंजू मोटर–कार

कार के संग बाजा, बाजे संग राजा

राजा के संग आना ही पड़ेगा।

उठै कमर में पीड़ देवरानी तन्नै आना ही पड़ेगा

जै री देवरानी तू पैदल नहीं आओ भेंजू मोटर–कार

कार के संग बाजा, बाजे संग राजा

राजा के संग आना ही पड़ेगा।

उठै कमर में पीड़ ननद तन्नै आना ही पड़ेगा

जै री ननद तू पैदल नहीं आओ भेंजू मोटर–कार

कार के संग बाजा, बाजे संग राजा

राजा के संग आना ही पड़ेगा तन्नै आना ही पड़ेगा।

इस लोकगीत में गर्भिणी की सास, जेठानी, देवरानी व ननद को बुलाने के लिए अपने पति को कहती है। जब गर्भिणी की सास, जेठानी, देवरानी व ननद पैदल आने में कष्ट महसूस करती हैं। तो वह अपने पति को मोटर–कार व बाजा ले जाकर सभी को लाने के लिए कहती हैं। इस लोकगीत में प्राचीन युग का आभास होता है। जिसमें मोटर–कार का प्रचलन हो चुका है।

प्राचीन काल में प्रशिक्षित दाईयों के अभाव के कारण कुछ प्रसूताएँ अपने मायके में प्रसव करवाती थी। प्रसूता का अपने पीहर में प्रसव करवाना ससुराल के सदस्यों को अच्छा नहीं लगता है। ऐसी स्थिति में प्रसूताओं पर व्यंग भरा लोकगीत प्रस्तुत किया जाता है, जो इस प्रकार है–

मेरी छोटी सी जच्चा नै जुल्म किया

अंग्रेजी जापा पसन्द किया

सासड़ का बुलाना बंद किया

अम्मा का बुलाना पसन्द किया

मेरी छोटी सी जच्चा नै जुल्म किया

अंग्रेजी जापा पसन्द किया

दाई का बुलाना बन्द किया

नर्सों का बुलाना पसन्द किया

मेरी छोटी सी जच्चा नै जुल्म किया

अंग्रेजी जापा पसन्द किया

नणदी का बुलाना बड़े किया

बहना को बुलाना पसन्द किया

मेरी छोटी सी जच्चा नै जुल्म किया

अंग्रेजी जापा पसन्द किया।

इस लोकगीत में आज के युग में टूटते संयुक्त परिवारों का वर्णन दिखाई देता है। एकल परिवारों के कारण पारिवारिक मूल्यों का पतन हो रहा है। आपसी प्रेम एवं सौहार्द्र लुप्त होते जा रहे है। एकल परिवार की गर्भिणी अपनी सास व ननद को अपने जापे पर न बुलाकर अपनी माँ व बहन को प्राथमिकता देती है। जिस कारण सास व ननद का महत्व कम हो रहा है और दूसरे ओर वह अपनी आर्थिक बचत भी कर लेती है। लेकिन पारिवारिक विघटन हमारे सामाजिक मूल्यों के साथ–साथ पारम्परिक मूल्यों को भी नुकसान पहुँचाते हैं। लेकिन यह गीत एक अच्छा पहलू भी उजागर करता है। पुराने समय में ग्रामीण क्षेत्र में प्रसव के लिए दाई को बुलाया जाता था जो प्रशिक्षित नहीं होती थी। जिस कारण जच्चा व बच्चा दोनों के प्राणों से हाथ धोना पड़ता था। चिकित्सक सुविधाओं के अभाव में शिशु जन्म में पहले ही मर जाते थे। जिस परिवार में शिशु जन्म की खुशिया मनाए जाने का समय होता था उसी समय मातम छा जाता था। प्रत्येक गांव में सामुदायिक चिकित्सालय का एवं प्रशिक्षित नर्सों का अभाव था। लेकिन आधुनिक युग में दाई का स्थान नर्सों ने ले लिया है और प्रत्येक गाँव में चिकित्सालय हो गया है और प्रसव पर दाई के स्थान पर प्रशिक्षित नर्सों को बुलाया जाता है।

शिशु के जन्म लेने की खुशी में प्रसूता सारे कष्ट भूल जाती है। सन्तानोत्पत्ति में नारी सभी कष्टों को भोगती है। प्रसव पीड़ा की असह्य वेदना

सहती है। लेकिन पुत्र होने पर वह अपने पिता के नाम में जाना जाता है। एक गर्भिणी को इस बात पर बहूत क्षोभ होता है। सभी प्रकार के कहर सहने वाली माँ भी अपने पुत्र पर अधिकार चाहती है। उसे पिता के नाम से क्यों पहचाना जाए। अपने पति में ईर्ष्या करती हुए वह इस लोकगीत के माध्य से अपनी व्यथा सास ननद को बताती है और न्याय चाहती है। नारी ही नारी का भावनाओं को समझ सकती है। इसे पूर्ण विश्वास है कि सास व ननद उसका पक्ष लेंगी और उसे न्याय दिलाएगी। जबकि हमारा समाज पुरुष प्रधान है। तब ही हमारे नाम के आगे की पहचान अन्य स्थान पर पिता के नाम से होती है। जब हम किसी गाँव में जाते हैं तो हमारे में पूछा जाता है कि आप किसके बच्चे हैं तो हम सभी ज्यादातर अपने पिता का ही नाम लेते हैं न कि माता का नाम। इस प्रश्न पर गर्भिणी ने अपने मनोभावों का इस लोकगीत द्वारा समाज की इस परम्परा पर प्रश्न चिन्ह् अंकित किया है–

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

आओ सास रानी बैठी पलंग पर, हमारा न्याय चुकाओ

सैया के लाल कैसे कहाये,

दरद हमने सहे ये सैंया के लाल कैसे कहाये

चाहे बहँ मारो चाहे बहँ छोड़ो

लाल तो बेटे के कहाये, तुम्हारे लाल कैसे कहाये

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

आओ जेठानी रानी बैठी पलंग पर हमारा न्याय चुकाओ

सैंया के लाल कैसे कहाये

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

चाहे बेबे मारो चाहे बेबे छोड़ो

लाल तो देवर के कहाये, तुम्हारे लाल कैसे कहाये,

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

आओ देवरानी रानी बैठो पलंग पर हमारा न्याय चुकाओ

सैया के लाल कैसे कहाये

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

चाहे जीजी मारो चाहे जीजी छोड़ो

लाल तो ये जेठ जी के कहाये, तुम्हारे लाल कैसे कहाये

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

आओ नणद रानी बैठी पलक पर हमारा न्याय चुकाओ

सैया के लाल कैसे कहाये

दरद हमने सहे ये सैया के लाल कैसे कहाये

चाहे भाभी मारो चाहे भाभी छोड़ो

लाल तो मेरे भैया के कहाये, तुम्हारे लाल कैसे कहाये

दरद हमने सहे सैया के लाल कैसे कहाये।

उपरोक्त गीत में प्रसूता पुरुष प्रधान समाज के बारे में बताती है और कहती है कि बच्चे पैदा करने की पीड़ा हमने झेली है और बच्चे पर अधिकार

पति का हो जाता है। उनका कहना है कि समाज में बच्चे के अपने पिता के नाम के साथ पुकारा जाता है। बच्चे के साथ पिता का नाम जुड़ा रहता है। जबकि माता का नाम भी नहीं लिया जाता है। इस पीड़ा को व्यक्त करती हुई वह अपनी बात अपने सास, देवरानी, जेठानी व ननद आदि के सामने रखती है और वह न्याय की माँग करती है फिर भी उसे न्याय नहीं मिलता सभी बच्चे पर पति का ही अधिकार बताता देती है। प्रसूता को विश्वास था कि नारी ही नारी का पक्ष लेगी लेकिन ऐसा हुआ नहीं। वे भी इस पुरुष–प्रधान समाज का अंश भाग है।

भेली गीत :–

हरियाणा में शिशु के जन्म पर जच्चा के मायके भेली भेजने की परम्परा है। जब लड़का होता है तो उसकी सूचना जच्चा के मायके भेली के माध्यम से ही जाती थी। प्राचीन काल में संचार के साधनों का अभाव था उस समय संचार के साधनों का कार्य ब्राह्मण व नाई द्वारा सूचनाओं को इधर–उधर भेजने का कार्य किया जाता था। उस समय में दाई व ब्राह्मण ही लड़की के लिए वर की तलाश करते थे। जिस घर में लड़की का रिश्ता किया जाता था उस घर का पानी व भोजन लड़की के पिता द्वारा गृहण कर पाप समझा जाता था। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय लड़की के घर का खाद्य पदार्थ लड़की के माता–पिता द्वारा ससुराल में नहीं खाया जाता था। बल्कि जिस गाँव में लड़की का ससुराल होता था उस गाँव की सीमा का पानी भी नहीं पिया जाता था। संचार के साधनों के अभाव के कारण सूचना समय पर नहीं पहुँच पाती थी। शिशु के जन्म के छः दिन बाद नाई द्वारा जच्चा के मायके गुड़ की भेली लेकर जाता था उस समय मायके के सभी सदस्यों को पता चलता था कि हमारी लड़की के लड़का हुआ है। क्योंकि लड़का होने पर ही गुड़ की भेली भेजी जाती थी भेली लेकर जाने वाले को उपहार स्वरूप कुछ सामर्थ्य अनुसार कुछ दिया जाता था।

बदलते हुए समय के साथ–साथ इस परम्परा का भी रूप बदल गया और संचार के साधन भी हो गए। शिशु के जन्म लेते ही मायके से फोन द्वारा संदेश पहला दिया जाता है और भेली का शिशु के दादा व ताऊ द्वारा भेजी जाती है। और इस अवसर पर जच्चा के मायके में कुछ गीत गाए जाते है जो इस प्रकार है–

भेली भेज दियो पीहर मं, बीर मेरा छुछक लाईयो रे

सास का कुण्डल लाईयो मेरे ससुर का साफा लाईयो रे

तेरी केला जैसी भाण पिलिया सरस का लाईयो रे

तेरा जीजा थानेदार सफरी उस की भी लाईया रे

भेली भेज दियो पीहर य, बीर मेरा छुछक लाइयो रे

जेठ का लाईयो जिठानी का लाईयो रे

तेरी केला जैसा भाण पिलिया सरस का लाईयो रे

तेरा जीजा थानेदार सफारी उस की भी लाईयो रे

देवर का लाईयो देवरानी का लाईयो रे

तेरी केला जैसी भाण पिलिया सरस का लाईयो रे

तेरा जीजा थानेदार सफारी उस की लाईयो रे

मेरी ननद का लाईयो मेरे ननदोई का लाईयो रे

तेरी केला जैसी भाण पिलिया सास का लाईयो रे

तेरा जीजा थानेदार सफारी उस की लाईयो रे।

छठी गीत :—

जब शिशु का जन्म होता है तो लड़का होने पर थाली बजाई जाती है। लड़की होने पर थाली नहीं बजाई जाती। लड़का होने पर घर की बुजुर्ग महिला (दादी) या सास कांसे की थाली बजाती है। जिसमें आस पड़ोस के सभी को पुत्र होने की सूचना मिल जाती है। थाली की आवाज सुनकर गाँव के लोगों को पता चल जाता है कि लड़के का जन्म हुआ है। फिर गाँव व आस—पड़ोस के लोग बधाई देने के लिए आते हैं। उन सभी को गुड़ या पताशे खिलाए जाते हैं। बधाई गीत गाए जाते हैं। आनन्द उत्साह का यह क्रम पाँच दिन तक चलता रहता है। छठे दिन 'छठी' का संस्कार किया जाता है। इस दिन जच्चा व बच्चे को स्नान करवाकर जच्चा के देवर द्वारा दोनों को प्रसूतिका गृह से बाहर निकाला जाता है और देवर अपनी भाभी में नेग की माँग भी करता है। इस अवसर पर देवर को भाभी द्वारा नेग दिया जाता है। और घर को मिट्टी व गाए के गोबर द्वारा लीपा—पोता जाता है। और प्रातः काल मीठा दलिया बनाया जाता है। छठी के दिन 'सात्तिये' लगाने की प्रथा को भी सम्पन्न किया जाता है। प्रसूति गृह के दरवाजे के पास एक पीढ़ा रखा जाता है। जिनके पाए पर नाल बांधी जाती है। सास व ननद सातिये लगाती है और पड़ौस की औरतें के आकर पीछे के पास अनाज डालती है। इसे हरियाणवी में 'कोहरा' कहा जाता है। बदले में उसे पतासे व गुड़ दिया जाता है। इस अनाज को नायन व ब्राह्मणी को दिया जाता है। समय के साथ—साथ आधुनिक दौर में इस परम्परा में कहीं—कहीं मिठाई बांटी जाती है। शहरों में अनाज के स्थान पर उपहार लेकर आती है इस प्रथा को पूर्ण करने के बाद पड़ोस की महिलाएँ व मिलने वाले जच्चा एवं बच्चे से मिल सकते हैं। ये विश्वास है कि बेमाता नवजात बच्चे का भाग्य लिखती है। इस प्रकार की धारणा है। इसलिए जनम के पाँच दिन तक किसी को भी जच्चा व बच्चे के नजदीक नहीं जाने दिया जाता है। और छठी वाली रात को सभी महिलाओं एवं आस—पड़ोस के सदस्यों द्वारा भजन कीर्तन किए जाते हैं। ताकि उस दिन बेमाता आए तथा बच्चे के भाग्य में अच्छे

संस्कार डालकर जाए। उस रात को बच्चे एवं जच्चा की विशेष देखभाल की जाती है। रात्री भर सत्संग किए जाते हैं। सभी औरते मिलकर पहले जच्चा गीत गाती है और फिर बाद में भजन एवं मंगल गीत गाए जाते हैं।

शिशु जन्म के बाद अनेक प्रकार की परम्पराएँ निभाई जाती है। उस समय नेग लेन व देने की झड़ी भी लग जाती है। आजकल धीरे–धीरे यह परम्परा समाप्त होती जा रही है। नेग माँगने वालो की संख्या कम हो रही है भौतिकवादी युग में जेठानी, देवरानी के नेगों को परम्परा भी कम हो गई है। इसका एक मुख्य कारण यह भी है एकल परिवार के चलन के कारण कुछ परम्पराए लुप्त भी हो चुकी है। नेग माँगने वालों में सबसे पहले दाई अपना नेग माँगती है। दाई तो शिशु जन्म से पूर्व ही अपना नेग निश्चित कर लेती है। दाई शिशु जन्म पूर्व अपने नेग की कैसे निर्धारित करती हैं वह इस प्रस्तुत लोकगीत में बताया गया है–

राजा जी जै थारै जन्मैगा पूत, मोहर हम पचास लेवां जी।

राजा जी जै थारै जन्मैगी पुत्री ओढ़ां चुंदड़िया जी।।

प्रस्तुत इस गीत में मध्ययुगीन काल का वर्णन दिखाई देता है क्योंकि 'मोहर' का प्रचलन उसी समय में था। आज कल तो रूपया चलता है। दाई का 'मोहर' लेना आर्थिक सम्पन्नता का बोध करवाता है और साथ ही पुत्र एवं पुत्री के भेद को भी दर्शाता है। दाई को भी इस बात में परिचित है कि पुत्र पैदा होने पर उसे मुंह माँगी वस्तु मिलेगी जबकि पुत्री पैदा होने पर उसे चुंदड़ी में ही काम चलाना पड़ेगा। उस समय पुत्र एवं पुत्री में भेद समझा जाता था लेकिन आज भी कुछ समाज के लोग इस में भेद मानते हैं। जबकि पढ़े–लिखे लोग इस के भेद नहीं मानते हैं वे कहते हैं कि लड़का व लड़की समान है। कुछ राज्यों में लड़का, लड़की के अनुपात में ज्यादा अन्तर देखने को मिलता है। उसका एक प्रमुख कारण यह पुत्र–पुत्री के रहस्य को जानकर गर्भ में ही कन्या

की हत्या कर दी जाती है। सरकार ने जन्म पूर्व चिकित्सीय परीक्षण कर लिंग पता करने पर रोक लगा दी है और पुत्र व पुत्री में इस भेद को दूर करने के लिए पुत्रियों के जन्म पर सरकार द्वारा माता–पिता को आर्थिक अनुदान की सहायता दी जाती है। इतना करने पर भी लोगों की मानसिकता में बदलाव नहीं आया है। गाँव के अशिक्षित भोले लोग हों या फिर शिक्षित लोग पुत्री की कामना कोई नहीं करता।

व्यवहारिक दृष्टि में देखा जाए तो इसका कारण हमारा अपना सामाजिक ढांचा है। आज के युग में लड़की के माता–पिता लड़की की सुरक्षा को लेकर चिंतित है स्कूल हो, घर हो, खेत–खलिहानों एवं अन्य कोई स्थान हो कहीं पर भी लड़कियाँ सुरक्षित नहीं है। शादी के समय दहेज की प्रथा ने लड़कियों को बोझ बना दिया है। लोगों के नैतिक मूल्यों में गिरावट आने के कारण युगों–युगों से पुत्र–पुत्री में यह भेद समझा जा रहा है।

प्रस्तुत लोकगीत में परिवार के सभी सदस्यों के नेगों का वर्णन किया गया है। जो इस प्रकार है–

जच्चा ने बच्चा जाया है, दिन खुशी का आया है

दाई भी आवै है, होलर जणावै है

होलर जणाई नेग माँगे है

मेरे मन के राजा है, दाई का नेंग दियो, नहीं तो पड़ोसी कै गावै है।

सासू भी आवै है, चावल चढ़ावै है, चावल चढ़ाई नेग माँगे है,

मेरे मन के राजा है सासू का नेग दियो है नहीं तो झगड़ा डालै है।

जेठानी भी आवै है, पिलंग बिछावे है, पिंलग बिछाई नेग माँगे है,

मेरे मन का राजा है जेठानी का नेग दियो है नहीं तो झगड़ा डाले है।

देवरानी भी आवै है, परदा लगावै है, परदे लगाई नेग मागे है,

मेरे मन का राजा है, देवरानी का नेग दियो है नहीं तो झगड़ा डाले है।

देवर भी आवै है, बंसी बजावे है, बंसी बजाई नेग माँगे है,

मेरे मन का राजा है देवर का नेग दियो है, नहीं तो झगड़ा डाले है।

नन्दई भी आवै है, सतिए लगावै है, सतिए लगाई नेग माँगे है,

मेरे मन का राजा है नन्दई का नेग दियो है नहीं तो झगड़ा डाले है।

नायण भी आवै है, नगर बुलावे है, अगर बुलाई नेग माँगे है,

मेरे मन का राजा है नामण का नेग दियो है नहीं तो झगड़ा डाले है।

ब्राह्मण भी आवै है नाम धरावे है, नाम धराई नेग माँगे है,

मेरे मन का राजा है, ब्राह्मण का नेग दियो है नहीं तो झगड़ा डाले है।

प्रस्तुत लोकगीत में जच्चा द्वारा अपने पति को सभी का नेग देने का वर्णन किया है। प्रस्तुत गीत में संयुक्त परिवार के प्रेम एवं सौहार्द्र का सुन्दर चित्र उभरता है। जिसमें सबको बिना बताए ही अपने–अपने कर्त्तव्यों का आभास होता है। दाई भी होलर पैदा करवाने का नेग माँगती है। सासू भी चावल चढ़ाई के नेग मांगती है। जेठानी भी प्रसूता के लिए पलंग बिछाती है, देवरानी परदा लगाती है, देवर बच्चे की खुशी में बंसी बजाकर जच्चा का मन बहलाता है। नायन पास–पड़ौस को बुलावा देकर आती है, ब्राह्मण हवन कार्य सम्पन्न कर शिशु का नामकरण रखता है। सभी अपने–अपने कर्तव्यों का बोध करवाकर अपना–अपना नेग माँगते हैं। यह लोकगीत परिवार में बच्चे जन्म पर होने वाली

चहल–पहल एवं व्यवस्तता का सुन्दर चित्रण उकेरता है। आज के युग में बच्चे के जन्म पर पहले जैसा आनन्द एवं उल्लास नामक व ब्राह्मण आदि में दिखाई नहीं देता है। प्राचीन समय नेग लेना व देना दोनों ही प्रसन्नता के सूचक माने जाते थे। लेकिन आजकल की दौड़ भरे भौतिक युग में ये प्रथाए लुप्त होती जा रही है। इस परिवर्तन में हमारे लोकगीत भी अछूते नहीं है। ये बात सत्य है कि आज भी शिशु जन्म पर वही लोकगीत गाए जाते हैं उनमें निभाए जाने वाले नेगों का बखान भी मिलता है।

इस प्रकार से ननद, देवर, दाई, नायन, सासू, जैठानी, देवरानी, ब्राह्मण सभी अपना–अपना नेग माँगते हैं। नेग की चिन्ता प्रसूता के मन पर बोझ है वह चिन्तातुर है कि सबके नेग देने पड़ेंगे और सास, ननद, देवरानी नेग लेते समय झगड़ा करेंगी प्रसूता से सभी अपने नेगों की कामना कितने अधिकार से करते हैं। वह भी खुशी में सबको नेग देकर प्रसन्न रखना चाहती है वर्तमान समय में यह प्रेम भरी परम्परा लुप्त हो गई है। सास, जेठानी, ननद बिना बुलावै के नहीं आती हैं। जबकि प्राचीन समय में वे बिना बुलावै के आकर प्रसूता का पूरा ख्याल रखती थी। जबकि आजकल एकल परिवार हो गए हैं। प्राचीन समय में शिशु का जन्म घर पर ही होता था। उसकी देखभाल के लिए घर की औरते रहती थी जबकि आजकल के समय में प्रसव चिकित्सालय में करवाया जाता है। फिर भी प्रसव उपरान्त घर की देखभाल व प्रसूता की देखभाल के लिए नहीं होता है। प्रसूता बहूत कम समय के लिए विश्राम कर पाती है। सास, जेठानी सभी अपने–अपने कार्यों में व्यस्त रहते है। वे कुछ समय के लिए प्रसूता की मदद करते है। अगर पति–पत्नी दोनों नौकरी करते हैं तो एक बच्चे के बाद दूसरे बच्चे के जन्म के बारे में सोचते भी नहीं है। अगर किसी परिवार में सास, जेठानी, ननद समय पर पहुँच कर प्रसूता की देखभाल करती हैं तो प्रसूता के उसके नेगों की चिन्ता सताने लगती है।

इस गीत में प्रसूता के सास, ननद, नायन के न होने पर वह मन ही मन दुःखी होती है। उसके सगे–संबंधी पास होते तो वह भी खुशी मनाती। उसके पुत्र जन्म की खुशी दोगुनी हो जाती। सास थाली बजाती, ससूर सामर्थ्यनुसार धन बाटते। इस प्रकार सभी अपना–अपना कर्त्तव्य निभाकर नेग माँगते और खुशी से सबको नेग देकर प्रसन्न किया जाता। इस प्रसंग में सीता माता का उदाहरण देकर एक प्रसूता के मन के भावों को व्यक्त किया गया है–

सीया खड़ी पछताय, लवकुश वन मैं हुए

जै आज होते ससुरा हमारे, देते वो थैली लुटाय,

लवकुश वन मैं हुए,

सीया खडी पछताय, लवकुश वन में हुए,

जै आज होती सास हमारी, देती वे थाल बजाय,

लवकुश वन मैं हुए,

सीया खड़ी पछताय, लवकुश वन मैं हुए,

जै आज होती जिठानी हमारी, देती पिलंग बिछाय,

लवकुश वन मैं हुए,

सीया खड़ी पछताय, लवकुश वन मैं हुए,

जै आज होती देवरानी हमारी, देती परदा लगाय,

लवकुश वन मैं हुए,

सीया खड़ी पछताय, लवकुश वन मैं हुए,

जै आज होती ननद मेरी, देती सतिये लगाय,

लवकुश वन मैं हुए,

सीया खड़ी पछताय, लवकुश वन मैं हुए,

जै आज होते देवर मेरे, बंसी देत बजाए,

लवकुश वन मैं हुए,

सीया खड़ी पछताय, लवकुश वन मैं हुए।

प्रस्तुत लोकगीत में प्रसूता अपनी ह्रदय विदारक पीड़ा की अपने माता–पिता के माध्यम से अधूरी कामना का वर्णन किया है। वह कहती है कि पुत्र जन्म के उल्लास पूर्ण समय में अगर अपने सगे संबंधी पास न हो तो सारी खुशी लुप्त हो जाती है। इस गीत के माध्यम से रिश्तों के महत्व को दर्शाया गया हैं माता सीता तो विवश थी उसे वनवास मिला हुआ था। लेकिन आज के युग की प्रसूताओं ने इसे स्वयं ही अपना दुर्भाग्य बना लिया है। सास, जेठानी, देवरानी, ननद होते हुए भी वह अकेला पन ही झेलती है। क्योंकि वे अपनी सास को माँ जैसा सम्मान नहीं देती और न ही नेग देना चाहती। लेकिन प्राचीन काल में भी इस प्रकार के सास–बहँ में मन मुटाव होते थे लेकिन वे सास, दादी बनने की खुशी में सारे मन मुटाव भूल जाती थी। लेकिन आजकल की सास इस नैतिकता को भूल चूकी है। इसलिए आजकल की व्यस्त दिनचर्या में सभी कर्त्तव्य लुप्त होते जा रहे हैं।

सभी प्रसूताएँ अपने शिशु जन्म पर सास, ननद को नेग देना चाहती या प्रसन्नता में नेग देती। ऐसी स्थिति पर इस लोकगीत के माध्यम में वर्णन किया गया है–

छम छम छनन अहरिया चढ़ गई ले गोदी मैं हीरालाल,

दाई आवै लाल जनावै माँगे अपना नेग,

एक रूपईया दाई को देऊंगी, जाये हीरालाल

छम छम छनन अहरिया चढ़ गई ले गोदी मैं हीरालाल,

नणदल आवै सतिये धरावै, माँगे अपना नेग,

नण्णदल को देऊंगी, जाये हीरालाल,

छम छम छनन अहरिया चढ़ गई ले गोदी मैं हीरालाल,

सास आवै खेल खिलावै, माँगे अपना नेग,

लड्डू सास को देऊंगी जाये हीरालाल,

छम छम छनन अहरिया चढ़ गई ले गोदी मैं हीरालाल,

जिठानी आवै मोठ कुँआवै, माँगे अपना नेग,

पचरंगी साड़ी जिठानी ने देऊंगी जाये हीरालाल,

छम छम छनन अहरिया चढ़ गई ले गोदी मैं हीरालाल,

देवर आवै बंसी बजावै, माँगे अपना नेग,

सोने की अंगूठी देवर को देऊंगी, जाये हीरालाल,

छम छम छनन अहरिया चढ़ गई ले गोदी मैं हीरालाल।

प्रस्तुत लोकगीत से प्रसूता के शिशु जन्म की खुशी को दर्शाया गया हैं वह सभी को मनवांछित हुए वस्तुए देवर प्रसन्न करना चाहती है। पुत्र जन्म पर सास की तीलय व लड्डू देकर प्रसन्न करना चाहती है। इसी प्रकार से दाई

के रूपये, ननद का हाथ कंगना जेठानी को पंचरंगी साड़ी तथा देवर को सोने की अंगूठी देकर खुश करना चाहती है। प्रस्तुत लोकगीत में पुत्र जन्म पर नेग स्वरूप गहने, कपड़े इत्यादि देने की परम्परा को दर्शाया गया है। गहने हर महिला के लिए अपनी धरोहर होते हैं। जिन्हें वह पुत्र जन्म पर सबको नेग के रूप में देती है। प्राचीन काल में प्रसूताओं के पास नगदी रूपये नहीं होते थे वे अपने पास गहने रखती थी। सभी प्रकार के संस्कारों के अवसर पर वे अपने गहनों का इस्तेमाल करती थी। उस समय में प्रसूता के पास नगद पैसे नहीं होते थे। संयुक्त परिवार में घर में पैसों का अधिकार सास के पास होता था अपने सामान में मिले कपड़े व गहने ही उसकी अपनी धरोहर होती थी। जिन्हें प्रसूताएँ खुशी–खुशी सबको नेग स्वरूप देती थी। लेकिन आजकल के दौर में एकल परिवार हो गए हैं इस दौर में सभी पैसे प्रसूता के पास ही होते हैं अपने गहने न देकर सामर्थ्यानुसार कपड़े व पैसे देकर नेग सम्पन्न कर दिए जाते हैं। जेठानी को दी गई पंचरंगी साड़ी आधुनिकता की परिचायक है प्राचीन काल में हरियाणवी समाज में दामन कुर्ता एवं सूट सलवार पहनना ही प्रमुख या साड़ी का चलन शहरों में होता था।

नेग लोकगीतों में ननद को दिए जाने वाले नेगो की बहूलता रही है। आज के युग में देवरानी जेठानी के नेगों का चलन बंद हो चुका है। ननद को सतिए धराई की रसम करवाकर नेग देने की परम्परा आज भी समाज में बनी हुई है। ननद के नेग पर नोंक–झोक का वर्णन इस लोकगीत में देखा जा सकता है। ननद प्रसूता से रूपयों एवं आभूषणों की माँग करती है। तो प्रसूता अपने परिवार की आमदनी का वर्णन करते हुए अपनी ननद को अपने परिवार के सदस्यों के आर्थिक हिसाब को देखते हुए अपने नेग लेने के लिए कहती है। और वह अपने ससुर व जेठ की कमाई का भी वर्णन इस लोकगीत में दर्शाया गया है। नेग परम्परा पर ननद को दिए जाने वाले नेग का वर्णन इस लोकगीत में किया गया है जो इस प्रकार है–

रूपया माँगे ननदी लाल की बधाई

एक रूपया मेरे ससुर की कमाई

अठ्ठनी लेलो ननदी लाल बधाई

रूपया माँगे ननदी लाल की बधाई

एक अठ्ठनी मेरे जेठ की कमाई

चवन्नी लेलो ननदी लाल की बधाई

रूपया माँगे ननदी लाल की बधाई

एक चवन्नी मेरे देवर की कमाई

दुवन्नी लेलो ननदी लाल की बधाई

रूपया माँगे ननदी लाल की बधाई

एक दुवन्नी मेरे पिया की कमाई

ठेंगा लेलो ननदी लाल की बधाई

रूपया माँगे ननदी लाल की बधाई

भाभी द्वारा रूपये नहीं देने पर ननद चालाकी का परिचय देती है वह उसके हाथों में पहने हुए कंगने उसकी माँग करने लगती है। तो भाभी भी बाद में रूपये देने की बात कहती है। जो इस गीत में इस प्रकार है–

कंगन माँगे ननदी लाल बधाई

या कंगना म्हारे ससुर कमाई,

रूपया लेना ननदी लल्ला की बधाई,

कंगना माँगे ननदी लाल की बधाई।

प्रस्तुत लोकगीत में ननद व प्रसूता की नोक–झोक का वर्णन किया गया है। ननद अपने भतीजे होने की बधाई के रूप में ग्यारह रूपयों की माँग करती है तो प्रसूता बताती है कि अपने पूरे परिवार की कमाई से भी ननद की बधाई पूरी नहीं होती है। वह बार–बार अपने पूरे परिवार की आमदनी का वर्णन करती दिखाई देती है। वह कहती है कि मेरे ससुर की कमाई एक रूपया है, मेरे जेठ की कमाई अठ्ठनी है, मेरे देवर की कमाई चवन्नी है मेरे पिया की कमाई दुवन्नी है। हमारे परिवार की कमाई दो रूपये से कम ही है। ग्यारह रूपये तो मेरे परिवार की कमाई भी नहीं है मैं कहॉ से आपको नेग दूँ। इस प्रकार प्रसूता अंत में ननद द्वारा कहा नहीं मानने पर उसे ठेंगा लेने के लिए कहती है। अर्थात् कुछ नहीं देना।

इस प्रकार उपरोक्त लोकगीत में प्रसूता व ननदी की नोंक–झोक का वर्णन दिखाया गया है। इस में स्पष्ट है कि भाभी किसी भी कीमत पर अपना कोई आभूषण नहीं देना चाहती। वह अपने ससुर की कमाई बताकर कंगना देने से मना कर देती है और अंत में रूपया देने की बात कहने लगती है। इस से स्पष्ट होता है कि औरतों को आभूषण बहूत प्रिय होते हैं वे अपने आभूषणों में प्रेम करती है।

चली आओ नन्दल मैं लांगू थारे पैया,

भीतर बैठी दाई माई बाहर बैठा नाई,

देहली ऊपर नन्दल बैठी ये तो री माँ की जाई,

पाँच रूपये दाई–माई कहे दिवा दे नाई,

हार झुमके नन्दल माँगे ये तेरी माँ की जाई

पाँच रूपये दाई को दे दो कड़े दिवा दे नाई,

हार झुमके नन्दल को दे दो या तो री माँ की जाई,

नन्दल रूठ गई फिर बोली यो हल्का भाई,

भाभी बोली भीतर आजा, मेरी सास की जाई,

भाभी आज भतीजा जाया, द्‌यो सुन्दर हार मंगाई

क्यूँ नन्दल तुम अहको मटकी क्या तू खरचन आई,

ना भाभी मैं रूठूँ मटकूँ, ना मैं करू बड़ाई,

मेरे भैया के बेटा जाया, मंगल देखन आई।[10]

इस प्रकार हमारे लोकगीतों में नेगों का वर्णन बखूबी मिलता है। हमारे समाज में पुत्र जन्म के अवसर पर पूर्वज, बुजुर्ग दादा या पिता द्वारा प्रसूता के मायके में भेली भेजने की परम्परा है। भेली को लेकर नवजात शिशु का दादा शिशु के ननिहाल में जाता है। इसे हरियाणा में भेली भेजना कहा जाता है। भेली गुड़ की होती है। इस का वजन पहले चार सेर होता था। आजकल किलोग्राम चलता है, सेर पुराने समय में चलते थे। आजकल इसका वर्णन चार किलोग्राम होता है। भेली भेजना एक शुभ शकुन है। खुशी के अवसर पर सूचना खाली हाथ नहीं भेजी जाती है। मिष्ठान के रूप में हरियाणा के ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादातर गुड़ का ही प्रयोग किया जाता है। गुड़ के साथ–साथ अन्य प्रकार की मिठाईयाँ भी भेजी जाती थी। प्राचीनकाल में भेली ले जाने का कार्य नाई द्वारा सम्पन्न किया जाता था परन्तु आप के युग में भेली भेजने का कार्य दादा या

[10] साधुराम शारदा, हरियाणवी के लोकगीत, पृष्ठ संख्या–66

ताऊ द्वारा किया जाता है। शिशु की नानी भेली देखकर फूली नहीं समाती। खूब मिठाई बांटी जाती है। पहले संचार के साधनों का अभाव था भेली पहुँचने पर ही नाना–नानी को खुश खबरी मिलती थी। लेकिन आज के युग में संचार के साधन हो गए हैं। तो शिशु के जन्म लेते ही सभी रिश्तेदारों का सूचना उसी समय मिल जाती है और भेली पहुँचने का समय भी पहले की टेलीफोन पर बता दिया जाता है। उस समय में सूचना पहले नहीं पहुँचती थी। नानी अपने दोहते के लिए चांदी सोने की चांद पातड़ी आदि गहने बनवाती है। जो उसे कुँआ पूजन के अवसर पर दोहते को नानी की तरफ से पहनाया जाता है।

नेग गीत :–

हरियाणवी लोक संस्कृति में विशेष अवसरों पर नेग देने की रस्म निभाई जाती है। विवाह एवं शिशु के जन्म पर गृह प्रवेश के अवसर पर या जन्म किसी शुभ कार्यों के अवसर पर घर की बुआ एवं बेटी को नेग देने की परम्परा है। यह नेग रूपयों या किसी विशेष वस्तु या आभूषण के रूप में दिया जाता है। नेग देने की परम्परा प्राचीन काल में ही चली आ रही है। नेगचार की शुरूआत लड़के–लड़की का विवाह तय होने के साथ ही हो जाती है। सबसे पहले सगाई की रस्म निभाई जाती है। जिसमें लड़के वाले लड़की का सामान व लड़की वाले लड़के का तिलक सामान मिठाई, अंगूठी, चेन, फलों की टोकरी, मेवा, नमकीन, टीके की थाली तथा लड़के की माँ के वस्त्र आदि नेगचार के रूप में देते हैं। बदले में लड़के की माँ भी अपनी होने वाली बहँ को साड़ियाँ, पर्स, श्रृंगार का सामान, मेवा–मिठाई, मेहदी सोने के गहने आदि शगुन के रूप में देती हैं। घर में जब शादी के रस्में शुरू होती है तभी से विभिन्न रस्मों में नेग परम्परा भी साथ–साथ शुरू हो जाती है। गीत गाते समय ब्राह्मणी द्वारा नेग लिया जाता है। जब चाक पूजने की रस्म निभाई जाती है तब कुम्हारिन द्वारा नेग लिया जाता है। शादी में जब वर, वधू के नाना पक्ष भात लेकर आते हैं तो नाईन के द्वारा पगधोई की रस्म अदा की जाती है। बदले में नाईन को रूपयों के रूप

में नेग देने की परम्परा हरियाणवी लोक संस्कृति में देखने को मिलती है। लड़के की बारात निकलने से पहले घुड़ चढ़ी (निकासी) निकाली जाती है। घुड़चढ़ी से पहले जब दूल्हा तैयार होता है तो उसकी भाभी द्वारा दूल्हे को काजल लगाई जाती है। ताकि उसका देवर सुंदर दिखे तथा बुरी नजर का प्रभाव न पड़े। इस प्रकार भाभी द्वारा काजल डालने का भी नेग लिया जाता है। हरियाणवी लोक संस्कृति में अनेकों नेग लोकगीत प्रचलित हैं। शिशु के जन्म के समय पर हमारे घर पर अनेक प्रकार की परम्पराएँ मनाई जाती है। जिसमें नेग परम्परा भी मुख्य रूप से अपनाई गई है। नेग में जच्चा से दाई, नायन, ननद, सास आदि कुछ माँग करती हैं। जिन्हें जच्चा द्वारा सभी को उपहार स्वरूप जो दिया जाता है उसे नेग कहते हैं। ऐसा ही एक लोकगीत जिसमें सभी के द्वारा प्रसूता में नेग की माँग की जाती है जो इस प्रकार है–

कंगना माँगे ननदी होलर की बधाई,

कंगन मेरे पीहर से लाई,

रूपया ले लो ननदी, होलर की बधाई,

कंगना माँगे ननदी होलर की बधाई

रूपया ना लूं भावज होलर की बधाई।

\+ + +

कंगना म्हारो सोना को धड़वायो

सासू म्हारो घूघट में दुबकायों,

ससूरा जी म्हारा दे धमकी निकलवायो,

कंगना म्हारो सोना को घड़वायो,

जेठानी म्हारी ने घूंघट में दुबकायो,

जेठ म्हारा नै देधमकी निकलवायो।

\+ \+ \+

जच्चा ओढ़ पीलियों निकली कुँआं धौंक्या नीर–नीर कै

दिल खोल खोल कै

राजा तड़के सुबह दाई आवैगी, होलर जणाई नेग माँगेगी

नेग दियो हंस–हंस कै दिल खोल–खोल कै

जच्चा ओढ़ पीलियो निकली कुँआ धौंक्या नीर–नीर कै

दिल खोल खोल कै

पिया तड़के सुबह सासड़ आवैगी थाल बजाई नेग माँगेगी

नेग दियो हंस–हंस कै दिल खोल खोल कै

जच्चा ओढ़ पीलियो निकली कुँआं धौंक्या नीर–नीर कै

पिया तड़के सुबह जेठानी आवेगी पर्दा लगाई नेग माँगेगी

नेग दियो हंस–हंस कै दिल खोल–खोल कै

जच्चा ओढ़ पीलियो निकली कुँआं धौंक्या नीर–नीर कै

दिल खोल खोल कै।

कुँआ पूजन या जलवा पूजन :–

कुँआ पूजन शिशु होने के दसबें दिन के बाद कभी भी किया जा सकता है। श्री देवी शंकर प्रभाकर ने इसे कलश पूजन की रस्म कहा है।[11] लड़का पैदा होने पर अपने कुल देवी–देवताओं को पूजने की प्रथा को ही कुँआ पूजन कहते हैं। इसके साथ ही पूरे गांव व रिश्तेदारों के लिए भोज रखा जाता है। इस दिन जच्चा को प्रसूतीगृह में बाहर आंगन में निकाला जाता है। कुँआ पूजन की पहली रात को बाजरा भिगोया जाता है। जो अगले दिन ग्रामीण महिलाओं को बांटा जाता है। जच्चा को प्रसव गृह से बाहर निकालकर उसके सिर पर कच्चे सूत की बनी हुई आँटी जिसे कुछ क्षेत्रों में इसे ईण्डी बोला जाता है और उस पर पानी का लोटा रखा जाता है। घर के आंगन में गाय के खूंटे की धोक लगाई जाती है। थोड़ी देर के बाद जच्चा अपनी चारपाई पर आकर बैठ जाती है। इस समय जच्चा की चारपाई व शिशु को अकेला नहीं छोड़ा जाता और देवर या जेठ को चारपाई पर बैठाया जाता है। फिर जच्चा कुँआ पूजन के लिए घर से बाहर जो अपने ग्राम का मुख्य कुँआ होता है। जिस कुए से सभी ग्रामीण पानी पीते हैं उस कुए पर जच्चा को ग्रामीण औरतों द्वारा गीत गाते हुए, बाजे के साथ ले जाया जाता है। कुए पर ब्राह्मणी द्वारा पूजन का कार्य सम्पन्न करवाया जाता है। पूजन का कार्य सम्पन्न होने के बाद उसके परिवार की ओर से जच्चा के ऊपर रूपयों से वार फेर करती है। ताकि उसके किसी की नजर न लगे। वारफेर वाले रूपये ब्राह्मणी को दे दिए जाते हैं। जच्चा के पल्ले में भीगा हुआ बाजरा रहता है उसे वह नई नवेली बहूओं को देती है, 'सभी नई नवेली बहूएँ उसको लेकर खाती है ताकि उन्हें भी पुत्ररत्न की प्राप्ति हो और वह भी इस परम्परा से गुजरे' यह तथ्य पर आधारित है। पुत्ररत्न औरतों के लिए भाग्य का प्रतीक माना जाता है। पुत्रवती औरत का समाज में आदर होता है। पुत्र विहीन औरत को हेय दृष्टि में देखा जाता है। लेकिन आधुनिक युग में यह परम्परा अपना रूप बदल रही है।

---

[11] श्री देवी शंकर प्रभाकर, हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या–83

कुँआ पूजने से पहले नायन दीवार पर 'गोबर के सतिए' उतार कर छाज में रख लेती है और उनके स्थान पर हल्दी के सतिए बना देती है। जच्चा को उसके पीहर में आई हुई पोशाक एवं पीलिया पहनाया जाता है। उसके सिर पर एक ईण्डी रखकर उस पर पानी का लोटा रखकर जच्चा को कुंए पर ले जाया जाता है। जहाँ पर पण्डिताईन द्वारा उसका पूजन करवाकर लाया जाता है। आस–पड़ोस की औरतों द्वारा गीत गाए जाते हैं और सभी औरतों को बाजरे का बना हुआ 'भीजणा' दिया जाता है। जिसमें गुड़ मिला हुआ होता है। वह बाजरे व गुड़ का मिश्रण होता है। जो खाने में अच्छा लगता है। 'भीजणा' बाजरे को कुंए पूजन में एक दिन पहले पानी में भिगोया जाता है और कुआँ पूजन के दिन उसमें गुड़ को कुछ मात्रा मिला दिया जाता है। जिसे हरियाणवी भाषा में 'भीजणा' कहते हैं। यह ग्रामीण क्षेत्रों में एक परम्परा के रूप में अपनाया जाता है। कुँआ पूजन के बाद रात्रि को सभी सदस्यों के लिए खाने की व्यवस्था की जाती है। जिसे हरियाणवी भाषा में 'दिशोठन' कहते हैं। जिसमें अपनी–अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ भी बनाया जा सकता है। जैसे– लड्डू या अन्य मिठाई। यह एक प्रकार का प्रीति भोज होता है। जिसमें अपने सभी सगे–संबंधियों को आमंत्रित किया जाता है। तथा खाना खिलाया जाता है। पुत्र जन्म का समय इतना उल्लास पूर्ण होता है मेहनत से एकत्रित किया हुआ धन पुत्र जन्म पर खुशी से खर्च कर दिया जाता है। वर्तमान समय में यह परम्परा बढ़ती जा रही है। एक दिन के प्रीतिभोज का आयोजन कर सभी सगे–संबंधियों बहन–बुआ आदि को बुलाकर सभी रस्म सम्पन्न की जाती है। इसी दिन मायके से पीलिया मंगवाया जाता है। प्राचीन समय में पीलिया भाई लेकर आता था। आजकल पीलिया लेकर भाई के साथ भाभी भतीजे बहन सभी इस खुशी में शामिल होने के लिए आते हैं। धनी सम्पन्न लोगों ने इस परम्परा को आडम्बरों में कर दिया है। नई–नई रीतिया एवं परम्पराएँ बनाकर अत्यधिक धन खर्च किया जाता है। निर्धन व्यक्ति के लिए बेटी का पीलिना देना भी बोझ समझा जाता है।

प्राचीन समय में पीलिया शकुन के रूप में दिया जाता था। जिसमें कुछ पोशाके, घी, बूरा, चावल, दाल, गूंद गोले आदि भेजे जाते थे। छूछंक की परम्परा भी पीलिया लेकर जाने वाले सदस्यों की छूछकिया नाम के शब्द से पुकारा जाता था। बच्चा जब लगभग एक–डेढ़ महीने का हो जाता था। तब माँ अपने शिशु को मायके दिखाने के लिए जाती थी लेकिन आजकल पीलिया ही छूछक का पर्याय बन गया है। छूछक में दी जाने वाली वस्तुएँ ही पीलिया के साथ–साथ दे दी जाती है। जिसमें सारे परिवार के कपड़े एवं अन्य सामान शामिल होता है। इस लोकगीत में प्रसूता अपने मायके पीलिया भेजने का संदेश भिजवाती है–

उड़ जा उड़ जा रे काले से काग मेरी माँ ते जाके कह दिय .....

तेरी बेटी के होया नन्दलाल, तेरी बेटी माँगै पीलिया .....

उड़ जा उड़जा रे काले से काग मेरी माँ न जा कै कह दिए ...

घर मैं बहूँ–बेटा का सै राज मैं कित तैं भेजूँ पीलिया ...

उड़ जा उड़ जा काले से काग मेरी भाभी ने जा के कह दिए ...

तेरी ननदी के होया नन्दलाल तेरी ननदी माँगै पीलिया

उड़ जा उड़ जा काले से काग मेरी ननदी न जाकै कह दिए

वा तो रोज जणैगी नन्दलाल यहाँ कित तैं भेजां पीलिया

उड़ जा उड़ जा रे काले से काग मेरी बहना नै जाकै कह दिए

तेरी बहना कै हुआ नन्दलाल तेरी बहना माँगै पीलिया

उड़ जा उड़ जा रे काले काग मेरी बहना नै जाके कह दिए

वा तो रोज जणेगी नन्दलाल हम रोज भेजां पीलिया ....।

इस लोकगीत में एक जच्चा का पीलिया मय पर नहीं पहुँचता है तो वह प्रार्थना कर काले कौए के माध्यम में संदेशा भेजती है और कहती है कौए मेरी माँ को यह कहना कि तेरी लाडली के पुत्र हुआ है। उसका पीलिया भेजने की तैयाार करो। पहले संसाधनों एवं संचार के साधनो अभाव था इसलिए संसाधनों के अभाव के कारण पीलिया लेकर जाने वाले अक्सर लेट हो जाते थे कुँआ पूजन के समय पर पीलिया की जरूरत होती है। उसके समय पर नहीं पहुँचने के कारण प्रसूता काग के माध्यम से अपना संदेश भेजती है। आज के युग में संचार एवं संसाधनो का विकास हो गया है। एक पल में संदेश एक स्थान में दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है।

कभी प्रगट एक जच्चा अपना छूछक भरवाने के लिए अपने पीहर में भेजती है–

भेली भेज दियो पीहर म, बीर मेरा छुछक ल्याइयो रे

सासू का ल्याइओ, मेरी सुसरे का ल्याइओ

तेरी केला जैसी भाण पीलिया सरस का ल्याइयो

तेरा जीजा थानेदार, सफारी उस की भी ल्याइयो

प्रस्तुत लोकगीत में जच्चा अपने पीहर में भेली भेजकर अपना छुछक मंगवाती है। वह सबके लिए कुछ न कुछ मंगवाती है। वह अपने सास–ससुर, जेठ–जेठानी, देवर–देवरानी, ननद व ननदोई के लिए मनोवांछित वस्तुए मगवाती है। उसके पति के लिए सफारी सूट की माँग करती है। अपनी चुन्दड़ी भी सुन्दर रंगवाने की बात करती है। प्रसूता को इस बात की चिन्ता भी है कि वहीं पीलियो में सबकी मनोवांछित वस्तुएँ न मिले और उसे तिरस्कार झेलना पड़े। इसलिए वह पहले ही अपने भाई को सूचित कर देती है कि वह भाई पर

इतना अधिकार समझते हैं कि बिना झिझक के सब वस्तुओं की माँग करती है। विवाह के बाद भी लड़की का मायके पर पूर्ण अधिकार रहता है। वह अपने पीहर की प्रशंसा सुनना चाहती है। इसलिए सभी के लिए अच्छे से अच्छी वस्तुए मंगवाती है। इस लोकगीत में प्रसूता का परिवार के सभी सदस्यों के प्रति स्नेह भी दिखाई देता है।

कुँआ पूजने में पहले नायन दीवार पर 'गोबर के सतिए' उतार कर छाज में रख लेती है और उसके स्थान पर 'हल्दी के सतिए' बना दिये जाते है। जच्चा को कुँआ पूजन के लिए मायके से आने वाली वस्तु एवं पीलिया पहनाया जाता है। पीलिया गीत भी गाया जाता है। पीलिया गीत की अपनी एक विशेषता होती है। जच्चा द्वारा पीलिया को अपने पास सुरक्षित रखा जाता है, उसे समय–समय पर त्यौहार व्रत आदि शुभ कार्य करते समय ओढ़ा जाता है। उसे ननद आदि को भी नहीं दिया जाता और ना ही समझदार औरत किसी का पीलिया लेती है। क्योंकि वह उसके शिशु जन्म का प्रतीक है। जिसको बेटा होता है वह ही पीलिया ओड़ती है। इस पीलिया पर अनेक गीत प्रचलित हैं जो इस प्रकार है–

दिल्ली शहर तै सायबा पीला मंगाया जी–2

सारा ए शहर सराह्या गाडा मारूँ जी

पीला रंगा दयो जी तो ओढ़ म्हारी जच्चा पाणी नै चाली जी

सास नणद मुख मोड़या, गाडा मांरू जी, पीला रंगा द्यो जी

के पीला तेरी माय रंगाया जी

के ननसाले तै आया गाडा मारूँ जी, पीला रंगा द्यो जी

ना पीला मेरी माँ ए पहुँचाया जी,

ना ननसाल तै आया गाड़ा मारूँ जी

सासू का जाया म्हारी नणदी का बीरा जी–2

उनै म्हारी साध पिराई गाडा मारूँ जी, पीला रंगा द्यो जी।

पालना गीत या लोरी गीत :–

लोकगीत मानव जीवन का स्वच्छ और साफ दर्पण है जिसमें समाज में व्याप्त जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। लोकगीतों में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है। लोकगीतों में जन जीवन के सभी पक्षों के दर्शन होते है। लोकगीतों में लोरी के गीत भी संस्कार गीतो के अन्तर्गत आते है। लोरी गीत नवजात शिशु को सुलाने के समय गाए जाते हैं। जब शिशु सो नहीं पाता है तब उसे सुनाने के लिए लोरी भरे गीत गाए जाते हैं। इसी प्रकार बच्चे को खेलने के लिए पालना गीत भी गाया जाता है।

शिशु जब रूदन करता है तो उसे झुलाने के लिए पालने पर लेटाकर झुलाया जाता है इसी प्रकार बच्चे के खेल के साथ–साथ उसे लोरिया देकर भी उसका मन बहलाया जाता है।

लोरी लोकगीत उतना ही प्राचीन है जितनी मानव की सृष्टि। माँ–मौसी बच्चों को थपकियाँ देकर सुलाती है। पालने पर भी बच्चे को सुलाकर हिलाया जाता है। तब बच्चा सोता है। जब पूरा दिन बीत जाता है। तब बच्चा विस्तर पर जाता है। तो उसकी माँ की मीठी आवाज बेबी पर जादुई असर करती है। इसलिए नींद में मदद् करने के लिए या शिशु के लिए सोने का माहौल बनाने के लिए माँ देशी लोरी गाकर या बोलकर शिशु को सुला देती है। हरियाणा में अनेक प्रकार की लोरियाँ गाई जाती है। लेकिन एक लोरी शिशु को गहरी नींद में ले जाएगी जो इस प्रकार है–

लल्ला लल्ला लोरी दूध भरी कटोरी

दूध में पताश लल्ला करे तमाशा

छोटी छोटी प्यारी सुंदर परियों जैसी है

किसी की नजर ना लगे मेरी मुन्नी ऐसी है

शहद से भी मीठी दूध से भी गोरी

चुपके चुपके चोरी चोरी, लल्ला लल्ला लोरी

कारी नैना के साये में चमके चांद सी निंदिया

मुन्नी की छोटे–छोटे नैनन में खेले निंदिया

सपनों का पालना आशाओ की डोरी

चुपके चुपके चोरी चोरी, लल्ला लल्ला लोरी

उपरोक्त लोरी में शिशु के सुलाने के बारे में बताया गया है। जब शिशु सो नहीं पाता है तब माँ शिशु के थपकी लगा–लगा कर और मीठी सुरीली आवाज में लोरी देती है। लोरियों के बोल सुन सुन कर बच्चा धीरे–धीरे सो जाता है। लोरी सुन सुन के शिशु शांत भाव में आ जाता है और सो जाता है।

चन्दा मामा दूर के पुए पकाए बूर के

आप खाए थाली में, मुन्ने को दें प्याली में,

प्याली गई टूट, मुन्ना गया रुठ,

लाएगे नई प्यालियाँ बजा बजा के तालियाँ

मुन्ने को मनाएंगे हम दूध मलाई खाएंगे,

चन्दा मामा दूर के पुए पकाए बूर के

आप खाए थाली में, मुन्ने को दे प्याली में,

उड़न खटोले बैठ के मुन्ना चंदा के घर जाएगा

तारो के संग आँख मिचौली, खेल के दिल बह लाएगा

खेल कूद से जब मुन्ने का दिल भर जाएगा

ठुमक ठुमक मेरा मुन्ना वापस घर को आएगा

चन्दा मामा दूर के पुए पकाए बूर के

आप खाए थाली में, मुन्ने को दे प्याली में।

उपरोक्त प्रस्तुत लोरियों से शिशु को सुना–सुना कर उसे सुलाया जाता है। लोरिया सुन–सुन कर शिशु शांत हो जाता है और सो जाता है। लोरियों को लय के साथ गाया जाता है। इस लोरी में चंदा मामा की दूरी होने का वर्णन करके उसे समझाया गया है।

हरियाणी लोक परम्परा में शिशु के जन्म पर अपने खाती द्वारा शिशु का पालना देने की परम्परा है। जिस पालने को बना दिया जाता है वह पालना लेकर खातिन शिशु के घर पर जाती है और उसे बधाई स्वरूप पालना देती है। जिस का वर्णन इस लोकगीत में मिलता है–

काम की तेरा पालना,

काम को बग डोर,

अगड़–चलन को पालनो,

रेश्म की बगडोर

सिर धर खातन चाल पड़ी लावन के बाजार

लोग महाजन न्यू कह या खातन कित जाए

सरवण घर बधावणी सचिन के हुए नन्दलाल या खातन उत जाय

उपरोक्त लोकगीत में पालना भेजने की परम्परा का वर्णन किया गया है। पालना जब शिशु को दिया जाता है। तब खातिन को उपहार में कोई न कोई वस्तु दी जाती है।

मृत्यु संस्कार संबंधी लोकगीत :–

हिन्दुओं की परम्पराओं में 16 संस्कारों का वर्णन मिलता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार लगभग सभी जातियों में किसी न किसी रूप में मनाया जाता हैं मृत्यु मानव जीवन का अन्तिम संस्कारों में है। मृत्यु संस्कार के बाद कोई भी संस्कार शेष नहीं रहता है। जो मृत्यु के समय जिस संस्कार के द्वारा अत्येष्टि की जाती है। उसे मृत्यु संस्कार के अन्तर्गत ही रखा जाता है।

हिन्दू धर्म में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सोलह संस्कार बनाए गए हैं। इनमें आखिरी 16 संस्कारों में मृत्यु है। मृत्यु के बाद होने वाले संस्कारों जिसमें व्यक्ति की अंतिम विदाई, दाह संस्कार और आत्मा को सद्गति दिलाने वाले रीति–रिवाज शामिल है। गरूड़ पुराण में भी बताया गया है कि जिस व्यक्ति का अन्तिम संस्कार नहीं होता उस व्यक्ति की आत्मा प्रेत बनकर भटकती है। हिन्दू धर्म में मृत्यु को अंत नहीं माना गया बल्कि आत्मा इस शरीर को छोड़कर पुनः किसी नये रूप में शरीर में प्रवेश करती है। यूरोप में किसी व्यक्ति की मृत्यु पर

कुछ पेशेवर स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं, जो मृत व्यक्ति के गुणों का वर्णन करती हुई विलाप करती है। यह विलाप एक विशेष प्रकार की लय में बद्ध होता है।[12]

मृत्यु जीवन की पूरक है जिसने जन्म लिया है उसका अंत निश्चित होना है। समय से पूर्व मृत्यु जीवन में दुःख दिया करती है। जबकि पूर्ण आयु की मृत्यु जीवन की सम्पूर्णता को दर्शाती है। विभिन्न संस्कारों में मृत्यु संस्कार महत्वपूर्ण संस्कार होता है। मृत्यु शोक का समय होता है। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत नगण्य है। लम्बी आयु को बाद मरने वाले व्यक्तियों का प्रीतिभोज (काज जो हरियाणवी भाषा में बोला जाता है) किया जाता है। उसकी अत्येष्टि के बारह दिन बाद मिठाई बनाई जाती है और अपने सगे–संबंधियों को मिठाई आदि खिलाई जाती है। हरियाणा भाषा में इसे 'बारहथाली' व 'काज' के नाम से भी पुकारा जाता है। बाहरवें दिन पर प्रतिक्रिया के साथ–साथ भजन कीर्तन भी किया जाता है।

हमारे यहाँ प्रत्येक संस्कार के अवसर पर गीतों के द्वारा मन की भावनाओं की प्रकट करने की प्रथा रही है। मृत्यु भी इससे छूट नहीं पायी निःसंदेह इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत शोक और विषाद में युक्त होते हैं।[13] मृत्यु के गीत विलाप भरे होते हैं। मृत स्त्री या पुरुष के गुणों को लेकर दिवंगत आत्मा इन गीतों में आभा से उत्पन्न दुखो का वर्णन मिलता है। इस अवसर पर उपस्थित सभी स्त्री–पुरुष मृत व्यक्ति की याद में अपने हृदय की कोमल भावनाओं में रो उठते हैं। संसार में अपने प्रियजन के वियोग से बढ़कर कोई व्यथा (पीड़ा) नहीं होती। लेकिन क्रूर काल की चक्की में सभी पिसते है। मृत्यु कभी तो उसके छोटे–छोटे शिशु से पिता छीन लेती है तो कभी पिता वियोग पुत्र को तो कभी पुत्र वियोग पिता को कभी पत्नी को पति के बिना जलती चिता में जलने को बाध्य कर देती है।

---

[12] डॉ. विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या–230
[13] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–75

मृत्यु प्रत्येक जीव के लिए अवश्यम्भावी है। शांति का दूसरा मरण चिर है। बड़े या वृद्ध की मृत्यु पर गीतों एवं भजनों का आयोजन किया जाता है और संगे–संबंधियों को खाना भी खिलाया जाता है। युवक व बालक की मृत्यु को 'काली मौत' कहा गया है। जवान व्यक्ति की मृत्यु सभी के लिए पीड़ादायी है।

युवक की मृत्यु पर विलाप गीत :–

मृत्यु वेदना विदारक है मौत पर रोना ही रोना होता है। जिस व्यक्ति पर परिवार आर्थिक रूप से निर्भर रहता है। जब उसकी मृत्यु हो जाती है तो परिवार की स्थिति दिल दहलाने वाली होती है। उस समय में लोकगीत की तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता बल्कि चारो तरफ करुण क्रन्दन का विलाप ही सुनाई देता है।

जब तै घर तै लिकड़या गबरु सेर जुआन

हो गया सौण कसौण गबरु सेर जुआन

हाय हाय गबरु सेर जुआन

बाएँ बोल्ली कोतरी दहणै बोल्या काग

गमरु सेर जुआन हाय हाय गबरु सेर जुआन

मारी क्यूँ ना कोतरी तैने मारया क्यूँ ना काग

हाय हाय गबरु सेर जुआन

कैनै तेरी बांधी पालकी कै नै तेरा कर्‌या सिंगार

हाय हाय गबरु सेर जुआन

भाइया बांधी पालकी भाइया न कर्‌या सिंगार

हाय हाय गबरु सेर जुआन

सुसरा का प्यारा हाय सासड़ का प्यारा हाय हाय

हाय हाय गमरु सेर जुआन।

प्रस्तुत विलाप गीत में जवान युवक की मौत का दृश्य है। हरियाणवी समाज में रूढ़िवादिता झलकती है। जो इस गीत में दिखाई देता है। दाई तरफ कौआ और बाई तरफ कोतरी का बोलना अपशकुन माना गया है। उन्हें पश्चाताप है कि घर से निकलते ही काग–कोतरी के बोलने से अपशकुन हो गया था। उस काग–कोतरी को मार डालते तो शायद मृत्यु टल जाती जबकि मृत्यु का निश्चित समय होता है। जिसे टालना मानव के वश में नहीं है। हर किसी को इस सच्चाई का सामना करना पड़ता है। स्त्री के पति की मृत्यु पर होने पर उसके सभी सुख समाप्त हो जाते हैं। वह दूसरों पर निर्भर हो जाती है। अपने पति के बिना जीवन बिताना दुष्कर कार्य नजर आता है। उसके जीवन के सभी श्रृंगार समाप्त हो जाते हैं। अपनी व्यथा में विलाप करती हुई कहती हैं–

अरे मेरे करम के सुनारा मर गए रूठ गए मनिहार

बहँ री मेरी मत रौवै मुझे लगा री लाल का दाग

माँ री धौले–धौले पहर कपड़े रांड भेष बनावै

अरी चले सुनारा के मेरी नथ उतरावये

अरी बिच्छू ने मारा डंक लहर क्यूँ न आवे

अपना मन समझणा लागी दो नैनो में भर आया पानी

कुछ एक दिनां की ना है मुझे सारे जनम का रोना

अरे याणी थी तब रही बाप के मुझे सोचा कुछ न था

अब कैये कटै दिन रैन री मुझ को एक दिग की था।

उपरोक्त प्रस्तुत गीत शोक के ताने–बाने से परिपूर्ण है। इसमें विधवा स्त्री की किस्मत का वर्णन किया गया है। विधवा औरत का जीवन कटी पतंग के समान है। क्योंकि उसकी डोर को चलाने वाला ही भगवान की प्यारा हो गया है। उसे समाज में रहते हुए सुन्दर वस्त्र, आभूषण एवं चूड़ियाँ पहनाना, वर्जित हो जाता है। विधवा स्त्री स्वयं ही इन सभी को त्याग देती है। प्राचीन समय में विधवा स्त्री सफेद वस्त्र पहनती थी लेकिन आजकल आमतौर में ऐसा नहीं है। प्राचीन समय में विधवा स्त्री को किसी भी शुभ कार्य में नहीं बुलाया जाता था और न ही विधवा स्त्री स्वयं किसी के शुभ कार्यक्रम में शामिल होती थी। वह अपने आपको अपशकुनी मानती थी। जबकि आधुनिक युग में ऐसा नहीं है। आज के परिवर्तित समय में नारी की स्थिति बदल गई है। पति के वियोग में तो उसे जलना ही जलना है। विधवा स्त्रियाँ आजकल पुनः विवाह भी करने लगी है। वे अपने पुराने जीवन साथी को भूलकर अपने नये जीवन साथी के साथ जीवन व्यतीत करती है। आजकल की स्त्रियाँ शिक्षित है वे पौराणिक मान्यताओं को मानने वाली नहीं है वे सभी कार्यों में आजकल बढ़ चढ़कर भाग लेती है।

विधवा स्त्री को अपने घरेलू जीवन में अनेक कष्टो का सामना करना पड़ता है। वह दूसरों पर निर्भर हो जाती है। उसके जीवन का सुख–दुःख बांटने वाला कोई नहीं होता है। उसे अपने सभी घर से बाहर के कार्यों को धीरे–धीरे करना पड़ता हैं क्योंकि उसे बाहर के कार्यों की जानकारी कम होती है। वह धीरे–धीरे सभी कार्यों को करना सीख जाती है। अंत में वह सोचती है कि कर्म ही मुख्य धर्म हैं अच्छे–बुरे कार्यों के द्वारा ही सभी की पहचान होती है।

विवाहिता पुत्री की मृत्यु पर गीत :–

मृत्यु रुपी काल ने समय के साथ सभी को जाना है। इस काल ने 'कच्ची कली को भी ममल डाला है। जौ इस प्रकार है–

हाय हाय हे बागा की कोकिल आंख निंबू की फांक

बच्ची सोने की चिड़िया हाय हाय बच्ची सोने की चिड़िया

मूंगफली सी अंगूली, नाक सुए की चोंच होह पोपल।

यह गीत माँ के शोकपूर्ण हृदय का करुण गीत है। उसकी लाडली बेटी की परछाई उमकी आंखों के सामने घूम रही है। जिस बेटी को जन्म से पालन–पोषण कर बड़ा किया अपनी आंखों के मामने उसी बेटी की अर्थी देखना माँ के लिए दुःखद घटना होती है। उसकी बेटी कितनी सुन्दर थी उसका गुणगान इस विलाप भरे गीत में किया गया है। गहनों का डिब्बा भरा हुआ है। अब उन्हें कौन पहन कर दिखाएगा? जब माँ अपनी बेटी का मृत शरीर देखती है तो माँ के हृदय का विलाप इन गीतों का सृजन तो सम्भव नहीं होता विलाप की अवस्था में अर्ध मूर्छित सीमा के हृदय से जो की स्वर शब्दों के रूप में फूटता है वही लोकगीत में नया जुड़ जाता है। जिसे सुनकर कोई भी रोए दिना नहीं रह सकता है।

वृद्ध व्यक्ति की मृत्यु पर गीत :–

जो व्यक्ति लम्बी उमर होने के बाद अपने बेटों, पोतों, पड़पोतों व सड़पोतों के सामने प्राण त्यागता है। उसकी अर्थी को दुल्हे के रथ की तरह सजाया जाता है। घर के छोटे बच्चों को इस अर्थी के लिये निकाला जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस प्रकार करने के बच्चों की आयु बढ़ती है। अर्थी पर रूपये पैसे बरसाए जाते हैं। शव पर जो कम्बल, शाल, दुशाले ओढ़ाए जाते

हैं, उन सभी को शमशान भूमि पर अलग से रख दिया जाता हैं। उन्हें उस क्षेत्र में रहने वाली भंगन द्वारा ले लिया जाता है। वृद्ध की तेरहवीं की जाती है। उस समय उसके परिवार के सभी सदस्य एक प्रीतिभोज का कार्यक्रम रखते हैं। सभी सगे–संबंधी यारे प्यारे व पड़ोसी इस कार्यक्रम में भाग लेते हैं। इस अवसर पर नाचने–गाने का भी कार्यक्रम होता है। वृद्ध की मृत्यु बाद घर पर बारह दिन एक भजनों एवं नाचने–गाने का कार्यक्रम होता रहता है। कुछ परिवारों में गायत्री पाठ भी करवाया जाता है। इस समय जाए जाने वाले भजन इस प्रकार है–

उड़ा जा रे हंसा पांख फैलाए

जा उतरो हर की पोड़िया हरे राम

कह दै रे हंसा घर म्हारे की बात

बेटे तो म्हारे के करै। लाम्बे–लाम्बे खरड़ बिछाए

होके तो वे भरते फिरै हरे राम।

उड़ जा ....

बहँ तो म्हारी के करै हरे राम

लाम्बे–लाम्बे घुंघट तान, भजन करती वे फिरै हरे राम।

उड़ जा ....

बेटी तो म्हारी के करै हरे राम

आगै–आगै समधी का पूत

खेड़े जगाती वै आयी हरे राम

उड़ जा .....।

\+ \+ \+

बाजे गाजे बजाकै म्हारा बुढ़ा मर्‌या ये रंग ला कै

जब बुढ्‌ढे के भाई आए, बैठे हुक्का भरकै

बाजे गाजे बजाकर म्हारा बुढ़ा मर्‌या ये रंग लाकै

जब बुढ़े के बेटे आए, बैठै खरड़ बिछाकै

बाजे गाजे बजाकर म्हारा बुढ़ढ़ा मर्‌या ये रंग लाकर

जब बुढ़े के पोते आए ओ लेज्यां अर्थी सजा कै

बाजे गाजे बजाकै म्हारा बुढ़ढ़ा मर्‌या ये रंग लाकै

जब बुढ़े की बहूअड़ आई रोई थूक लगाकै

बाजे गाजे बजाकै म्हारा बुढ़ढ़ा मर्‌या ये रंग लाकै

जब बुढ़े की बेटी आई रोई रूदन मचा कै

बाजे गाजे बजाकै म्हारा बुढ़ढ़ा मर्‌या में रंग लाकै

जब बूढ़े की पोती आई टीकी बिंदी लाकै

बाजे गाजे बजाकै म्हारा बुढ़ढ़ा मर्‌या ये रंग लाकै

जब बुढ़े की बूढ़ी आई बैठी सब ने समझाकै

बाजे गाजे बजाकै म्हारा बूढ़ढ़ा मर्‌या ये रंग लाकै।

प्रस्तुत प्रथम लोकगीत वृद्ध की मृत्यु पर गाया जाता है। इस गीत में हंस को आत्मा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मरने के बाद उसकी आत्मा अपने परिवार के विषय में जानना चाहता है कि सभी क्या–क्या कर रहे हैं। उसके बेटे आने वालों की मेहमान नवाजी कर रहे हैं। व बहूए घुंघट निकालकर भजन गा रही है। दूसरे लोकगीत में बुढ़े के परिवार के सदस्यों का वर्णन अपने–अपने अंदाज में दर्शाया गया है। बूढ़े को भाई आते हैं वे अपना हुक्का लगाकर बैठ जाते हैं बूढ़े के बेटे आते हैं बैठने वाले के लिए दरी बिछाते हैं बूढ़े के पोते आते हैं वे अपने दादा जी की अर्थी को रथ की तरह सजाते हैं और बूढ़े की बहूए रोने की औपचारिकता निभाती है। जबकि बेटी की बेटी रूदन मार कर रोती है। तो बूढ़े की पोती अपने श्रृंगार में आती है। इसी प्रकार बूढ़े की बूढ़ी सभी को समझाती है।

मृत्यु संस्कार जीवन का अन्तिम संस्कार है। जो हर युग में मुख्य रूप से दुःखदायी हो किसी के बिछुड़ने का गम किसी भी समय कम नहीं हो सकता। माँ की ममता का कन्दन किसी भी युग कम नहीं हो सकता। मृत्यु एक सार्वजनिक सत्य है।

अध्याय-३

विवाह संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

विवाह संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

हिन्दू धर्म के अनुसार विवाह एक ऐसा संस्कार है, जिसे वैदिक काल से ही नव जीवन का आवश्यक संस्कार माना गया है। वेदों के अनुसार किये गए विवाह संस्कार ही शास्त्र सम्मत होते हैं। वेदों के अलावा गृहसूत्रों में संस्कारों का उल्लेख मिलता है। विवाह को हिन्दुओं के प्रमुख सोलह संस्कारों में से एक जाना जाता है। यह तेरहवॉ संस्कार है जो बहुत ही पवित्र कर्म माना गया है। इस संस्कार के बाद व्यक्ति गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है। विवाह दो शब्दों का मेल है– वि+वाह = विवाह। इसका अर्थ है विशेष रूप से वहन करना। विवाह संस्कार स्त्री और पुरुष का ऐसा अटूट बंधन है। जो धर्म या नियम से बंधकर जीवन पर्यन्त बल्कि जन्म जन्मान्तर तक का एक विशेष रिश्ता बन जाता है। हमारी भारतीय संस्कृति के संदर्भ में यदि देखा जाये तो विवाह कोई शारीरिक या सामाजिक अनुबंध मात्र नहीं है। विवाह की जरूरत के वासना तृप्ति के लिए नहीं है, बल्कि इसकी आवश्यकता तो मनुष्य धर्म के उचित रूप से पालन के लिए है। भारतीय संस्कृति में दाम्पत्य संबंध एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधना के रूप में देखा जाता है। विवाह गृहस्थ जीवन का महल का प्रवेश द्वार है। विवाह आत्मा का आत्मा से, मन का मन से और शरीर का शरीर से चिर मिलन है। सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक आदि प्रत्येक पुष्टि से सम्पन्न किया जाने वाला सामाजिक अनुष्ठान है।[1]

इसका उद्देश्य स्त्री–पुरुष की अनियमित यौन प्रवृत्तियों को नियमित करके दोनों की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना है। विवाह का दूसरा उद्देश्य संतान उत्पत्ति द्वारा पितृऋण से उऋण होकर अपनी वंश बेल को बढ़ाना है तथा विवाह का तीसरा उद्देश्य स्त्री एवं पुरुष के पवित्र

---

[1] डॉ. सोहन दास चारण, राजस्थानी लोक साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, पृष्ठ 42

साहचर्य द्वारा पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन धारा को स्वस्थ एवं सुखद बनाना है।[2]

एक अच्छा नागरिक होने के नाते हमें अपनी जिम्मदारियों को निभाने के लिए विवाह संस्कार करना बहुत आवश्यक है। हमारे देश में विवाह को एक महोत्सव कहा गया है। विवाह में जितने भी रस्म, रीति–रिवाज, अनुष्ठान व कार्य किये जाते हैं। उनसे कहीं अधिक उन विभिन्न अनुष्ठानों पर गीत गाये जाते हैं। विवाह से कई दिन पहले धूमधाम शुरू हो जाती है। पहले विवाह उत्सव पर सभी सगे संबंधी दूर–दूर से आकर शामिल होते हैं, परन्तु आज स्वरूप थोड़ा बदल गया है। समय की कमी, यातायात की सुविधा एवं जीवन में व्यस्तता के चलते संबंधीगण विवाह वाले दिन ही विवाह में शरीक होते हैं। कुछ निजी रिश्तेदार जैसे बहन, बुआ आदि ही शादी से कुछ दिन पहले आती हैं।

स्त्रियॉ अपने मन की खुशी को विवाह के विभिन्न अवसरों पर गीतों के माध्यम से व्यक्त करती हैं। विवाह गीतों को विवाह की विभिन्न रस्मों के अनुसार वर्गीकृत किया जाता है। सम्पूर्ण विवाह समारोह के गीतों को हम निम्न भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं–

देवी–देवताओं के गीत :–

किसी भी मांगलिक कार्य के प्रारम्भ पर गीतों की शुरूआत देवी–देवताओं के नाम स्मरण से आरम्भ करना शुभ समझा जाता है। पुराने समय से ही देवी–देवताओं के गीतों का अधिक महत्व समझा जाता है। आज भी गांव में, शहर में, पण्डिताईन के द्वारा देवी–देवताओं के गीतों का गायन किया जाता है। माता, देवी, हनुमान, सती, पित्तर आदि सबके लिए अलग–अलग लोकगीत गाये जाते हैं। विवाह के शुभ अवसर पर सभी मांगलिक कार्यों में शुरूआत पितरों एवं अन्य देवी–देवताओं के लोकगीतों के गायन के साथ उन्हें स्मरण किया जाता

---

[2] लोक संस्कृति के क्षितिज, डॉ. पूर्णचंद शर्मा, पृष्ठ 67

है। आधुनिक समय में भी सभी देवी–देवताओं के अलग–अलग लोकगीत गाये जाते हैं। पर कुछ स्थानों पर अलग–अलग लोकगीत न गाकर एक ही गीत में सभी देवी देवताओं को स्मरण करने का कार्य पूरा किया जाता है। किसी भी मांगलिक कार्य में लोकगीतों का शुभारंभ प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से किया जाता है–

> ''पांच पतासे पन्ना का बिड़ला ले गणपति पै जाइयो जी
>
> जिस डाली म्हारे गणपति बैठे, वा डाली झुक जाइयो जी
>
> झुक भी जाइयो नय भी जाइयो, वा डाली फल ल्याइयो जी
>
> पांच पतासे पन्ना का बिड़ला ले गणपति पै जाइयो जी
>
> जिस डाली म्हारे गणपति बैठे, वा डाली झुक जाइयो जी
>
> झुक भी जाइयो नय भी जाइयो, वा डाली फल ल्याइयो जी।''[3]

विवाह की प्रत्येक रस्म से पहले इस गीत को आज भी उतनी ही श्रद्धा के साथ गाया जाता है। आधुनिकता की इस दौड़ में इस प्रकार के लोकगीत आज भी अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। हर गांव का अपना ग्राम देवता अलग–अलग होता है। जैसे गीत में देवता का नाम गांव की अपनी–अपनी मान्यताओं के अनुसार परिवर्तन किया जाता है। शुरूआत में देवी–देवताओं के पांच गीत अवश्य ही गाये जाते हैं। इन पांच गीतों में गणेश जी की स्तुति के साथ पितरों के, हनुमान जी के ग्राम देवता आदि के गीत गायन किया जाता है।

> ''हरि ओइम् हरि ओइम्, होवै सत्संग मैं
>
> मेरे मन मैं ऐसा आवै, गणपत जी का मंदर हो

[3] कमला देवी, गाँव–लावन जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

गणपत जी का मंदर हो, रिद्धि सिद्धि संग मैं हो

जय गणेशा जय गणेशा होवै सत्संग मैं

हरि ओइम् हरि ओइम्, होवै सत्संग मैं

मेरे मन मैं ऐसी आवै विष्णु जी का मंदर हो

विष्णु जी का मंदर हो, और लक्ष्मी मैया संग मैं हो

नारायण–नारायण होवै सत्संग मैं

हरि ओइम् हरि ओइम्, होवै सत्संग मैं

मेरे मन मैं ऐसी आवै, भोले जी का मंदर हो

भोले जी का मंदर हो, और गौरा मैया संग मैं हो

बम–बम भोला, बम–बम भोला होवै सत्संग मैं।''[4]

वर खोजने संबंधी हरियाणवी लोकगीत :–

जब लड़की विवाह योग्य हो जाती है तो उनके घर के, परिवार के बड़े–बुजुर्गों को चिन्ता होने लगती है। प्राचीन समय में वर खोजने का कार्य गांव के नाई, ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न किया जाता था। घर के सदस्य उन्हीं पर पूर्णतया विश्वास करके उन्हें यह कार्य सौंपते थे। वर खोजने का महत्वपूर्ण कार्य नाई, ब्राह्मण के करवाना अपनी बेटी के भविष्य का फैसला अन्य व्यक्ति से करवाना एक तरफ में उनकी सादगी और सहजता को दर्शाता है। क्योंकि नाई और ब्राह्मण जगह–जगह पर घूमते थे और वे अपना नैतिक धर्म भी समझते थे।

[4] अनीता देवी, गाँव–मालड़ा, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

समय के साथ नाई, ब्राह्मणों ने अपने कर्तव्य को अपना रोजगार बना लिया उनके लोभ–लालच के कारण अनेक कन्याओं का जीवन रुसवा होने लगा।

प्राचीन समय में लड़कियों को एक मर्यादा में रहना सिखाया जाता था उन्हें बाहर निकलने, अधिक सजने–सवरने पर पाबंदिया होती थी एक ऐसा गीता है जो इस प्रकार है–

''काले तो सैण्डल पैहर के पानी न चाली ए

रास्ते में मिलग्या 'गाबरू' बूड़े कै ब्याह दी ए।''[5]

उपरोक्त गीत में बताया गया है कि जब लड़की सज–सँवर कर पानी लेने जाती है तो उसकी मुलाकात एक किशोर में होने पर परिवार लोकनिंदा के डर से उसकी शादी जल्दबाजी में एक वृद्ध व्यक्ति के साथ कर देते हैं और लड़की उस रिश्ते को चुपचाप निभाती चली जाती है। उसके प्रत्येक कार्य में उसका हाथ बँटाती है। पुराने समय में वैवाहिक बंधनों को तोड़णा सामाजिक प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाना होता था। लड़की अपने माता–पिता को लोकनिंदा में बचाने हेतु वृद्ध व्यक्ति से विवाह के बंधन में बंध जाती थी। वह उसके साथ प्रत्येक परिस्थिति में अपने रिश्ते को सामंजस्यपूर्ण तरीके से निभाती चली जाती थी। मध्यवर्गीय परिवार की लड़की अपने परिजनों को बारी–बारी में अपने योग्य वर खोजने की विनती करती है। जो इस लोकगीत में दर्शाया गया है–

''दादा देश जाइए प्रदेश जाइए

म्हारी जोड़ी का वर ढूँढ़िए

हंस खेल हे दादा की ए पोती

ढूँढ़या स फूल गुलाब का

---

[5] सुलोचना देवी, चरखी दादरी, हरियाणा

ताऊ देश जान्दा प्रदेश जाइए

म्हारी जोड़ी का वर ढूँढ़िए

हंस खेल हे ताऊ की हे बेटी

ढूँढ़या स फूल गुलाब का।''[6]

प्रस्तुत गीत में लड़की अपने दादा, ताऊ, चाचा से योग्य वर खोजने की फरमाइस करती है। योग्य वर में उसके रूप, गुण, संस्कार ही मुख्य महत्व रखते थे। समय के बदलाव के साथ–साथ लड़की अपने दादा को बागड़ में न ब्याह की इस लोकगीत के द्वारा कहती है–

''दादा देश जाइए परदेश जाइए

बागड़ में लाडो मत ब्याहिए

उड़ै आवैगी आंधी, टूटैगी झाड़ी

लाडो तो रलज्या बालू रेत मैं।''[7]

प्रस्तुत गीत में कन्या बागड़ में विवाह करने में इंकार करती है। क्योंकि बांगड़ एक सूखा ग्रस्त क्षेत्र है। इसलिए वहाँ सुख–सुविधाएँ, जल आदि का पूर्णतया अभाव रहता है। वहाँ अभावग्रस्त एवं कष्टपूर्ण जीवन में परिचित होने के कारण वह अपने भावी जीवन का प्रतीक है।

भारत में विवाह की न्यूनतम आयु पहली बार शारदा अधिनियम 1929 द्वारा निर्धारित की गई थी बाद में इसका नाम परिवर्तित कर बाल विवाह प्रतिबंध अधिनियम 1929 कर दिया गया।

---

[6] सुदेश देवी, गांव लावन, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

[7] आशा देवी, गांव लावन, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

वर्ष 1978 में लड़कियों के लिए विवाह की न्यूनतम आयु 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष करने के लिए कानून में संशोधन किया गया था। यह स्थिति बाल विवाह निषेध अधिनियम 2006 नामक नये कानून में भी बनी हुई है। जिसमें 1929 को प्रतिस्थापित किया।

पहले भारत में महिलाओं के विवाह की न्यूनतम आयु सिमा 18 वर्ष तय है। किन्तु आज भी अधिकांश क्षेत्रों में इस नियम का पालन नहीं हो रहा। लड़कियों को पराया धन समझा जाता है। इसलिए उन्हें जल्दी विदा करना आवश्यक समझा जाता है। लड़की की कानूनन आयु निर्धारित करने के पीछे प्रमुख कारण है, देश में बाल विवाह को रोकना लेकिन वर्तमान समय में केन्द्रीय मंत्री मण्डल ने लड़कियों की विवाह की आयु 18 से बढ़ाकर 21 वर्ष कर दी है। लड़कियों की शिक्षा की उपयोगिता को उजागर करता हुआ एक आधुनिक लोकगीत जो इस प्रकार है–

" 'याणा'[8] सा भरतार मेरा पतंग उठावै सै

पतंग जले में न्यू लिख राखी ब्याह करवाव सै

ठहर नणदी ठहर कै जाइये सिलवादू तन्नै सूट रेशमी

पहर के जाइये दोराणी जेठानी मेरे ताने मारे के 'दायजा'[9] लाई

इक्कीम सूट इक्यावन बासण योए दायजा लाई

भीतर से मेरी सासड़ लिकड़ी कै राम लूट के लाई

अपणा–अपणा ठा लाई मेरे बेटे का के लाई

चूप र री सासड़ चूप र री सासड़ नया स्कूटर लाई

---

[8] याणा–नासमझ

[9] दायना–दहेज

लीली पैन्ट गुलावी 'बुरशट'[10] काले चश्में लाई

लीली स्यायी छोटी तख्ती गैल मास्टर लाई

तन्नै जो सासड़ पढ़ाया कौन्या आप पठावण आई।''[11]

उपरोक्त गीत से ज्ञात होता है कि पहले विवाह की कानूनन उम्र को नजर अंदाज कर बचपन में ही कर दिया जाता था जिससे अनेक कुप्रथाओं को बढ़ावा मिला जिसमें दहेज प्रथा, अमेल विवाह आदि।

प्रस्तुत गीत में हरियाणा क्षेत्र के इन्हीं कुप्रथाओं का उल्लेख मिलता है। जैसे दहेज के लिए सास, जेठानी, देवरानियों द्वारा ताने मारना। जिसका जबाव बहु व्यंग्यात्मक लहजे में देती है। तथा अनमेल विवाह तथा बाल विवाह का उल्लेख करती है।

सगाई गीत :—

शादी की प्रथम रस्म सगाई होती है जो वर, वधू ढूढ़ने के पश्चात दोनों पक्षों की सहमति के बाद 'रूपया नारियल' देकर सगाई की रस्म निभाई जाती है। पूराने समय सगाई पक्की करने की रस्म भी नाई, ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न कर दिया जाता था। लेकिन वर्तमान में यह प्रथा स्वजनों द्वारा निभाई जाती है। इस अवसर पर महिलाओं द्वारा गाये गीतों से वातावरण गुंजायमान हो जाता है। सर्वप्रथम विन्दायक मनाया जाता है। उसके पश्चात् सगाई परम्परागत गीत गाती है—

''एक मेरा दादा तक मेरा ताऊ, एक मेरा बड़ला भाई हो,

तीनों रल—मिल चालै पड़ै, मेरी चालै करण सगाई हो,

---

[10] बुरशट—कमीज

[11] सुमन यादव, गांव लावन, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

घर देखा नोहरा भी देखा, इब दिखाओ थारो छोरा हो

दिल्ली कै मैं लाल कॉलेज से, उत पढ़ै म्हारा छोरा रै।''[12]

लोकगीतों के माध्यम से सगे संबंधियों का परिचय तो मिलता ही है। साथ ही हरियाणवी लोक संस्कृति की यह अनूठी परम्परा है। सगाई के मौके पर आज भी पर प्रचलित लोकगीत–

''कित रज तै आए नारियल

कित रज तै आए म्हारै

छैल बन्ना का टीकला

जीर बन्ना जीरा।

कित रज तै आए नारियल

छैल बन्ना का टीकला

बागा स आया नारियल

दिल्ली से आया रै म्हारै

दैल बन्ने का टीकला

जीर बन्ना जीरा।''[13]

हमारी संस्कृति में अनेक प्रथाएँ एवं परम्पराएँ बदलती रहती उन्हीं के अनुसार लोकगीतों में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

---

[12] अनीता देवी, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

[13] सुमेरचंद, म्हारी दादी–परदादी आलेगीत, पृष्ठ 18

''मेरी हरी–हरी चूड़ियों की बांहें भरी,

हे सुहाग मांगण लाडो अपणे दादा कै गई

हे सुहाग मांगण लाडो अपणे ताऊ कै गई

दादा दे दो न सुहाग लाडो कब से खड़ी

हे सुहाग देगा राम जोड़ी हद की बणी।''[14]

प्रस्तुत गीत लड़की की सगाई के अवसर पर महिलाओं द्वारा गाया जाता है। इसमें सगाई के उपरान्त लड़की अपने बड़ों, दादा, ताऊ, चाचा से आशीर्वाद लेने जाती है। और अपने सुहाग की मांग करती है। दादा, ताऊ कहते हैं कि हमने तुम्हारी जोड़ी के मुताबिक दूल्हा दिया है बल्कि आगे ईश्वर कृपा और भाग्यानुसार फल मिलेगा। इस प्रकार बड़े लड़की को सदा सुहागन का आशीर्वाद देते हैं।

भात न्यौतना गीत :–

शादी विवाह के अवसर पर हमारे यहॉ रिश्तेदारों के सहयोग की एक बहुत सुंदर परम्परा प्रचलित है। शादी की तिथि तय होने पर शादी से कुछ दिन पहले वर, कन्या के माता–पिता, वर–कन्या के मामा के घर जाकर विवाह में शामिल होने के आमंत्रित करने जाते हैं। जिसे भात न्यौतना कहते हैं। यह कार्य कुछ रस्मों के साथ शुभ तिथि शुभ वार देखकर सम्पन्न किया जाता है। भात न्यौतने के गीत वर पक्ष, कन्या पक्ष दोनों के समान होते हैं। जिस लड़के या लड़की का विवाह होता है। उसकी मां भात न्यौतने अपने भाईयों के पास विवाह की शुभ सूचना पहुॅचाने जाती हैं।

[14] अनीता देवी, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

भात न्यौतने जाते समय मां गुड़ की 'भेली' वोले (नारियल) एवं कुजे लेकर जाती है। भात न्यौतने वाली बहन अपने गांव के घर से कुछ दूरी पर 'काकड़' पर रूक जाती थी। फिर उसकी भाभी अन्य स्त्रियॉ उसे मान सम्मान तथा गीत गाते हुए घर लेकर आती हैं। गीत में आई आस–पड़ोस की औरतें को पहले तो बताशे, शक्कर बाटकर विदा किया जाता या लेकिन आज कल तो बिस्कुट, चिप्स, फुर्टी, कुरकुरे, बर्तन आदि बाँटे जाते हैं। एक भात गीत इस प्रकार है–

''पांच सुपारी पांच हल्दी की गांठ तो पिहर नोतण मैं गई जी

बीरा न्यूतो मैं जलहर डूंगर बाद

तो राता देणी मायड़ी जी

बीरा न्यूतौ सै कान–कवर सो वीर

गोद भतीजै भावजा जी

बीरा न्यूतो सै काका–ताऊ लोग

तो काकी–ताईया में झुमको जी

बीरा न्यूतो सै अगड़–बगड़ को लोग तो

परलै परसै मांवसी जी

बीरा न्यूतो स सब परिवार तो,

न्यूत चली घर आपणै जी।''[15]

---

[15] दक्षिण हरियाणा के लोकगीत, पृष्ठ 70

प्रस्तुत गीत में जब बहन भाई को न्योता देने जाती है। तो अपने सारे परिवार को न्योता देती है तथा अपनी खुशी में सबको सम्मिलित होने का निमंत्रण देती है। प्रस्तुत लोकगीत में भात न्योतने के लिए प्रयोग होने वाली सामग्री का वर्णन किया गया है–

''क्या ये सै नोन्दु बाबुल राजा, क्यासै चाचे ताऊ

एरी क्या सै नौन्द मेरी मॉ का जाया, जिससे मैं ऊजली

लाडू सै नौन्दु बाबुल राजा, गुड़ की डली से चाचे ताऊ

एरी मिश्री का कुंजा मेरी मॉ की जाया, जिससे मैं ऊजली

रोली से चिउसु बाबुल राजा, हल्दी से चाचे ताऊ

ऐरी केसर तिलक मेरी मॉ का जाया जिससे मैं ऊजली

क्या ये मैं आवै बाबुल राजा, क्यायै से चाचे ताऊ

ऐरी क्या ये में आवै मेरी मॉ का जाया जिससे मैं ऊजली

रथा मैं आवै बाबुल राजा, मझोली से चाचे ताऊ

ऐरी कार मैं आवै मेरी मॉ का पाया जिससे मैं ऊजली।''[16]

\+ \+ \+

रुण–झुण अर्थ जुड़ाया कै ए बीरा के आई

भावज देखी आवती ए कमरे मैं बड़गी

सुखी शक्कर घाल कैं ए वै नै भेली सरकाई

---

[16] सविता देवी गांव मालड़ा जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

बीर कहवै ही घाल देए वै तै करी सै लड़ाई

बीरा बढ़िया सा साफा बांध ले रै तू म्हारे घर आईए

थाली भर बुरा घाल दू रै तू छिक कै खाईए

जै बीरा बच जाए तो रै भावज नै चखाइए

मेरा भात नै राख कै रै बीरा होली चिण वाइए

बाहण–बेटियॉ को राख कै रै बीरा टोड़ा झुक वाइए

भात की चुन्दड़ी राख कै रै आवज नै उढ़ाइए

म्हारै तो पैसा बोहत मै रै तू लेतो जाइए

कितना भरा हो देहल तक रे पियर बिन ना सरै

यो तो एक रिवाज रै निभाया निभ सै।''[17]

प्रस्तुत लोकगीत के बहन अपने भाई के घर जब भात न्योतने आती है। तो भाई–भाभी भात के खर्च के डर से बहन से सीधे–मुंह बात भी नहीं करते। उसकी कोई आव–भगत भी नहीं करते और न ही अच्छा खाना खिलाते बहन अपने भाई से फिर भी नाराज न होकर व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहती हैं कि भाई तु मेरे घर आना मैं तेरी बढ़िया खातिरदारी करूॅगी। भात भरते की ज्यादा जरूरी नहीं है। उन भात में खर्च होने वाले रूपयों से तुम अपने घर बनाने में खर्च करना।

प्रस्तुत गीत के माध्यम से बहन कहती हैं कि किसी के पास कितना ही ज्यादा पैसा हो लेकिन एक बेटी को उसके पिहर के बिना नहीं सरता। इसलिए

[17] विमला देवी, गांव–झूक, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

मैं तो एक रिवाज निभाने के लिए भात न्योतने आई हूॅ मैं किसी लालचवश नहीं आई हूॅ।

''कैसे नोतूं किस विधि नोतूं मेरे भैया के घर भात रे गरीब मेरा भातिया

कहां से लावेगे टीका, रखड़ी कहां से लानै झुमकी रे मेरी कहां से लावै झुमकी

मैं लाऊॅगो, पहनाऊॅगो पौरी पर बहिना भात री दिलदार तेरो भातिया

कैसे नीतू किस विधि नोतू मेरे भैया के घर भात रे गरीब मेरो भातिया।''[18]

प्रस्तुत गीत में बहन अपने भाई के गरीब दशा का वर्णन करती है। कहती हैं कि मैं कैसे कौन सी विधि से भाई को भात के लिए न्योता दूॅ मेरा भाई गरीब है। वो कहॉ से भात के उपहार जेवर, कपड़े आदि लेकर आयेगा भात की रस्म में खर्च होने वाले रूपये पैसे नेग, चूड़ा आदि लाने की हिम्मत भाई की नहीं हैं।

वर्तमान समय में पैतृक सम्पत्ति पर लड़कियों का भी कानूनन रूप से हिस्सा होता है। लेकिन एक बहन अपना हिस्सा जमीन–जायदाद के रूप में नहीं लेती। इसके बदले भाई अपने भांजा/भांजी की शादी में भात भरने की परम्प्रा का पालन करता है। भाई–बहन का यही तालमेल उनके आपसी प्रेम को प्रगाढ़ करता है। परन्तु आजकल कुछ स्त्रियॉ अपने हिस्से की जमीन जायदाद बेच देती है। जिससे भाई–बहन के रिश्तों में तकरार आ जाती है। और भाई भी अपने कर्तव्य को भूल जाता है। इसी प्रकार की स्थिति को यह लोकगीत स्पष्ट करता है–

''भेली, चावल ले कै बीर मैं तेरे बारनै आई रे

तू तै मेरे बीरा खेत में गया भावज भी ना पाई रे

---

[18] सविता देवी, गांव मालड़ा, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

एक बर बोल्ही दो बार बोल्ही बोल्या मां का जाया ए

भात भरण की श्रद्धा कोन्या सुण ले बाहण मां जाई ए

ढूंगे त तनै क्यार ले लिए, हेल्लीयॉ कै टैक्स लगवाए तनै

भात भरण की श्रद्धा कोन्या सुण ले बाहन मां जाई ए

ढूंगे त तरै क्यार छोड़ दू, हेल्लीयां का टैक्स तरा दूगी

मेरे बारनै आइए रे बीरा मोटा मानू रे शान तेरा

दो तौला की गुंठी ल्याऊ नौ तौला का हार तेरा

सबै तै पहला आवां ए बेबे मानंगे परिवार तेरा।''[19]

इस लोकगीत के माध्यम से वर्तमान समय के स्वार्थीपन पर दृष्टिपात किया है। भाई–बहन पवित्र रिश्ता लोभ एवं स्वार्थ में सिमट् कर रह गया है। इस लोकगीत में एक तरफ जहॉ रिश्तों में दरार के कारण भाई भाभी का बहन के प्रति नाराजगी का वर्णन है। दूसरी तरफ इसमें परम्पराओं की महत्ता का बोध भी होता है। धन दौलत से मान सम्मान नहीं खरीदा जा सकता। रिश्ते नहीं खरीदे जा सकते। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि जिस विवाह में भाती नहीं आते तो वहाँ अपशकुन माना जाता है।

5. ब्याह हाथ लेना गीत :–

'ब्याह हाथ लेना' हरियाणा की विवाह की भात न्योतन के बाद दूसरी रस्म होती है। इस अवसर पर घर–परिवार की सुहागिन स्त्रियॉ गेहॅू साफ करती है। तथा गेहॅू साफ करके उन्हें पिसवाया जाता है। यह एक प्रकार से विवाह में तैयार किए जाने वाले भोजन की तैयारी होती है। प्राचीन समय में सभी स्त्रियॉ

---

[19] विमला देवी, गांव–झूक जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

इक्ट्ठी होकर गेहूॅ साफ करके उनका आटा बनाकर उन्हें कनस्तरों में भर कर रख देती थी। पहले गेहूॅ पिसाई का कार्य हाथ की चक्की से किया जाता था। शादी से 15–20 दिन पहले ही महिलाऍ इस कार्य को सम्पन्न कर देती थी। आधुनिक समय में यह कार्य मशीनी चक्की द्वारा आसानी से किया जा रहा है। 'ब्याह हाथ लेना' की रस्म में सभी सुहागिनों को ब्राह्मणी द्वारा रोली–कुमकुम का तिलक लगाकर उन्हें मौली का धागा बांधा जाता है। सभी सुहागिन स्त्रियॉ गीत गाते हुए इस मंगलकार्य को करती हैं।

एक रणक भवन स आयो रे 'बिंदायक'[20], आया र बसों म्हारी सीम मैं

म्हारी सीम मैं जस देओ बिंदायक, उपजे मोठ और बाजरो

म्हारा शहर मैं जस देओ बिंदायक, शहर बसे बामण बाणिया

म्हारा बाग मं जस देओ बिंदायक, बाग तो फूलड़ा भरो

म्हारा चौक मं जस देओ बिंदायक, 'मोतियन'[21] चौक पुराईयो

म्हारी रसोई मैं जस देओ बिंदायक, उल्ह–चुल्ह टोकणा

म्हारी हेलिया जस देओ बिंदायक, थैलियां दामा भरी।''[22]

प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से बिंदायक अर्थात् गणेश जी स्मरण किया जाता है। वे गणेश जी को विवाह के शुभ अवसर पर गणेश जी को अपने गांव की सीमा में आने का निमंत्रण देती हुई कहती हैं, कि हे गणेश जी हे बिंदायक महाराज आप हमारे गांव में आकर हमें यश प्रदान करो। हमें अन्न धन दो। आपके आगमन से हमारे गांव में मोठ और बाजरा उपजे ऐसा वरदान दो। शहर में बसे ब्राह्मण, बिनयों को भी उनके शहर में जाकर यश प्रदान करो। हे

[20] विंदायक–गणेश भगवान
[21] मोतियन–मोती
[22] कमल देवी, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

बिंदायक महाराज आप हमारे बागों में आकर हमारे बागों को फूलों से भर दो। हे बिंदायक महाराज आप हमारे चौक अर्थात् हमारे घर के आंगन में आकर उसे मोतियों से भर दो हमें अन्न धन देकर हमें यश दो।

पहले गणेश मनाओ, मनाओ रे बन्ना

शीश बन्ना के सेहरा भी सौहे,

लड़ियों से अतर लगाओ, लगाओ रे बन्ना

गल बन्ना के डोरा भी सोहे, घड़ियों से अतर लगाओ

मेहंदी से अतर लगाओ, लगाओ रे बन्ना

अंग बन्ना के जामा सोहे, अंग बन्ना के बुरशट सोहे

टाई से अतर लगाओ, लगाओ रे बन्ना

अंग बन्ना के बन्नी सोहे, जोड़े से अतर लगाओ

लगाओ रे बन्ना

पहले गणेश मनाओ मनाओ रे बन्ना।''[23]

इस प्रकार महिलाएँ लोकगीत गाते हुए चाव से शादी की तैयारियाँ करती हैं और अपने कुल देवी–देवताओं मनाते हुए सर्वप्रथम बिंदायक अर्थात् गणेश जी की पूजा करती हैं। प्रस्तुत गीत के माध्यम से बन्ना, बन्नी अर्थात् दूल्हे–दुल्हन को भी अपनी संस्कृति और परम्परा स्वरूप गणेश मनाने को कहती हैं।

बान–तेल गीत :–

---

[23] कमला देवी, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

बान की रस्म विवाह की एक अनूठी रस्म होती है। इसके बिना विवाह की रस्में पूरी होने के कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस प्रकार सात फेरे और सात वचन होते हैं उसी प्रकार सात बान की भी परम्परा है। परन्तु आधुनिक समय की भागदौड़ भरी जिन्दगी लोगो के पास इतना समय नहीं है कि वे सात बान पूरे कर सकें। इसलिए तीन/पांच बान की परम्परा प्रचलित होती जा रही है। हरियाणा में बान तेल की रस्म बड़े चाव से मनाई जाती है। यह रस्म दोनों पक्षों में निभाई जाती है। लड़का/लड़की को चौकी पर बिठाकर साथ में एक बिंदायक बिठाया जाता है। दक्षिण हरियाणा में दोपहर बारह बजे से पहले लड़का। लड़की को बना बिठाने की परम्परा है। नायन लड़का/लड़की के बान बैठने का बुलावा सारे मोहल्ले में देती है। तथा एक निर्धारित समय पर सभी औरतें इक्ट्ठा होकर बान–तेल की रस्म को सम्पन्न करती हैं। सबसे पहले उवटन तैयार किया जाता है। जिसे हरियाणवी भाषा में 'मटणा' कहा जाता है। उबटन तैयार करने के लिए सात हल्दी की गांठ तथा सवा सेर जौ लिये जाते हैं उन्हें सात सुहागने मिलकर कूटती हैं। जो स्त्री गर्भिणी होती है, उसके लिए यह कार्य निषेध माना जाता है। सभी सुहागिनों के हाथों पर पहले कच्चे सूत का रंगा धागा बांधा जाता था। आजकल बान की डोरियॉ बाजार में रेडीमेड उपलब्ध है। धागा बंधने के उपरांत, महीन पीसकर उबटन तैयार किया जाता है। जब 'वर' को तेल चढ़ाया जाता है तो हरी–हरी दूब हाथों में लेकर सात सुहागिने तेल चढ़ाती है। इस प्रक्रिया में दही, तेल, मेहदी, उबटन को अलग–अलग सराई में रखकर हरी दूब से पैरों से ऊपर की तरफ जाते हुए 'मटणा' या 'उबटन' लगाया जाता है। सबसे पहले पैरों के पंजों, फिर घुटनों, कंधों तथा सिर पर तेल चढ़ाया जाता है और यह प्रक्रिया सात सुहागिन स्त्रियों द्वारा सात बार दोहराई जाती हैं। तत्पश्चात् लड़का–लड़की को स्नान करा कर उसकी बहन आरती करके उसे घर के अंदर ले जाती हैं तथा दीवार पर देव बनाए जाते हैं बहन उन्हें वहाँ ले जाकर धोक लगवाती है। लड़के के सिर पर चूंदड़ी या चूदंड़ी की साड़ी रखी जाती है। जिसे मांगनाचार

कहा जाता है। बान तेल चढ़ाते समय बहुत ही प्रसिद्ध हरियाणवी लोकगीत गया जाता है–

> ''तेली ए तेलबा तेलण, म्हारे रहे चमेली का तेल सै
>
> किसियां की याहे 'भोटलिया' बहू किसियां नै तेल चढ़ाइया
>
> सरवन की याहे भोटलिया, बहू सुदेश तेल चढ़ाइया
>
> तेली ए तेलण तेल, म्हारै रहे चमेली का तेल सै
>
> किसियां की याहे भोटलिया, बहू किसियां नै तेल चढ़ाइया
>
> सत्ते की याहे भोटलिया, बहू मनीषा तेल चढ़ाइया।
>
> तली ए तेलब तेल ....।''[24]

इस लोकगीत को वर–कन्या दोनों को तेल चढ़ाते समय सभी स्त्रियॉ मिलकर गाती हैं। कुछ लोकगीत समय के अनुसार परिवर्तित हो जाते हैं परन्तु यह लोकगीत अत्यंत प्राचीन समय से चला आ रहा है। आज भी तेल चढ़ाते समय तेल चढ़ाने वाली स्त्री का परिचय गीत के माध्यम से करवाया जाता है। शहरों में जगह की कमी के चलते विवाह कार्य मैरिज पैलेस, होटल में सम्पन्न किया जाता है। लेकिन तेल चढ़ाने उतारने का कार्य भी उसी रीति से आज भी सम्पन्न किया जाता है। जिस रीति से पहले किया जाता था। उपभोक्तावाद की दौड़ में मनुष्य ने इस प्रक्रिया को समेट कर एक–दो दिन में समेट दिया है। बान देने का सामाजिक, सांस्कृतिक, पारम्परिक महत्व तो है ही परनतु इसके पीछे एक मनोवैज्ञानिक सत्य भी है कि बान नकारात्मक ऊर्जा को दूर करने, ग्रह दोष का निवारण तथा बुरी नजर से वर–वधू को बचाने के लिए दिये जाते हैं। बान में हल्दी का प्रयोग इसलिए होता है कि यह एक

---

[24] ग्यारसी देवी, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

प्राकृतिक एंटीबायोटिक होती है। वर–वधू के शरीर पर हल्दी का लेप उन्हें अनेक त्वचा संबंधी रोगों से बचाता है तथा त्वचा में निखार भी लाता है। शादी में अनेक मेहमान सकारात्मक/नकारात्मक ऊर्जा लिए आते हैं हल्दी वर–वधू को नकारात्मक ऊर्जा से बचाती है।

शादी विवाह के अवसर पर प्रत्येक मांगलिक कार्य सुहागिन स्त्री के हाथों करवाया जाता है। विधवा स्त्रियों को मांगलिक कार्यों से थोड़ा दूर ही रखा जाता है। वैसे आज के समय में विधवा स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण बदल चुका है फिर भी मांगलिक कार्य सुहागिन एवं पुत्रवती स्त्री ही करती हैं। किसी अनहोनी या अपशकुन के भय के कारण रूढ़ि मानकर इस परम्परा का निर्वहन किया जाता है। परन्तु यह परम्परा हमारे प्रदेश की अंधविश्वासी प्रवृत्ति को दर्शाती है। वैसे देश के अनेक हिस्सों में इस प्रकार के शकुन–अपशकुन को माना जाता है। कुछ रस्में वास्तव में अपना महत्व खोती जा रही हैं एवं बहुत सी रस्में ऐसी है जिन्हें केवल औचारिक तौर पर निभाया जाता है। वास्तव में उसकी क्या महत्ता है इस बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं होती है। परन्तु लोकगीतों ने उनके अस्तित्व को बनाए रखा है।

बनड़ा/बनड़ी गीत :–

विवाह से पूर्व जब लड़का–लड़की को बान बिठाया जाता है तब से लेकर विवाह तक प्रतिदिन रात्रि में गीतों का आयोजन किया जाता है। कुछ परिवार चाव के चलते नौ या ग्यारह दिन पहले भी गीत शुरू कर देते हैं। इन गीतों में बन्ना या बन्नी के गीतों को गाया जाता है। गांव की नायन आस–पड़ोस में गीतों का बुलावा देकर आती है। रात के समय या अपनी सहूलियत के अनुसार गीतों का समय निश्चित कर लिया जाता है। गीतों की शुरूआत देवी–देवताओं के गीतों से की जाती ळै। तत्पश्चात् बन्ना–बन्नी गीत गाकर कुछ गीतों पर नृत्य किया जाता है। तथा अंत में एक बधावा गीत गाया जाता है। बन्ना–बन्नी गीतों में हरियाणा की पारिवारिक सुदृढ़ता झलकती है।

हरियाणवी संस्कृति में बच्चों को दादा के नाम से संबोधित किया जाता है। पुराने समय में पोते–पोती अपने दादा के अधिक जाने जाते थे। संयुक्त परिवारों में बच्चों पर माता–पिता से अधिक दादा–दादी, ताऊ–ताई, चाचा आदि का अधिकार अधिक होता था उसी का सुदृढ़ उदाहरण प्रस्तुत बन्ना–बन्नी गीत में स्पष्ट देखा जा सकता है।

दादा जी का प्यार बन्ना नंवर लिबम्या पोली मैं

सासू लिखग्या, ससुरा लिखगया, साली लिखगया दफ्तर मैं

आप बन्ना छापे मैं छिप गया, बन्नी छिपा लेई ह्रदय मैं

पापा जी का प्यार बन्ना नवंर लिख गया पोली मैं

चाचा जी का प्यार बन्ना, नवंर लिख गया पोली मैं

सासू लिख गया, ससुरा लिख गया, साली लिख गया दफ्तर मैं

आप बन्ना छापे मैं छिप गया, बन्नी छिपा लेई ह्रदय मैं।

प्रस्तुत बन्ना–बन्नी गीत में भावी पति–पत्नी के मधुर दाम्पत्य जीवन की कामना की जाती है। बन्ना–बन्नी के प्रेम में इस प्रकार डूबा रहता है कि वो ह्रदय से छिपाकर रखता है। और दाम्पत्य जीवन की मधुर कल्पनाएँ एवं प्रेम का बीजारोपण इन लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

सन् 2019–20 में विश्व में कोरोना महामारी छाई रही। इस दौरान शादी–विवाह के आयोजनों में लोगों को सिमित संख्या में इक्ट्ठा करने के दिशा निर्देश दिए गए। कोराना की वजह से महगाई भी बहुत बढ़ गई। जिसका प्रभाव प्रस्तुत बन्ना गीत में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है–

बन्ना नमक लगे ना मिठाई रे,

लॉकडाउन मैं शादी करवाई रे

बन्नी दादा बुलाया, दादी आई रे

सारे बच्चों को स्पेस आई रे

बन्नी ताऊ बुलाया ताई आई रे,

सारे बच्चों को संग ले आई रे

बन्नी रातों लगाया हिसाब रे

दो सौ ढाई सौ जुड़ेंगे रिश्तेदार रे

बन्ना नमक लगे ना मिठाई रे

लॉकडाउन में शादी करवाई रे।''[25]

इस गीत में बन्नी महगाई की चिंता जता रही है। सम्भवतः बन्नी अपने होने वाले पति से कम खर्चे में शादी करने की अपिल करती हैं। तथा कोरोना के कारण लगे लॉकडाउन में शादी रचाने की कहती है कि न नमक लगेगा और ना ही मिठाई का खर्च उठाना पड़ेगा। इसलिए लॉकडाउन में शादी कर लेते हैं।

लेकिन बन्ना संयुक्त परिवार की संस्कृति को समझाते हुए कहता है कि दादा बुलाएगें तो दादी साथ आएगी तथा उनके साथ सारा परिवार आयेगा। लोकगीत में शादी में होने वाले खर्चे का हिसाब लगाया जा रहा है। विवाह में परिवार नाते–रिस्तेदार अपने परिवार वालो को इक्ट्ठा करते है। घर, परिवार, रिस्तेदारी मैं शादी विवाह का सभी बेसब्री से इंतजार करते हैं दो सो ढाई सौ लोगों का इक्ट्ठा होने आपसी भाईचारे का प्रतिक होता था। लेकिन

---

[25] मिनाक्षी देवी, रिवासा जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

आजकल एकांकी परिवारों में लोगों की सिमित संख्या हो गई है। तथा शादी–विवाह में भी कम ही लोग सपरिवार पहुँचते हैं आधुनिक परिवेश में किसी के पास इतना वक्त नहीं है कि वे कई दिन पहले विवाह आयोजनों में शामिल हो सके।

प्राचीन समय में शिक्षा सीमित लोगों की पहुँच में थी। शादी की उम्र काफी कम होती थी। छोटी उम्र में या कह सकते हैं कि खेलने कूदने की उम्र में ही विवाह कर दिया जाता था। विवाह का सही मतलब तक बच्चे को पता नहीं होता था। जब लड़का गलियों में खेलता रहता तो परिवार के सदस्य उसे घर बुलाकर ले जाते। कोई रिश्ता करने के लिए आए नाई, ब्राह्मण को लड़का दिखाने के लिए लड़के को बुलाया जाता था। प्रस्तुत लोकगीत में इसी प्रकार के दृश्य का वर्णन है–

बन्ना खेले गलियों में उड़ावे पतंग

तेरा दादा बुलावै चलो लाडले

तेरा ताऊ बुलावै चलो लाडले

तुझे बन्नी बिहा दूयूं करो ना पसंद

उस बन्नी का फोटू खिंचाया नहीं

मेरे कमरे के अंदर लगाया नहीं

बिना देखो बताओ करूँ क्या पसंद

ज्यादा कहने में आती है मुझको शरम

तेरा पापा बुलावै ....

तेरा चाचा बुलावै ....।''[26]

इस गीत के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि पहले के समय में लड़की पसंद करने का कार्य परिवार ही करता था। लड़की की फोटो भी लड़के को नहीं दिखाई जाती थी। लड़के के समझ जब लड़की को पसंद करने का प्रस्ताव रखा जाता है तो लड़का अपने मनोभावों को अपनी वाणी के द्वारा व्यक्त करता हुआ कहता है कि जिस लड़की को तुम पसंद करने के लिए कह रहे हो उसका फोटो तो तुमने मुझे दिखाया ही नहीं हैं। बिना देखे मैं कैसे पसंद करू। पहले कम उम्र में विवाह बंधन में बधने के कारण उन्हें इतनी समझ नहीं होती थी। वह अपने मन की बात कहने में शर्म महसूस करते थे। परन्तु आधुनिक समय में शिक्षा के प्रचार–प्रसार के चलते बच्चों की हर क्षेत्र में समझ विकसित होती जा रही है। आजकल बच्चे कॉलेज जाने लगे हैं और पहनने का, रहने का सलीका सीख गए हैं। उनके पहनने पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अग्रलिखित बन्ना गीत में इसी प्रकार का प्रभाव दिखाई देता है–

बन्ना काला कोट सिमाइए, अंग्रेजी बटन लगाइए

बन्ना पहर कॉलेज मैं जाइए रे,

अपणे दादा जी रा लाडला कहवाइए

बन्ना 'पहर'[27] कॉलेज मैं जाइए रे

अपणे ताऊ जी रा लाडला कहवाइए रे

बन्ना लाल–लाल रंग बरसै

[26] सरोज देवी, गांव भगड़ाना जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा
[27] पहर–पहनना

पीहर में 'बदंड़ी'[28] तरसै

बन्ना तरस–तरस कै रह गए,

जिसकै माला धली रे वो तो ले गए

बन्ना छोटी मिर्च बड़ी तेज रे,

म्हारा बन्ना बणया अंग्रेज रे।[29]

प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से बन्ने को काला कोट सिलाकर उस पर विलायती बटन लगवाने की सलाह दी जा रही है। ताकि पहनावे के माध्यम से उसकी एक अलग छवि कॉलेज में बने। साथ ही दूसरी तरफ पीहर में मिलने के लिए आतुर बन्नी की मनोदशा का वर्णन भी किया गया है कि वो किस प्रकार अपने होने वाले पति से मिलने के लिए आतुर हैं।

कोले पै काली स्याही ए बन्नी नै हिचकी आई

बन्नी मै हिचकी आई ए बन्ने की चिट्ठी आई

बन्नी का दादा बूझै ए या चिट्ठी कित तै आई

बन्नी का ताऊ बूझै ए या .....

गामा मैं गाम मिलै सै या चिट्ठी लावण तै आई

कोले पै काली स्याही ए बन्नी न हिचकी आई।[30]

इस लोकगीत में बन्ना बन्नी की याद में विवाह से पूर्व के पत्राचार को दर्शाया गया है। पूराने समय में दुल्ला–दुल्हन शादी से पहले एक दूसरे से मिल

---

[28] बन्दड़ी–नववधू

[29] मीनाक्षी देवी, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

[30] सुशीला देवी, गांव लावन जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

नहीं पाते थे। वर्तमान समय की भांति संचार के साधन नहीं होते थे। चिट्ठी पत्र के माध्यम से अपनी भावनाएॅ व्यक्त करते थे। उन्हीं भावनाओं को जानने समझने का प्रयास होने लगा। हिचकी आना एक ऐसा लोकविश्वास को दर्शाता है। हिचकी के आने से कोई प्रिय व्यक्ति याद करता है। यह एक लोक विश्वास है इस रूढ़ि को आज भी भाग जाता है।

संयुक्त परिवार में परिवार का प्रत्येक सदस्य बन्नी के ऊपर अपना विशेष स्नेह रखता है। दादा–दादी, ताऊ–ताई, चाचा–चाची सभी बन्नी के भावी जीवन की शुभकामाएॅ देते हुए उसे ससुराल जाने के लिए तैयार होने को कहते हुए लोकगीत गाते हैं–

उठो बन्नी, सजो जल्दी, तुम्हे ससुराल जाना है–2

तेरो दादा हजारी ने शहर सारा सजाया है

तेरे ताऊ हजारी ने शहर सारा सजाया है

तेरी दादी के जीवन में ये शुभ दिन आज आया है

तेरी ताई के जीवन में ये शुभ दिन आज आया है।[31]

प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से विवाहके दिन लड़की को सजने को कहा जाता है। दादा जी ने अपने प्रेम को दर्शाते हुए सारे शहर को सजा दिया है और यह शुभ दिन जिस प्रकार बन्नी की दादी के जीवन में आया है उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में यह शुभ आए।

बनवारा :–

---

[31] रचना, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

हरियाणवी लोक संस्कृति में त्यौहारों एवं परम्पराओं का बहुत महत्व है। इसी परम्परा के अन्तर्गत बनवारा भी एक परम्परा है। वर की शादी के समय लग्न समारोह के बाद लड़के के बान–तेल की रस्म के बाद बनवारा दिया जाता है। बनवारे जितने दिन चलते हैं उतने ही दिन वर का नजदीक के परिवार जनो के वहाँ अच्छा खाने–पीने को भोजन दिया जाता है। प्राचीन समय में लड़के की खुराक का प्रबंध पिता न कर सकते थे, इसलिए बनवारो की प्रथा हरियाणा में विवाह की अनोखी परम्पराओं में एक है। आधुनिक युग में धीरे–धीरे यह परम्परा लुप्त होती जा रही है। जबकि ग्रामीण स्तर पर तो आज भी देखने को मिल जाती है। कहीं–कहीं परम्पराओं के अन्तर्गत कन्या पक्ष में भी बनवारे की प्रथा है। इस परम्परा को अपनाते हुए नजदीकी रिश्तेदार या पड़ोसी लड़के को और आरते वाली को अपने घर पर ले जाते हैं और उन्हें अच्छा भोजन बना करके खिलाया जाता है। इसके साथ–साथ लड़के के परिवार वाले भी पड़ोसी के घर जाकर भोजन करते हैं और भोजन करने के बाद लड़के को नहला कर थाली से आरता करके बाजे के साथ लड़के को उसके घर भेजा जाता है। बनवारे संबंधी हरियाणवी लोकगीत इस प्रकार है–

किसियाँ बन्ना है न्योंदिए

घर 'किसिया'[32] के हे जा

यू बनवाड़ा है न्योदिए

मिरी राम बन्ना हे न्योदिए

घर राम जी के हे जा

यू बनवाड़ा हे न्योदिए

फीड़े भारे हे मोचड़े

---

[32] किसियां–किसने

चाल हे नानड़ी ाल

चादर ओढ़े ऐ तीन पटी

बैठ भाईया के हे बीच

यू बनवाड़ा हे न्योदिए।

प्रस्तुत लोकगीत में दिखाई देता है कि हरियाणा की संस्कृति साम्यवादी परम्परा पर आधारित है। यहॉ के लोग विवाह के खर्चे को भी मिलकर वहन करते हैं। इन परम्पराओं में आपसी प्रेम तो बढ़ता ही है साथ–साथ आर्थिक रूप से भी सहायता मिलती है। इसी तरह की परम्पराए हरियाणा में काफी है जैसे– न्योता डालना, वारफेर करना, कन्यादान करना आदि है। विवाह शादी के अवसर पर दोनो पक्ष अपने मिलने जुलने वालो को बुलाते हैं, वे लोग आकर न्योदा डालते हैं। इससे विवाह वाले को सहायता मिल जाती है न्यौता विवाह वाली की वही में लिखा जाता है। इससे यह ध्यान रहता है कि उसके न्यौता डालने वाले किसी रिस्तेदार के घर जब विवाह होता है तब वह भी न्यौता डालने जाता है। यह पारस्परिक सहयोग की एक उत्तम रीति है। जितना न्यौता डालकर जाता है, उसके बदले में उससे दुगुना डाला जाता है। यह इसी प्रकार चलती रहती है वारफेर और कन्यादान में जो दिया जाता है वह ऐच्छिक होता है। वह दुगुना डालकर देने के परम्परा में नहीं आता है वह न्यौता नहीं कहलाता। कन्या को दिया गया सब धन स्त्री धन कहलाता है। आधुनिक युग में यह परम्परा लुप्त होती जा रही है। बढ़ते शहरीकरण के कारण लगभग ग्रामीण परम्परा लुप्त होती जा रही है। हमारे लोकगीत इन सभी परम्पराओं के गवाह रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में आज कल भी इस प्रकार की परम्पराए देखने को मिलती है। जहॉ चाचा, ताऊ, भाई होते हैं जो एक दूसरे का सहयोग करते हैं। वहाँ भी न्यौता डालने की परम्पराए आज भी है।

मेंहदी गीत :–

मेहदी गीत के साथ बड़े–बड़े शगुन जुड़े हुए हैं जब मेहदी के कार्यक्रम की बात आती है तो कुछ चीजें होती है जो उत्सव को और अधिक रोमांचकारी और आनंदमय बनाती है। प्राचीन समय में मेहदी को खेत में बोया जाता था उसके बाद उसके पत्ते तोड़कर पिसाई कर मेंहदी तैयार की जाती थी। आजकल भी राजस्थान के सोजत की मेंहदी प्रसिद्ध है। जहॉ पर आज भी मेंहदी की खेती की जाती है। मेहदी की खेती पर हरियाणवी लोकगीत है वे इस प्रकार है–

मेरी मेंहदी के औड़े–चौड़े पाव रे बीरा बारी जा

मै तै पीसूंगी चकले के पार रे बीरा बारी जा

मैं तै घोलूंगी हिरणी के दूध रे बीरा बारी जा

मैं तै लाऊॅगी सचीन भाई के हाथ रे बीरा बारी जा।''[33]

प्रस्तुत लोकगीत में एक बहन अपने भाई के लिए मेहदी तैयार करती हैं। पहले मेहदी खेतों में उगाई जाती थी तब उसके पत्तों को तोड़कर सुखाकर फिर उन्हें पीसकर उसमें तेल या दूध डालकर रख देते थे जिससे उस मेंहदी का रंग ज्यादा गहरा हो जाता था। पहले लोग रूढ़ीवादी बातों पर ज्यादा ध्यान देते थे। वे कहते थे कि मेंहदी का रंग जिसका ज्यादा गहरा होगा उतना ही अच्छा परिवार मिलेगा। यदि मेंहदी का रंग फीका होगा तो सास भी झगडालू मिलेगी। यदि मेंहदी का रंग लाल आया है तो सास अच्छी मिलेगी। रिश्तेदार अच्छे होंगे। लेकिन आधुनिक युग में मेंहदी बाजार से तैयार मिलती है। ग्रामीण क्षेत्रों में विवाह के अवसर पर रात के समय सभी महिलाऍ मेंहदी लगाती थी। और गीत गाने आने वाली औरतें भी मेंहदी लगाती थी और घर पर भी लेकर जाती थी। मेहदी बांटने की परम्परा थी। मेंहदी लगाने का कार्य घर पर ही महिलाओं द्वारा किया जाता था। लेकिन आप के युग में मेंहदी लगाने का

---

[33] कमला देवी, गांव लावन, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

कार्य घर में बाहर ब्यूटी पार्लर में करवाया जाता है। जबकि उस समय बान बैठने के बाद वर–वधू को घर से बाहर जाना वर्जित होता था। पहले उबटन घर पर ही तैयार किया जाता था। घर पर उबटन में हल्दी, दूध और बेसन डालकर तैयार किया जाता था जो वर व वधू को लगाया जाता था। लेकिन आजकल उबटन बाजार से लेकर आते हैं और वर–वधू बाजार जाकर विवाह की पोशाक पहनकर आते हैं। आजकल सौंदर्य वर्धक क्रीमों का प्रयोग होने लगा है।

चाक पूजन :–

चाक पूजन हरियाणवी परम्पराओं में विवाह समारोह में निभाई जाने वाली रस्मों का एक हिस्सा है। विवाह के अवसर पर चाक पूजन की रस्म का पारम्परिक दृष्टि में बड़ा महत्व होता है। धार्मिक नजरिये में देखे तो कुम्हार के चाक को ब्रह्मा सृष्टिचक्र भी माना जाता है। जिस प्रकार से कुम्हार अपने चाक में मिट्टी को नाना प्रकार की शक्ल देता है। बर्तनों की और अन्य साधनों की उसी तरह चाक को भी नवीनता का प्रतीक माना जाता है। घर की औंरते इक्ट्ठी होकर गीत गाती हुई कुम्हार के घर चाक पूजने के लिए जाती है और वहॉ वे कलश व नये मरके लेकर आती है। पूजा पूरी हो जाने के बाद वो कुम्हार दम्पत्ति को विधि अनुसार दक्षिणा और वस्त्र भेट करती है, जो नए मरके व कलश लेकर आती है, उसे घर में रखा जाता है। चाक पूजने के लिए मोहल्ले की सभी महिलाएॅ इक्ट्ठी होकर गीत गाती है जो इस प्रकार है–

किस रूत बोलै कोकले[34], किस रूत बोलै मोर

सामण बोले कोकले भादवे तो बोले मोर

कै रे चुगेंगे कोकले, कै रे चुगेंगे मोर

---

[34] कोकले–कोयल

चोगा चुगेंगे कोकले, दाल चुगेंगे मोर

बेटा तो कहिए भवन लाल का सचिन उसका नाम

बैठे मैं तख्त बिछाए कै उठैगे न्याय चुकाए

ईमा तो न्याय नै चुकाए दुनिया तै देगी गाव

ईसा तो न्याय चुकाईए दुनिया तै देगी सीस[35]।

इस लोकगीत में विश्व प्रसिद्ध हरियाणवी पंचायती राज का दृश्य दिखाया गया है। पंचायत द्वारा दिया गया निर्णय ही समाज का सर्वमान्य होता है। गांव में छोटे–मोटे झगड़े पंचायत ही सुलझा लेती थी। इस लोकगीत के चाक पूजने की प्रथा प्राचीन युग का बोध करवाती है। उस समय चाक के ऊपर बनी मिट्टी के बर्तन घरेलू उपयोग के महत्वपूर्ण सामान होते थे। इसके साथ ही सभी जातियों के लोग अपनी खुशी में शामिल कर सर्वहारा समाज की स्थापना करते थे। आज के समय में ये परम्पराएँ लुप्त होती जा रही है। शहरों में ये प्रथा नाम मात्र के लिए लोकगीतों में ही सम्पन्न की जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी महिलाएँ अपने कुम्हार के घर व संदेशा भिजवाकर नए मटके मंगवाती हैं और कुम्हार को उसके नेग स्वरूप वस्त्र एवं मिठाई आदि देती हैं। प्रस्तुत लोकगीत में कोयल एवं मोर का जिक्र का दोनों पक्षीयों के माध्यम कृषि प्रधान एवं हरे भरे प्रदेश में निवास करने वालों को भावनाओं को दर्शाया गया है। इस लोकगीत में न्याय प्रियता को भी दिखाया गया है और बताया गया है कि न्याय के आसन पर बैठकर कभी अन्याय मत करना, वरना तुम्हे लोक निंदा का सामना करना पड़ेगा। आज के युग में आधुनिक महिलाओं को हरियाणवी परम्पराओं का ही ज्ञान नहीं है। हमारे समाज की बड़ी या वृद्ध महिलाएँ इन लोकगीतों को गाकर हमारी प्राचीन परम्पराओं को जीवित रखती हैं और नए युग की महिलाओं को बता बताकर इन परम्पराओं की होने वाले कार्यक्रमों

---

[35] सीस–आशीष

में करवाया जाता है। अगर समाज में वृद्ध महिलाएँ नहीं होती है, तो नई महिलाओं द्वारा प्राचीन परम्पराओं को करने में कठिनाई होती है। आने वाली पीढ़ियों में धीरे–धीरे में परम्पराएँ लुप्त होने के कगार पर है। क्योंकि कुछ परम्पराएँ हमारे ग्रंथों में संलग्न है तो हम उन की सहायता से अपना सकते हैं।

भात लेना :–

बहन अपने भाई के घर अर्थात् अपने मायके से भात न्योतकर वापस अपने ससुराल आकर शादी की तैयारी में लग जाती है। उधर उसका भाई भी भात की तैयारी शुरू कर देता है। शादी वाले दिन उसका भाई, भाभी, भतीजे, भतिजियाँ तथा चचरे भाइयों के साथ भाती बनकर बहन के घर जाते हैं। विवाह के दिन बहन सुबह से ही भातियों का इंतजार करना आरम्भ कर देती हैं। यदि भातियों को किसी कारणवश देरी हो जाती है, तो बहन चिंता होने लगती है। साथ ही उसकी सास, जेठानी, देवरानी के व्यंग्यात्मक ताने शुरू हो जाते हैं। भाती आते ही मीठा पानी पिलाकर उनका स्वागत किया जाता है। तद्परान्त महिलाएँ भात लेने के लिए दरवाजे पर खड़ी हो जाती है तथा गीत गाती हैं–

बीरा माथा नै चुंदड़ी लइए

मेरो कब्जो रत्न जड़ायै रै बीरा रूणक–झुणक भातई आइए रै

बीरा कानां रा कुण्डल लाइए–2

मेरा गल नै गुलीबंद लाइए

मेरो हरवो रत्न जड़ायै रै बीरा रुणक–झुणक भातई आइए रै

बीरा थम भी आइयो भाभी नै भी लाइयो

मेरो गोद भतीजो लाइयों रै बीरा रुणक–झुणक भातई आइए रै

मेरो हाथा नै चुड़लो लाइए

मेरी कड़ नै लहंगो लाइए

मेरा गजरा बैठ धड़ाइए रै, बीरा रूणक–झुणक भातई आइए रै।[36]

इस प्रकार बहन गीत के माध्यम से अपने भाई को अपने साथ भाभी और बच्चों को लाने की बात करती हैं। अपनी खुशीयों में सम्मालित करती हैं तथा साथ ही भाई से अपने लिए उपहार भी मांगती है। भात लेने के लिए बहन थाली सजाती है। जिसमें पानी का लोटा, मिठाई, हल्दी, कुमकुम, चावल रखती है।। बन अपने भाई, भाभी, भतीजे, भतीजियों के माथे पर तिलक लगाकर आरती उतारती हैं। मुहॅ मीठा करवाती हैं भाई अपनी बहन को चुंदड़ी ओढ़ाता है और गले मिलता है। इस अवसर पर महिलाऍ बहुत ही सुंदर गीत गाती हैं–

बीरो भात भरण न आवगौ

म्हारा सगला कारज सारगौ–2

म्हारी सासू जी भोली–भाली

म्हारी नन्दल नखराली

म्हारे सासरे में बात निभावगौ

बीरो भात भरण न आवगौ।[37]

उपरोक्त गीत से स्पष्ट होता है कि एक बहन के लिए भाती सबसे महत्वपूर्ण होता है। किस प्रकार एक बहन भाई का इंतजार करती हैं। ये लोकगीत लोक की उल्लासपूर्ण स्थितियों का चित्रांकन करते हैं। भातियों के

[36] बाला देवी, ग्राम भगड़ाना जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा
[37] बाला देवी, ग्राम भगड़ाना जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

आने पर बहन को जो प्रसन्नता होती है। उसकी मनोस्थिति का चित्रण की पुष्टि एक लोकगीत के माध्यम से ही की जा सकती है–

आया मेरी मॉ का जाया बीर

हीराबंद लाया चुंदड़ी

ओढू तो र बीरा, हीरा झड़–झड़ पड़ै

इब धरू तो तरस जी

सादी क्यू ना ल्याया चूंदड़ी।

यही प्राचीन गीत आज भी भात लेते समय महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं। भात–भरना, खुशी का सूचक लोभ–लालच न होकर भाई–बहन के आपसी रिश्तों को वर्षों बाद भी एक सूत्र में बांधने का कार्य है। बहन द्वारा भाई से उपहार की मांग करना भी बहन का अपने भाई अपना अधिकार भावना को दर्शाता है। बहन अपने भाई की प्रशंसा सुनना चाहती है।

भाई–बहन द्वारा भात की ये रस्म आज भी ज्यों की त्यों चली आ रही है। ये प्रथा भाई बहन को आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार से आधार प्रदान करती हैं। इस प्रथा से लोभ–लालच का समावेश होने पर रिस्तों में कटुता आ जाती है। जिससे भाई भात भरने की आनाकानी करने लगता है तथा बहन भात न्योतने नहीं जाती। जिससे प्राचीन परम्पराओं का हनन तो होता ही साथ में लोकनिंदा भी होती है। ऐसी दशा को चित्रित करता ये लोकगीत है–

भेली और चावल लेकै भात नौतने आई हे

तू तो र बीरा गया रै खेत मैं

भावज भी ना पाई रे।

एक बर बोली, दो बर बोली

मुह त बोल्या ना भाई हो

भात भरण की श्रद्धा कोन्या

सुण ले भाण मॉ जाई हे।

बढ़िया तो तैन क्यार ले लिया,

हेली नाम कराई तनै

पटवारी तै ब्याह कराकर

धरती नाम कराई तनै

बढ़िया तो तेरे क्यार छोड़ दयूं

छोड़ दयूंघर–बार तेरा

दिन निकलण तै पहलै आइये

मोटा मानू एशान तेरा

दो तोला की कण्ठी ल्यावां

ल्यावां नौलड़ हार तेरा

तेरे बारणै आवागें और मानांगें परिवार तेरा।[38]

इस प्रकार भात की यह प्रथा सामाजिक प्रतिष्ठा भाई–बहन के आपसी रिश्तों की परवाह पर आधारित है। प्रस्तुत गीत में बहन अपनी गलती पर

---

[38] मनीषा देवी, ग्राम भागेश्वरी जिला भिवानी

पछतावा करती है। भाई खुशी–खुशी भात भरने को तैयार हो जाता है। इस प्रकार ये लोकगीत अपने समाज, संस्कृति तथा युग का बोध करवाते हैं। भाती आने के बाद विवाह की रस्मे शुरू होती है–

भाण बुलावै बीर नै, रै मेरी सुण कै जाइये

खीर चूरमा चूर द्यूँ रै बीरा खा कै जाइये

तेरा भाणजा लाडला रे, इका ब्याह रचाइये

ब्याह रचावै माई अर बाप रे हम तो भात भरांगे

मंदिर शिवाले मान कै, ए तेरे गाम मैं बड़ांगे।

झोटा खागड़ मान कै, ए तेरी गाल मैं बड़ांगे

दोरानी, जेठानी मान कै, ए तेरै पाटड़ै चढ़ांगे

अपना बहनोई मान कै, ए पंचांग देवांगे

नोट आशर्फी घाल कै, हे थाली ठाड्डी भरांगे।[39]

प्रस्तुत गीत में बहन अपने भाई को बुलवाकर कहती है कि भाई मेरी बात को ध्यान से सुनना। दूसरा तेरे लिए मैंने खीर चूरमा बनाया है। वह खाकर जाना। इस गीत में बहन–भाई से अपने लड़के की शादी का जिक्र करती है। उसके उत्तर में भाई हरियाणवी लोक संस्कृति के रिश्ते नाते–मान का सुंदर चित्रण करता है। भात का मान और सगे–संबंधियों, गांव वाले, पशु, मंदिर शिवालय सब का जिक्र प्रस्तुत गीत में देखने को मिलता है।

घुड़चढ़ी गीत :–

[39] सुदेश रानी, ग्राम लावन जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

घुड़चढ़ी की परम्परा हरियाणा में महत्वपूर्ण परम्पराओं में एक है। इस अवसर पर नायन पूरे मोहल्ले में घुड़चढ़ी का बुलावा देती है तथा सभी मोहल्ले की औरतें एकत्रित होकर घुड़चढ़ी में शामिल होती हैं। दूल्हे के सिर पर सेहरा बांधकर घोड़ी पर बैठाकर गांव में घुमाकर उसे गांव के मंदिर में ले जाया जाता है। सभी औरतें उसके पीछे–पीछे गीत गाकर चलती रहती है और दूल्हे के आगे बाजा बजता हुआ चलता है। इस अवसर पर सगे संबंधी दूल्हे की घोड़ी के आगे लोक नृत्य भी प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन समय में वर की घोड़ी को सजाया जाता था। हमारे लोकगीतों में घोड़ी की प्रशंसा के अनेक गीत प्रचलित है। घोड़ी की सजावट से संबंधित लोकगीत इस प्रकार है–

(1) बन्ने तेरी घोड़ी सजी दरवाजे खड़ी

तेरे दादा हजारी ने मोल लेई,

दादी रानी पहनावै मोतियन की लड़ी

बन्ने तेरी घोड़ी सजी दरवाजे खड़ी

तेरे ताऊ हजारी ने मोल लेई,

ताई रानी पहनावै मोतियन की लड़ी

बन्ने तेरी घोड़ी सजी दरवाजे खड़ी

तेरे चाचा हजारी ने मोल लई,

चाची राणी पहनावै मोतियन की लड़ी

बन्ने तेरी घोड़ी सजी दरवाजे खड़ी

तेरी मामा हजारी ने मोल लई,

मामी राणी पहनावै मोतियन की लड़ी

बन्ने तेरी घोड़ी सजी दरवाजे खड़ी

तेरे भाई हजारी ने मोल लई

भाभी रानी पहनावै मोतियन की लड़ी

बन्ने तेरी घोड़ी सजी दरवाजे खड़ी।[40]

(2) घोड़ी बड़ी दूर से आई जिस पर चढ़ा न उतरा जाए

बन्ने क दादा गोदी ले चढ़ावै

बन्ना रपट रपट के जाए बन्ना फिसल फिसल के जाए

घोड़ी बड़ी दूर से आई जिस पर चढ़ा न उतरा जाए

बन्ने के ताऊ गोदी ले चढ़ावै,

बन्ना रपट रपट के पाए

बन्ना फिसल फिसल के जाए

घोड़ी बड़ी दूर से आई जिस पर चढ़ा न उतरा जाए

बन्ने के चाचा गोदी के चढ़ावै,

बन्ना रपट रपट के जाए

बन्ना फिसल फिसल के जाए

घोड़ी बड़ी दूर से आई जिस पर चढ़ा न उतरा जाए।

[40] यूट्यूव चैनल हेमा के लोकगीत, घोड़ी गीत–2

उपरोक्त प्रस्तुत लोकगीतों में बन्ने के दरवाजे पर सजी संवरी घोड़ी का वर्णन किया गया है। उस समय घोड़ी का कितना मूल्य था। उसकी महत्ता एवं आर्थिक सम्पन्नता का परिचय इस लोकगीत में दिया गया है। प्राचीन समय में घोड़ो की साज–सज्जा आकर्षण का केन्द्र होती थी आर्थिक दृष्टि में सम्पन्न व्यक्ति इस समारोह के लिए घोड़ी को खरीद लेते थे। क्योंकि उस समय घोड़ा आवागमन के लिए उपयोगी थी। उस समय घोड़ों का मूल्य अत्यधिक होता था आज भी घोड़ी रखना सम्पन्नता एवं शौक का प्रतीक है। लेकिन आधुनिक युग में मोटर कार की अधिकता के कारण घोड़ी का महत्व कम हो गया है।

बारात चढ़ना :–

हरियाणवी परम्पराओं में बारात चढ़ते समय महिलाओं द्वारा गीत गाए जाते हैं। पहले बारात में महिलाओं का जाना वर्जित था लेकिन आजकल के दौर में महिलाएँ बारात की शोभा मानी जाती है। बारात में चढ़ते समय वर की मां द्वारा स्तनपान कराने की परम्परा निभाई जाती है। इस प्रथा से संबंधित लोकगीत इस प्रकार है–

दूध की धार मारूं,

माता नै कदे तू गुमानी भूल न जाईए

याद दिलाऊ सूं अक आवेगी

इब नई बहू रानी बेटा भूल ना जाईए

भाई का सुखी हो शरीर, जुग–जुग जीवो मेरा वीर

याद दिलाऊ सूं अक मां जाई,

की या मैं निभानी बीरा भूल ना जाईए।[41]

इस गीत में निहित अर्थ स्नेह और वात्सल्य के उस असीम सागर की अनुभूति प्रदान करता है। इस गीत के माध्यम से मॉ स्मरण करा रही है कि बेटे तुझे मैंने दूध पिलाया है। इसकी लाज रखना ऐसा कोई काम मत करना जिससे मेरे दूध लजा जाए। मां अपने बेटे को याद दिलाती है नई बहू आने पर मां को मत भूल जाना। उच्च गुणों वाले दूध को पिलाकर स्वस्थ्य शरीर तथा लम्बे जीवन की कामना करती है।

नौ दश मास रे बेटा गर्भ में राख्या

मायड़ का नीरणा ले चला

अपनी मायड़ नै मैं,

बांदी भी ल्या दूं बड़े साजन की धीवड़ी

तेरे तो होणे मैं रे भतिजा,

सतिये घरे थे बुआ का नीरणा ले चला

अपनी बुआ नै मैं तीवल चीतवा दूं,

एक सती एक रेशमी

तै तो रे बीरा,

गोद खिलाया बहना का नीरणा ले चला

अपनी बहना नै मैं हार धड़ा दूं,

---

[41] गरपाई देवी, जिला चरखी दादरी हरियाणा

तीवल चीता दूॅ रेशमी

काना म ती हद बणे लाडला खुब लपेटा जी सुत

धन तेरी मां की कोख नै जिन चंचल जनमा जी पूत

ये आज दिन नित नया जी राज

बारात चढ़ने से पहले दूल्हे पक्ष में घुड़चढ़ी की रस्म निभाई जाती है। गांव के मंदिर में अपने देवी देवता धोकने जाते है। इस रस्म को करते समय बहन आरती करती है। दुल्हा घोड़ी पर चढ़कर मंदिर में जाता है। महिलाऍ गीत गाते हुए पीछे–पीछे चलती है। बहन चावल, राई उठाकर वर के ऊपर से फेकती हुए चलती है।

प्रस्तुत गीत में मां अपने बेटे को उसके गर्भ और जन्म के महतो का फ्रिक करत है। बेटा प्रत्युतर में अपनी मां उसकी सेवा का वादा करता है। इसी प्रकार बुआ अपने भतिजे के बचपन की शैतिनयॉ बताती है। भतिजा भी अपनी बुआ को नई साड़ी दिवाने को कहता है। बहन अपने भाई को बचपन से किस प्रकार लाड–प्यार से खिलाती थी। आज के दिन को याद करी है और कहती है कि जिस मां ने तुझे जन्म दिया उसकी कोख धन्य है।

चंदा पांच पचंदा रे बीरा घोड़ी चढ़ै

घोड़ी कै लागै आने, जान चढ़ै तेरे बाने

घोड़ी कै लागै आबु जान चढ़ तरे बाबुल

चंदा पांच पचंदा रे बीरा घोड़ी चढ़ै

घोड़ी के लागै आंचे, जान चढ़ै तेरे ताऊ चाचे

घोड़ी के लागै हीरे जन चढ़ै तेरे नीरे

चंदा पांच पंचदा, रे बीरा घोड़ी चढ़ै

घोड़ी कै लागै होजे, जान चढ़ै तेरे भांजे

घोड़ी कै लागै आम्मे जान चढ़ै तेरे मामे

चंदा पांच पचंदा रे बीरा घोड़ी चढ़ै

घोड़ी कै लागै इसै जान चढ़ै तेरे फूफे जी जे

घोड़ी कै लागै नारै जान चढ़ै तेरे नाने

चंदा पांच पचंदा रे बीरा घोड़ी चढ़ै।

प्रस्तुत गीत गुढ़चढ़ी के अवसर पर महिलाओं द्वारा समावेस स्वर में गाया जाता है। घुड़चढ़ी के अवसर पर बच्चे, बुढ़े, पुरुष, औरतें सभी नाचते हुए खुशी व्यक्त करते हैं। इस गीत की प्रथम पंक्ति में बहन अपने भाई चंदा के समान तलना करती है। इस प्रकार आज परिवार के अन्य सदस्यों, रिस्ते, नातो बाबुल, चाचा, ताऊ, भाई, भांजे, मामा, फुफै, जीजे का जिक्र करते हुए हरियाणवी संस्कृति का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करता गीत महिलाओं द्वारा गाया गया है।

खोड़िया गीत :–

खोड़िया हंसी–ठिठोली का एक माध्यम है। यह रिवाज हरियाणा में लड़के की शादी के अवसर पर बारात जाने के बाद घर की महिलाओं द्वारा निभाया जाता है। यह एक प्रकार की लघु नाटिका है। जो विवाह की नकली रस्मों पर आधारित होती है। इसमें पुरुषों का अभिनय भी महिलाओं द्वारा पुरुषों के कपड़े पहनकर उनके जैसा हुलिया बनाकर निभाया जाता है। महिलाए पुरुष

परिधान धोती, कुरता, खंडवा पहन नकली मूंछे लगाकर हाथ में डोगा लेकर घर के बुजुर्गों की नकल उतारती है।

खोड़िया एक प्रकार की नाट्य कृति है। जिसमें गीत, नृत्य के साथ हंसी ठिठोली का माहौल होता है। महिलाएँ विवाह की रस्मों में नकल स्वरूप नाटक करती है। दूल्हा–दुल्हन, बाराती, पण्डित, वरमाला, फेरे, देव पूजा आदि सबकी नकल की जाती है।

इस प्रथा को ज्यादातर विवाहित महिलाएँ ही सम्मलित होती है। प्राचीन समय में महिलाएँ बारात की रस्मों में शामिल नहीं हो सकती की इसलिए उन्हें काल्पनिक बारात और शादी की रस्मों को खोड़िये के माध्यम से निभाती है।

खोड़िये का वर्णन करना मुश्किल है। यह आन द स्पाट प्रदर्शन की तरह होता है। इसमें पारम्परिक भूमिकाओं की नकल होती है। इसका परिदृश्य विस्तृत है चूड़ी वाले भूमिका निभाते हुए महिलाएँ गीत गाती हैं–

बोल्या र मणियार, लाला मणियार

रामकिसन की पौल्या बोल्यो र मणियार

बहु सुदेश पैहरव बैठी र चूड़ो लाला मणियार

बोल्या र मणियार, लाला मणियार।[42]

इस प्रकार इस गीत में अलग नाम के साथ दोहराया जाता है।

खोड़िये में लोक संस्कृति की सम्पूर्ण झलक मिलती है। जिन्हें महिलाएँ हंसी–ठहाकों के साथ सम्पन्न करती है एक और रिवाज मटके में बोलना भी इस अवसर पर किया जाने वाला नाट्य गीत है–

---

[42] रामकला, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

हे, री मॉ,

हॉ बेटा

कै तो मेरा ब्याह कर दे

नहीं तो राकेश की बहु न ले भाग जाऊॅगा

वा तो खर्चिली घणी र तेरी उसकी नाय बनै

हे, री मॉ

हॉ बेटा

कै तो मेरा ब्याह कर दे

नहीं तो मैं मोनू की बहू न लेकै भाग जाऊॅगा

वा तो विदेश में रह तेरी बैकी नाय बणै।''[43]

इस प्रकार खोड़िया नाट्य हरियाणवी लोक संस्कृति में एक मनोरंजनात्मक प्रथा है। जिसमें हंसी–खुशी के माहौल में तीक्ष्ण व्यंग्यों का प्रयोग किया जाता है। जिसका उद्देश्य मात्र अबाधित तमाशा ही होता है। इसकी शुरूआत नकली शादी, वरमाला व फेरों से होती है। इस अवसर पर महिलाऍ देवी–देवताओं के नाम उच्चरित करती हैं–

सूर्यो देवता,

चंद्रमा देवता

रूद्रो देवता

---

[43] कमला देवी, रामकला, सपना–महेन्द्रगढ़ हरियाणा

बासो देवता

मारूतो देवता

श्री नन्दी सुमर कै सुमरू देव गणेश

श्री राम के ब्याह में गणपत लियो बुलाय

आस्थ वचन।''

\+ + +

धन पये धारे साठा न

धन पाये धारे जुजमाना न

रूल ले पाण्डे रूल तु गाय र बाछो खोल दे।[44]

इस प्रकार इस लघु नाटिका में फेरे करवाए जाते हैं।

कन्या पक्ष के गीत :–

वर और वधू पक्ष के कुछ लोकगीत समान होते हैं। जबकि कुछ लोकगीतों में अंतर होता है। जब बारात वधू पक्ष के घर पहॅुचती है तो नाई बारात के पहुचने की सूचना वधू पक्ष को देता है कि बारात कहा पर ठहरानी है? पहले बारात बांगों एवं धर्मशालाओं में ठहराई जाती थी। बारात ठहरने की बाद दूल्हे को देखने के लिए वधू पक्ष की औरतें आती थीं। उनके साथ दुल्हन एवं उसकी सखियाँ भी देखने के लिए आती थी। इस अवसर पर यह लोकगीत गाया जाता है–

लाडो पूछे दादी में ओ दादी

[44] रामकला, महेन्द्रगढ़ हरियाणा

मैं किस मिस देखन जाऊॅ

रंगीले आ उतरे बागा मं

हाथ टोकरिया फूलो की

मालन बनकर जा बन्नी

रंगीले आ उतरे बागा में

काची–काची कलियॉ तोंडू थी बागा मं

मैं उलझ पड़ी घूंघट मैं मुखड़ा देख गये बागा मं

बोले–बतलाये गये बागों में

हमारी सावै चढ़ी बन्नी के नजर लगाये गए बांगा

हमारी तेल चढ़ी बन्नी के नजर लगाय गए बागा मं

लाडो पूछे मम्मी में ओ मम्मी मैं किस–मिस देखन जाऊ

रंगीले आ उतरे नगरा में

हाथ डलिया बासन की कहारन बनकर जा बन्नी,

रंगीले आ उतरे नगरा मं

काचे–काचे बर्तन बताऊ थी नगरा मै मं

मैं उलझ पड़ी घूंघट मं

मुखड़ा देख गये नगरा मं

बोल–बतलाये गये नगरा मं

हमारी सावै चढ़ी बन्नी के नजर लगाय गये नगरा मं

हमारी तेल चढ़ी बन्नी के नजर लगाय गये नगरा मं।

प्रस्तुत लोकगीत में बन्नी अपने दादी मां से अपने वर को देखने की उत्सुकता व्यक्त करती है। उस समय नाई और ब्राह्मणों द्वारा ही वर को खोजा जाता था जबकि लड़की के पिता व परिवार के अन्य सदस्य वर को जब शादी में आने के समय ही देखते थे। घर की औंरते व लड़कियाँ भी जब बारात आ जाती थी तब ही वर को देखती थी। उस समय बारात बागो में गांव के पास ही रोक दी जाती थी लेकिन आजकल वर को लड़की व लड़की के परिवार के सदस्यों द्वारा पहले ही देख लिया जाता है और बारात को स्कूलों या धर्मशालाओं में रोका जाता है। प्राचीन काल के बारात बागो में ठहराई जाती थी वधू अपने वर को देखने की उत्सुकता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। कन्या द्वारा वर को छिपकर देखना तथा अपने हाथों में फूलों की डालिया लेकर जाना। साथ ही कन्या को नजर लगने का डर भी उसके मन में है। जिससे कन्या की सुन्दरता का आभास मिलता है तथा रूढ़िवादिता भी झलकती है। वर को रंगीला कह कर अधीर प्रेमी को चित्रित किया गया है। उस समय बारात कई दिनों तक ठहरती थी। दो–तीन दिन तक बारात का अतिथि सत्कार किया जाता था। खाने पीने की व्यवस्था लड़की के परिवार के सदस्य करते थे। लेकिन आजकल बारात दो या चार घण्टे ही रूकती है। इससे आर्थिक लाभ तो होता ही है। और साथ ही शादी की सारी रस्मे जल्दी ही सम्पन्न हो जाती है।

तोरण चटकाना :–

विवाह के अवसर पर दूल्हा जब दुल्हन के घर के प्रवेश द्वार पर पहॅुचता है तो वहाँ प्रवेश द्वार पर एक तोरण लगाया जाता है। यह लकड़ी का बनाया जाता है। उस पर पक्षी बने होते है इसके पीछे एक रहस्यमयी कहानी दंतकथा

बतायी जाती है कि प्राचीन समय में एक राक्षस होने का रूप धारण करके वधू के घर के दरवाजे पर बैठा रहता था और जब दूल्हा घर में प्रवेश करता है तो राक्षस उस दूल्हे के शरीर में प्रवेश कर जाता था तथा दुल्हन को परेशान करता था एक बार एक राजकुमार विवाह के अवसर पर जब दुल्हन के घर पहुॅचता है तो द्वार पर उसे तोता दिखाई देता है वह उसे अपनी तलवार के प्रवाह से मार देता है। और राजकुमार तथा उसकी दुल्हन सुख–शांति से दाम्पत्य जीवन का सुख भोगते हैं। तभी से यह परम्परा के रूप में निभाई जा रही है। प्राचीन समय में तोरण बनाने का कार्य गांव के खाती द्वारा सम्पन्न किया जाता या परन्तु आधुनिकता के चलते रेडीमेड तोरण बाजार में उपलब्ध है। उन पर गणेश जी की फोटो बनी हुई होती है। तथा दूल्हा अपनी तलवार से उस पर बार करता है जो हमारी हिन्दू संस्कृति के लिए निदंनीय है।

फेरा गीत :–

हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों में विवाह संस्कार सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इस संस्कार से वर व वधू अपने गृहस्थ आश्रम में बंधते हैं और अपने परिवार का संचालन करते हैं। इस संस्कार को सभी लोग पंडित से सलाह लेकर निश्चित शुभ मुहूर्त में वैदिक मंत्रों द्वारा अग्नि को साक्षी मानकर समाज को साक्षी मानकर सभी के सामने प्रतिज्ञा करते हुए सात फेरों की रस्म को पूर्ण करता है। सर्वप्रथम वर को अकेले ही फेरों की वेदी पर बिठाया जाता है उसके बाद कन्या को फेरो पर बुलाया जाता है। दुल्हन का स्थान दूल्हे के दाहिनी तरफ होता है। दुल्हन के बैठने के बाद पंडित मंत्र उच्चारण करता है और दूल्हे से वचन भर वासारा हे जब दुल्हा दुल्हन वचनों को स्वीकार करता है तब दुल्हन की मांग भरने के लिए कहा जाता है। दूल्हे द्वारा सभी वचनों को स्वीकार करने के बाद दुल्हन, दूल्हे के बाई तरफ पालि के रूप में आकर बेद जाती है। उससे पहले वह एक लड़की के रूप में होती है। जब वह पत्नी के रूप में दूल्हे के पास बैठती है। तो दुल्हा भी अपने वचन दुल्हन के सामने

रखता है। तब दुल्हन भी उन सभी वचनों की स्वीकार करती है। इस अवसर पर पिता अपनी बेटी को सदा के लिए कन्यादान के रूप में दूसरे के हाथ में सौप देता है। लड़की पिता के घर की कुछ दिन की मेहमान होती है। इस अवसर पर लड़की का भाई वर वधू दोनों के हाथों में खील देता है जो अग्नि को समर्पित की जाती थी। खील शुभ संस्कार माना गया है। इस प्रकार स्त्रियॉ फेरो के गीत गाती है जो इस प्रकार है–

ले मेरी लाडो पहला फेरा दादा तेरी जड़ मै

ले मेरी लाडो दूजा फेरा ताऊ तेरी जड़ मैं

तेरी ए सुगंध लाडो चढ़ी ए गगन मैं

बंदड़े की होम कराई लाडो दिन मैं

आगे आगे पिया तेरे शुभ की घड़ मैं

बटेगी मिठाई सुसरे की नगरी मैं

ले मेरी लाडो तीजा फेरा, पापा जी की जड़ मैं

ले मेरी लाडो चौथा फेरा चाचा जी की जड़ मैं

तेरी ए सुगंध लाडो चढ़ी ए गगन मैं

बंदड़े की होम कराई लाडो दिन मैं

बांटेगी मिठाई जेठे की नगरी मैं

ले मेरी लाडो छठा फेरा, भाई की ए जड़ मैं

ले मेरी लाडो सातमा फेरा, मामा की ए जड़ मैं

आगै–आगै पिया तेरे शुभ की घड़ी मैं

बांटेगी मिठाई देवर की नगरी मैं

बांटेगी मिठाई कण्ठा की नगरी मैं।[45]

हिन्दू धर्मों में सबसे बड़ा दान कन्यादान कहा गया है। कोई भी व्यक्ति कितनी ही धन दौलत दान करे जब तक कन्यादान न किया हो तब तक उसका दान नगण्य रहता है। जिस घर में कन्या का जन्म हुआ है वह घर भाग्यशाली है। जब एक पिता अपनी कन्या का पालन–पोषण कर कन्यादान करता है। तब वह अंदर ही अंदर गम से आप्लवित हो उठता है। संसार का सर्वश्रेष्ठ दान कन्यादान है। जब मां अपने जिगर के टुकड़े को अपने से अलग करती है तो उसकी वेदना हृदयगम होती है। इसलिए समाज में कन्या को पराया धन समझा जाता है। लेकिन ये सोच गलत है कन्या दो घरो का दीपक है जो उन्हें प्रकाशवान बनाती है। समाज में कुछ बुराईयॉ भी है जो कन्या के साथ दहेज की मांग करते हैं दहेज के कारण ही माता–पिता कन्या को बोझ समझने लगे हैं। लेकिन आजकल शिक्षित वर्ग इस बुराई का विरोध करता है और कहता है कि कन्या दान से बड़ा कोई दहेज नहीं है।

विदाई गीत :–

विदाई के समय माता–पिता व सभी परिवार के सदस्यों का धैर्य टूट जाता है। और विदा का क्षण हर्ष विषाद का मिश्रित काल है। एक तरफ तो माता–पिता बेटी का विवाह सम्पन्न होने में खुश है तथा दूसरी तरफ उनका वियोग हृदय कचोटता है। जब लड़की की शादी सम्पन्न होती है तो माता–पिता को प्रसन्नता होती है। लेकिन जब लड़की अपने घर में विदा होकर दुल्हन बनकर अपने साजन के घर जाती है तो माता–पिता की आंखों में बहते मौन आसू उनकी विरह वेदना को और ज्यादा भावुक कर देते हैं। क्योंकि माता–पिता

[45] नीशू देवी, ग्राम भगड़ाना महेन्द्रगढ़ हरियाणा

अपने जिगर के टुकड़े को किसी अन्य के सुपुर्द करते हैं तो वह क्षण चट्टानों को भी रूला देने वाला होता है। जबकि इंसान की क्या औकात है कन्या और उसके परिवार के व्यक्तियों का संयम तो टूट ही जाता है मां की मार्मिक वेदना का वर्णन करना तो असंभव है। विदाई की बेला के गीत इतने करूणामय होते हैं कि अश्रुधारा स्वतः ही प्रवाहित होने लगती है विदाई का गीत इस प्रकार है–

लाडो रौवे मत ना दिल तौड़े मत ना

तुझे जाना है ससुराल रे अब छोड़ लड़कपन पीहर का– 2

तुझे सास मिले, तुझे ससुर मिले, तुझे ननद मिलेगी कमाल रे

अब छोड़ लड़कपन पीहर का– 2

लाडो रौवे मत ना दिल तोकै मत ना

तुझे जाना है ससुराल रे अब छोड़ लड़कपन पीहर का

तुझे जेठ मिले, तुझे जैठनी मिले, तुझे देवर मिले गोपाल रे

अब छोड़ लड़कपन पीहर का

लाडो रौवे मत न दिल तौड़े मत ना

तुझे जाना है ससुराल रे अब छोड़ लड़कपन पीहर का।[46]

इस प्रकार प्रस्तुत गीत के माध्यम से कन्या की मां कन्या को समझाते हुए कहती हैं कि अब रोकर अपने मन को उदास मत करो आज तो तुम्हे ससुराल जाना ही है आज मायके की अठ यहॉ की खेलकूद शरारतों को तुम्हे छोड़कर एक नए परिवार में जाना है और वहाँ एक अलग रूप में ढलना है मॉ

[46] ग्यारसी देवी, जिला महेन्द्रगढ़, हरियाणा

समझाने का प्रयास करती हैं कि वहाँ तुझे सास–ससुर, ननद, जेठ–जेठानी मिलेगे और कृष्ण कन्हैया गोपाल के रूप में देवर मिलेगा उन सब के बीच तुझे रहना है। अपने लड़कपन को यही छोड़कर अपने ससुराल आ जाना है।

(2) अपने खान दान की आन भूल ना जाना बेटी

तू साजन के घर जा री उड़े–छोटी, बड़ी सारी

उनका करना सम्मान ना भूल जाना बेटी

अपने खान दान की आन का भूल जाना बेटी

जो समधी कहवाया मेरा, को धर्म पिता स तेरा

उसकी पगड़ी का रखणा ख्याल, ना भूल जाना बेटी

अपने खान दान की आन ना भूल जाना बेटी

तेरी सासू लाड़–लड़ावै, तेरी जड़ में बैठ बतलावै

उसका रखणा आदर मान का कूल जाना बेटी

अपने खान दान की आन ना भूल जाना बेटी

तेरा साजन रह अकड़ में बतलाइये बैठ तू जड़ में

हे इज्जत का रखणा ख्याल ना भूल जाना बेटी

अपने खान दान की आन ना भूल जाना बेटी

कदे रूस घरा मत आइए, अपने भाई न बुलवाइये

हे भाई की झुकाइये ना नाड़, ना भूल जाना बेटी

अपने खान दान की आन ना भूल जाना बेटी

ना मां का दूध लजाइये ना बाप का नाम डूबोइये

हे इस कुल की रखणा लाज ना भूल जाना बेटी

अपने खान दान की आन न भूल जाना बेटी।[47]

(3) हे मां जाई कर दी विदाई, कहै तेरा भाई, लिये ना बुराई

कदे बनकै खुशी तू घर में म्हारे भी आई

इस आंगन मैं तू लाडो खेली खाई, रीत बनाई, बेटी हो पराई

रसम निभाई पर जावै ना भुलाई कदै

हे मा जाई, कर दी विदाई, कहै तेरा भाई, लिये ना बुराई कदै

जुण सै घर में आज तू जा स ब्याही, बनकै रहिये बेबे सदा लिछमी बाई

हानी मन चाही कर दे तबाही, करै जो समाई वा खुवै ना लुगाई कदे

हे या जाई, कर दी विदाई, कहै तेरा भाई, लिये ना बुराई कदै

रखीये तू सास नणद की गेली नरमाई,

दौराणी जिठाणी तै करिये ना लड़ाई

ज्यादा चतुराई तनै जै दिखाई,

---

[47] उर्मिला शर्मा, गांव झगडोली, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

ओ रे आननाई बची ना बचै कदे

हे या जाई, कर दी विदाई, कहै तेरा भाई, लिये ना बुराई कदे।[48]

(4) जीजी पट्टी का पढ़णा ए छोड़ दे

जीजी जाओ जीजा जी के साथ

बहाण चाली सासरै।

जीजी सुसरा कै स्यामी मत बोलिए

जीजी सुसरा धर्म का ए बाप

शर्म वै की कीजिए।

जीजी सासू कै स्यामी मत बोलिए

जीजी सास धर्म की ए माय

हुक्म मत टालिए।

जीजी देवर–जेठ सब एक सै

जीजी कितनी ही पड़ जाओ भीड़

घूंघट मत खोलिए।

जीजी जीजा के स्यामी मत बोलिए

जीजी पचा मैं पकड़ा मैं हाथ

---

[48] उर्मिला शर्मा, गांव झगडोली, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

ल्याज बैकी राखिए।[49]

प्रस्तुत लोकगीत में यह संदेश दिया गया हैं कि जब लड़की की विदाई होती है तब लड़की को छोड़ने के लिए चाची–ताई एवं पास पड़ोस की औरतें जाती हैं तो विभिन्न उपदेशात्मक गीतों के माध्यम से उस समझाती है कि हमने तो तुम्हें पाल–पोसकर शादी करके भेज दिया है। इसलिए आज के बाद तुम अपनी ससुराल को ही अपना घर समझना एवं वहाँ रहने वाले सभी सदस्यों का पूरा मान एवं सम्मान देना।

इस गीत में बेटी स्वयं रोती हुई बाबुल का घर छोड़कर एक नये दायित्व का निर्वाह करने के लिए नई राह पर चल देती है। कन्या के माता–पिता बहिन–भाई का संयम तो टूट ही जाता है। मॉ की मार्मिक वेदना का वर्णन करना तो असम्भव है। इस लोकगीत में कन्या अपने पिता से रोक लेने की विनती करती हुई कहती हैं–

मैं तो गुड़िया भूली हो बाबल तेरे आले मैं

म्हारी पोती खेलै हे 'धीयड'[50] घर जा अपणे

सारा पनघट सूना ही बाबल तेरी धीय बिना

म्हारै 'बहुअड'[51] भर ले हे धीयड़ घर जा अपणे

मैं तो गुड़िया ......।[52]

प्राचीन समय से ही यह परम्परा चली आ रही है कि हमारा समाज लड़की को पराया धन समझता है। वर्तमान काल में भारतीय समाज में नारी को प्रत्येक क्षेत्र में बराबर का अधिकार दिया है। पुत्र–पुत्री दोनों समान है परन्तु

---

[49] रामकला देवी, गांव मुड़िया खेड़ा, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा
[50] धीयड़–बेटी
[51] बुअड़–पुत्रवधु (बहु)
[52] सरिता देवी, गांव दोगड़ा अहिर, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

फिर भी कहीं न कहीं 'लड़की पराया धन है', वाली कहावत चरितार्थ होती प्रतीत हो ही जाती है। विवाह पूर्व कन्या पर पूर्णतः अधिकार रखने वाले माता–पिता अपनी पुत्री के जीवन से सभी अधिकार खो देती है। कन्या की विदाई को करूणामय बना देता है।

प्रस्तुत गीत के माध्यम से कन्या अपने द्वारा किए गए कार्यों का बखान कर अपने पिता के समझ विनती के रूप में कहती है कि मैं अपनी गुड़िया यहॉ भूल रही हूँ अर्थात् अपने बचपन के खेल–खिलौने एवं अपनी यादों को यहॉ छोड़कर जा रही हूँ। इस पर पिता अपने हृदय पर पत्थर रखकर जबाव देते है कि हे बेटी तुम अपने घर जाओ उन गुड़ियों से मेरी पोतियॉ खेल लेगी। कन्या फिर एक बार हिम्मत करके अपने द्वारा किये गए घर के कार्यों के बारे में कहती है कि मेरे जाने के बाद आपके गृह कार्य कौन करेगा। तब पिता जी कहते हैं कि यही संसार की परम्परा है। बेटियॉ विवाह कर दूसरे घर जाती है और दूसरों की बेटियॉ बहू बनकर हमारे घर आती हैं। बेटियों द्वारा किए जाने वाले गृह कार्य बहुएॅ सम्भालती है। यही उनका अपना घर बन जाता है। इस लोकगीत में स्पष्ट होता है कि दुल्हन को 'डोली' में बैठाया जाता था। साथ ही बेलगाड़ी भी जाती थी जिसमें उपहार स्वरूप दी गई वस्तुएॅ होती थी। आज के युग में दुल्हन मोटरकार में विदा होती है। परिवर्तित युग में ये सभी धाराणाएॅ बदल चुकी है। लोकगीत भी इसी के अनुसार बदलते हैं परन्तु फिर भी प्राचीन लोकगीत अपनी एक विशेष भावना लिए हुए हैं।

बेटी की विदाई पर घर का कोना–कोना रोने लगता है फिर मां का हृदय तो ओर भी कोमल होता है। और मां की बेटी मां के कलेजे का टुकड़ा होती है, उसकी विदाई का ख्याल मन में आने पर ही जिस मां की आंखे नम हो जाती है। उस हृदय सिहर उठता है उस बेटी की विदाई पर तो मां की आंखों से आंसू नहीं सूखते। क्योंकि बेटी के जाने में उसका घर सूना हो जाएगा घर सूना होने के साथ ही एक अनजाना डर भी हृदय पर हावी होता है कि उसकी बेटी

का आने वाला जीवन कैसा होगा, इसलिए बहन अपने भाई से सबको समझाने के लिए कहती हैं–

रे बीरा एक बै 'घेरा'[53] मैं जाइए

रे बाबल की धीर बंधाइए

रै उसनै रो रो सुजा ली आंख

बेटी मेरी तड़कै डिगर जागी

रे बीरा एक बै सावा मैं जाइए

रे मायड़ की धीर बंधाइए

रे उसने रो–रो सुजा ली आंख।[54]

प्रस्तुत लोकगीत में बेटी की विदाई के समय महिलाएँ भीगी आंखों से गाती है। कन्या विदाई का समय बड़ी भावुक स्थिति के लिए हुए होता है। माता–पिता भाई–भाभी बहन व परिवार के अन्य सदस्य सभी नम आंखों से कन्या की विदाई करते हैं बेटी अपने भाई से सबको बारी–बारी धैर्य बंधाने के लिए कहती हैं। भाभी को भी ननद के जाने का दुःख होता है। उसे अपनी ननद की जुदाई का गम नहीं बल्कि उसके द्वारा किए जाने वाले गृहकार्य का स्वयं पर बोझ पड़ने का दुःख होता है।

वधू आगमन गीत :–

कन्या की विदाई के बाद कन्या पक्ष की रस्में लगभग समाप्त हो जाती है परन्तु वर पक्ष की रस्में अभी चलती रहती है। घर में वधू आगमन की प्रतीक्षा

---

[53] घेरा– पशु बांधने की जगह

[54] कौशल्या देवी, गांव दोगड़ा अहिर, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

पूरा परिवार बड़े उल्लास, बड़े चाव के साथ करता है। वर पक्ष की महिलाएँ बड़ी उत्सुकता के साथ बारात लौटने तथा साथ वधू को लेकर आने की प्रतीक्षा करती है। नव वधू को देखने की आकांक्षा हर पल तीव्र होती जाती है। बारात वापस आने पर जो व्यक्ति सबसे पहले आता है उसे बेग के रूप में रूपये व मिठाई दी जाती है। बारात आगमन की सूचना पाते ही घर के सदस्य खुशी में झूम उठते हैं घर का प्रत्येक सदस्य विशेषकर महिलाए जो बारात में नहीं जाती वह वधू की एक झलक देखने के लिए उत्सुक होती है। नववधू के स्वागत की तैयारियॉ होने लगती है। घर की महिलाएँ वधू को डोली से उतारती है नववधू के सिर पर पानी का लोटा रखा जाता है तब वह नए घर में प्रवेश करती है तो अनाज से भरा हुआ लोटा नववधू के पैरों से स्पर्श करवाया जाता है। फिर बहु और बेटे का बहन द्वारा आरता किया जाता है और बहन 'बार रूकाई' में अच्छी खासी रकम मांगती है उसके बाद बहू को नापा जाता है। दूध बिलाने वाले नातने से वर व वधू को घर की चौखट पर नापा जाता है उस समय यह गीत गाया जाता है–

घोर घड़ी ए घोर घड़ी

सासू छोटी बहू बड़ी

हांए सासू सांस ले

मैं पीसूं तू छांट ले

इतनै सासड़ पानी नै जाय

इतनै बहू मलाई खाय

इतनै सासू पाणी ने जाय

इतने बहुत बिन्दोला खाय।[55]

फिर बहु की दायां पैर घर में रखवाते हुए प्रवेश करवाया जाता है और सास पहले से ही सात थाली एक लाइन में रख देती है। दूल्हे से बेत की सहायता से थालियों को अलग–अलग करवाया जाता है बहू को बिना आवाज किए हुए उन थालियों को इक्ट्ठा करने के लिए कहा जाता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि बहु बिना आवाज किए हुए उन सभी थालियों को इक्ट्ठा कर देती है, तो बहु शांत स्वभाव की मानी जाती है। इसके बाद वर व वधू को देवों के आगे बैठाया जाता है और आंखा डलवाएँ जाते हैं, तथा पूजा करवाई जाती है और मुंह मीठा करवाके थपकी देते हुए आशीष दिया जाता है, फिर बहु को एक तरफ बैठाकर घी, गुड़ तथा रूपयो की थैली में हाथ लगवाया जाता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि आज से बहु इस घर की सदस्य बन गई है। और अनाज व रूपयों पैसों की कमी ना रहे पूरा परिवार खुशहाली से जीवन व्यतीत करे। उसके बाद वधू से रूपयों की थैली में से मुट्ठी भरवाया जाता है पैसे आराता वाली को दिया जाता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि बहु कितनी समझदार है वह थैली में से थोथी मुठ्ठी भरती है अगर थोड़े से ही रूपये लाती है। क्योंकि अब से वह घर उसका है वह साड़ी देखभाल सही ढंग से करेगी। थैली में हाथ डलवाते समय यह गीत गाया जाता है–

म्हारै सासू जी लाड़ लड़ाइयो

घी–गुड़ मैं हाथ दिवाइयो

म्हारी जिठानी लाड लड़ाईयो

गुड़–घी मैं हाथ दिलाईयो

[55] कौशल्या देवी, गांव दोगड़ा अहिर, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

म्हारै 'काकस'[56] ननदल, बुआ, मामी लाड लड़ाइयो

गुड़ घी में हाथ दिवाईयो

म्हारै दादसरो सुसरो लाड लड़ाइयो

थैली में हाथ दिलवाइयो

म्हारै देवर, जेठ, ननदेऊ, मामा लाड लड़ाईयो

थैली में हाथ दिलवाईयो।[57]

इसके बाद सेढ भइए की तैयारी की जाती है। साथ ही सभी मंदिरों, देवी देवताओं, पितरों और नगर खेड़ा के दर्शन करवा कर आखा डलवाकर सभी का आशीर्वाद नव दम्पत्ति पर बना रहे इस उद्देश्य के लिए सभी के दर्शन करवाए जाते है इसके बाद फिर घर आकर कुंडे में दूध पाणी डालकर अंगूठी ढूंढ़ने की रस्म अदा की जाती है तथा विवाह के दौरान बांधे गए कांगण डोरे (धागे) खोले जाते हैं और वधू सभी का आशीर्वाद लेती है। पग पड़ाई की रस्म अदा करती है तथा सास, जिठानी, अन्य परिवार की महिलाए बहु की मुह दिखाई की रस्म अदा करती है।

वधू के आगमन के पश्चात समाज में अनेक रस्मे निभाई जाती है जिसमें रतजगे की प्रथा भी एक है। इस अवसर पर पहले देवी–देवताओं के गीत गाए जाते है तथा देवी देवताओं के गीतों के पश्चात विवाह के गीतों को गाया जाता है। वधू आगमन के पश्चात रतजगे के गीतों को गाकर विवाह के गीतों को विदा किया जाता है। रतजगा विवाह का अंतिम चरण है।

---

[56] काकस– चाची, सास

[57] मुन्नी देवी, गांव खेड़ा, जिला महेन्द्रगढ़ हरियाणा

अध्याय-४

भक्ति एवं ऋतु संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

भक्ति एवं ऋतु संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

भारत वर्ष में छह ऋतुओं एवं बारह माह का विधान है। प्रत्येक ऋतु का अपना विशेष महत्व एवं आनन्द है। ऋतु विशेष में होने वाले उत्सव, त्योहारों और मेलों से संबंधित गीतों का वर्णन लोकगीतों से संबंधित साहित्य में देखने को मिलता है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और प्रकृति के सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म परिवर्तनों का वर्णन लोकगीतों में बखूबी देखा जा सकता है। ऋतुगीतों को महावरी गीतों के नाम से भी जाना जाता है। लोकगीतों में प्रकृति के दोनों रूप देखने को मिलते हैं। ग्रामीण लोक संस्कृति में स्त्रियाँ प्रकृति के इस सूक्ष्म परिवर्तन से प्रभावित होकर अपनी हृदय की अनुभूतियों के माध्यम से ऋतु संबंधी गीतों की रचना करती हैं।

हमारे हरियाणवी समाज में अनेक ऋतुओं के गीत अवसरानुसार गाए जाते हैं जैसे– सावन के महीने में वर्षा ऋतु के गीत, तीज त्योहारों से संबंधित गीत, होली, बसंत, सावन आदि गीत भी विशेष अवसरों के अनुसार गाए जाते हैं।

वर्षा ऋतु संबंधी लोकगीत :–

वर्षा ऋतु या सावन का महीना लोकगीतों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह महीना हृदय में उल्लास एवं उमंग भर देता है। पर्यावरण में चारों ओर का वातावरण हरा–भरा होता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषकर इस सावन माह का विशेष महत्व होता है। वृक्षों पर झूले डाल दिये जाते हैं। यह कार्य घर के बड़ों द्वारा पूर्ण किया जाता है। सावन के आगमन पर स्त्रियाँ विभिन्न लोकगीतों के माध्यम से इस माह का सत्कार करती हैं।

''झूला पड़ा कदंब की डार

झूले राधा प्यारी नार

काहे ना लगा है हिंडोर रामा, झूला–झूला

झूला पड़ा कदंब की डार।

सावन के गीत :–

हरियाणवी लोक संस्कृति में सावन मास महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सावन मास में तीज का त्योहार हरियाणा में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर युवतियाँ एवं महिलाएँ साज श्रृंगार करती हैं। वे अपने हाथों और पैरों पर मेहंदी लगाती है। माता–पिता अपनी विवाहिता बेटी के ससुराल में वस्त्र, मिठाई एवं श्रृंगार सामग्री भेजते हैं। सावन के महीने में आने वाले तीज के त्योहार पर बेटियों की अपने पिता के घर आने की परम्परा है। तीज के पर्व पर ग्रामीण क्षेत्रों में मेले लगते हैं। पेड़ों पर झूले डाले जाते हैं। झूला–झूलते समय तीज पर्व व सावन माह के गीत गाए जाते हैं। इस ऋतु में श्रृंगार रस के लोकगीत, जिनमें संयोग तथा वियोग दोनों प्रकार का वर्णन देखने को मिलता है, गाए जाते हैं–

''आया सामण का महीना

सजना की याद आवै री

याद आवै री पल–पल।''

हरियाणा में ज्यादातर युवा फौज में नौकरी करते हैं। उन फौजी वीरों का अपनी पत्नियों से लम्बे समय बाद मिलन होता है। सावन माह में विरह की पीड़ा बढ़ जाती है। उनके पति सावन माह में घर नहीं आ पाते हैं, उसी विरह में वे गीत गाती हैं–

''हे सामण का महीना मेघा रिमझिम बरसै,

मन नै समझाऊँ तो बी बैरी जेवण तरसै,

तीजां के दिनां की तो थी आस बड़ी भारी

ऐसे मैं भी न आए मैं पड़ी दुखां की मारी।

\+ + +

सामण का महीना मेघा रिमझिम बरसै

मन नै समझाऊँ तो बी बैरी जोवण तरसै।।''

प्रस्तुत गीत के माध्यम से सावन के महीने में होने वाली रिमझिम बारिश की झड़ी का वर्णन किया गया है। सावन की रिमझिम बारिश में नायिका का मन नायक से मिलने को आतुर है। नायिका के विरह का वर्णन प्रस्तुत गीत में हुआ है। इसी प्रकार सावन के एक अन्य गीत में एक बहन अपने भाई का इंतजार करती हैं–

''आया तीजां का त्योहार

आज मेरा बीरा आवैगा

सामण में बादल छाए

सखियाँ नै झूले पाए।

मैं कर ल्यूं मौज बहार,

आज मेरा बीरा आवैगा।

\+ + +

आया तीजां का त्योहार,

आज मेरा बीरा आवैगा

मेरे मन मैं चाव घणा सै

के सुन्दर समां बणया सै

मन्नै कर दयो तुरत तैयार

आज मेरा बीरा आवैगा।''

प्रस्तुत गीत में सावन में आने वाले तीज के त्योहार का सुन्दर वर्णन हुआ है कि किस प्रकार एक बहन अपने भाई के आने का इंतजार करती है। वहीं वह अपने बचपन के दिनों को तथा पीहर को याद करती हैं कि सावन में बादल छा रहे हैं। सखियों ने पेड़ों की डाल पर झूले, डाल लिए होंगे। सावन के मेघ, बादल, झूले तथा तीजों का त्योहार एक बहन के मन को चाव से भर देता है। उसका भाई आएगा और उसे अपने साथ मायके ले जायेगा। उसी खुशी का इजहार प्रस्तुत गीत में हुआ है।

''नांनी नांनी बूंदियाँ हे सावन का मेरा झूलणा

एक झूला डाला मैंने बाबल के राज में

बाबल के राज में

संग की सहेली हे सावन का मेरा झूलणा

नांनी नांनी बूंदियाँ हे सावन का मेरा झूलणा

एक झूला डाला मैंने भैया जी के राज में

भैया जी के राज में

गोद भतीजा हे सावन का मेरा झूलणा

नांनी नांनी बूंदियाँ हे सावन का मेरा झूलणा।''[1]

सावन में चारों ओर काली घटा छाई रहती है। छोटी–छोटी बारिश की बूंदें मन में नई ताजगी और उमंग तो भरती है, साथ ही लड़की की मायके की पुरानी यादों को ताजा करती है। उसी स्मृति को प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से दर्शाया गया है। सावन माह में जो छोटी–छोटी बूंदों की बौछार होती रहती है। उसे हरियाणा में सावन की झड़ी कहा जाता है। अपने पिता के घर में उन बारिश की छोटी–छोटी बूंदों में झूला झूलने के याद करती है। साथ में सहेलियों के साथ बिताए जीवन के उन अमूल्य एहसासों को प्रस्तुत लोकगीत में प्रकट किया गया है। अपने पुराने दिनों में अपने पिता तथा भाई के राजकाज का जिक्र प्रस्तुत गीत में हुआ है। वहीं एक अन्य लोकगीत में प्रकृति के सुन्दर चित्र का अंकन करते हुए नीम के वृक्ष के कच्चे फलों को देखकर कहती हैं–

''कच्चे नीम की निम्बोली, सामण कद कद आवै रे

जीयो रे मेरी माँ का जाया, गाडे भर–भर ल्यावै रे

बाबा दूर मत ब्याहियो दादी नहीं बुलावैगी

बाब्बू दूर मत ब्याहियो अम्मा नहीं बुलावैगी

मौसा दूर मत ब्याहियो मौसी नहीं बुलावैगी

फूफा दूर मत ब्याहियो बुआ नहीं बुलावैगी

भैया दूर मत ब्याहियो भाभी नहीं बुलावैगी

---

[1] हरियाणा के लोकगीत, हरियाणा साहित्य अकादमी, डॉ. साधुराम शारदा

काच्चे नीम की निम्बोली, सामण कद कद आवै रे

जीयो रे मेरी माँ का जाया, गाडे भर भर ल्यावै रे।''[2]

प्रस्तुत गीत में नीम के कच्चे फलों को देखते हुए सावन के महीने का अनुमान लगाती है। तथा अपने भाई को याद करती है कि जब सावन का महीना आयेगा तो उसका भाई आयेगा और उसकी त्योहारी अर्थात् तीज की कोथली लायेगा। इस लोकगीत में लड़की अपने पिता, चाचा, मौसा, फूफा आदि से अपनी शादी आस–पास करने का आग्रह करती है। वह स्पष्ट रूप से कहती है कि उसकी शादी दूर मत करना उसे फिक्र है कि उसकी दादी, माता, चाची, भाभी उसे फिर नहीं बुलाएँगीं।

तीज के गीत :–

सावन मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को हरियाली तीज मनाई जाती है। हरियाली तीज में सुहागिन महिलाएँ अपने पति की लम्बी उम्र के लिए उपवास रखती है। बागों में झूले डाले जाते हैं। महिलाएँ अपनी सखी–सहेलियों के संग झूला झूलती है। तथा लोकगीतों के माध्यम से अपने भावों को व्यक्त करती हैं।

''काली घटा घिरी सामण की

पवन चले पुरवाई है– 2

री बहना– 2

तीज रंगीली आई है।

कोयल कूकै, पपीहा बोलै

---

[2] हरियाणा के लोकगीत, हरियाणा साहित्य अकादमी, डॉ. साधुराम शारदा

मनवा बैरी इत–उत डोलै

बूंद पड़ै मनचाही रे

री बहना–2

तीज रंगीली आई है

मोर नाचैं हैं बागा मैं,

हँक उठै है मेरे मन मैं

झूला देओ झुलाई रे

री बहना– 2

तीज रंगीली आई है।

हरियाणवी संस्कृति में तीज के त्योहार को लड़कियों का एक विशेष त्योहार माना जाता है। प्राचीन समय में जब मिठाई का प्रचलन कम या उस समय माताएँ अपनी बेटी के ससुराल अपने बेटे को तीज देने के लिए भेजती थी। तो मिठाई के रूप में गेहूँ के आटे की चाशनी युक्त मीठी सुहाली (पपड़ी) बनाकर देती थी। तथा साथ में कुछ वस्त्र आदि उपहार स्वरूप देती थी। इन मीठी पपड़ियों को मीठी कोथली कहा जाता था। भाई अपनी बहन के घर तीज के अवसर पर जाने के लिए अपनी माता से मीठी कोथली तैयार करने का आग्रह प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से करता है–

"मीठी तो कर दे री अम्मा कोथली

आरी जागे बाहण के देस पपहिया री बोल्या पीपली– 2

मीठी तो कर दी रै बेटा कोथली

आ रै ल्याइये बाहण नै गैल पपहिया रै बोल्या पीपली

ले ले री मौसी अपणी कोथली

मौसी कर दे बाहण मेरी त्यार पपहिया री बोल्या पीपली

मीठी तै कर दे री अम्मा कोथली

मीठी तै लागै रे बेटा कोथली

म्हारै जावै बाहण नहीं साथ पपहिया री बोल्या पीपली

तीजा का बड़ा री त्योहार सै

आ री झूल घली सै री बाग मैं पपहिाय री बोल्या पीपली

मीठी तो कर दे री अम्मा कोथली

सखियाँ तै सारी मौसी जा लई, हे री मौसी,

जागी बाहण मेरै साथ पपहिया री बोल्या पीपली

प्रस्तुत लोकगीत में भाई पहले अपनी माता से आग्रह करता है कि आप बहन के लिए मीठी कोथली तैयार कर दो मैं उसे तीज के त्योहार पर घर लाने के लिए जा रहा हूँ। माँ के पास विदा लेकर भाई अपनी बहन के घर पहुॅचता है तथा वहाँ बहन की सास को कहता है कि मौसी अपनी कोथली ले लो और मेरी बहन को मेरे साथ जाने के लिए तैयार कर दो। तीज का त्योहार एक प्रमुख त्योहार है। इस त्योहार पर लड़की अपने मायके में जाती है तथा झूला आदि झूलकर खुशियाँ मनाती है।

जब बहँ के घर से तीज के त्योहार की कोथली आती है तो घर की बुजुर्ग महिला के माध्यम से तीज के त्योहार और उसकी मिठास की कमी का वर्णन करती हैं–

''इब पहले आली तीज कोन्या

बुढ्ढी बैठी घर के बारणे

छोरी पतासे बाटण आई

कर ले दादी मुंह नै मीठा

मेरी माँ की कोथली आई।

बुढ्ढी बोली के खाऊँ

लाडो घर कीबणी या चीज कोन्या

सारे त्योहार बाजारू होग्ये

इब पहले आबी तीज कोन्या।''

प्रस्तुत पंक्तियों में आधुनिक भौतिकतावाद तथा टूटते संयुक्त परिवारों में तीज का त्योहार किस प्रकार से संस्कृति से अलग होते जा रहे हैं। जब बहँ के पीहर से तीज आती थी तो वह घर की बनी हुई मिठाईयाँ घेवर, मीठी मठ्ठी (सुहाली) आदि होते थे तथा तीज लेकर आने वाला तीज की गठरी घर की बुजुर्ग महिला को लाकर सौंपते थे। वह सभी को बांटकर देती थी लेकिन आज ये परम्परा एकल परिवारों और बाजारवाद के हाथ बिक चुकी है। आजकल बाजार से बनी मिठाईयाँ आती हैं तथा घर में बड़े बुजुर्गों का भी आदर–सम्मान घट चुका है। इसलिए प्रस्तुत पंक्तियों में ठीक कहा है कि अब

पहले आली तीज ना रही और ना ही पहले वाली घर की बनी मिठाईयाँ उसी कमी को प्रस्तुत पंक्तियों में दर्शाया गया है।

कार्तिक मास के गीत :–

हिन्दू कैलेण्डर के अनुसार कार्तिक मास का अत्यधिक महत्व है। इस माह में दीपावली, करवाचौथ, अहोई अष्टमी आदि व्रत त्योहार आते हैं। कार्तिक मास में तुलसी पूजा का विशेष महत्व होता है। कार्तिक मास का नाम भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय के नाम पर पड़ा। इस माह में व्रत, स्नान, दीपदान आदि का बहूत महत्व है। यह माह मौसम के बदलते स्वरूप को भी दर्शाता है। भारतीय संस्कृति में शरद पूर्णिमा के बाद कार्तिक मास प्रारम्भ होता है। हरियाणवी संस्कृति में कातक स्नान का विशेष महत्व है। इस माह में ब्रह्म मुहँर्त में उठकर ठण्डे पानी से सरोवर, कुएँ आदि पर स्नान करने की परम्परा है। उसे ही 'कातक न्हाण' कहा जाता है। कातक (कार्तिक) स्नान के समय महिलाओं द्वारा गाए जाने वाले लोकगीत भी अपनी अलग छटा बिखेरते हैं। जिसकी झलक प्रस्तुत गीत में देखी जा सकती है–

''आई आई छोरियाँ की डार–2

सूत्या जल जगायो हरे राम–2

उरले–परले घाट

परले घाट

खड़ी हे दो गूजरी हरे राम–2

खड़ी घमोड़ दूध–2

केले कैसी कामनी हरे राम।

आई–आई हे बहूआं की डार

सूत्या जल जगायो हरे राम।

उरले–परले घाट–2

परले घाट

खड़ी हे दो गूजरी हरे राम।

खड़ी–घमोड़ दूध

केले कैसी कामनी हरे राम।''

इस प्रकार कार्तिक स्नान के साथ लोकगीतों की धुन सुबह सवेरे महिलाओं के कण्ठ से सुनाई देती थी। बेटियाँ, बहूएँ सब इकट्ठी होकर ब्रह्म मुहँर्त में उठकर सरोवर पर गीत गाती हुई स्नान को जाती थी। तथा पूजा पाठ करती थी। कार्तिक स्नान प्रारम्भ करने से पूर्व किस प्रकार बेटियाँ, बहूएँ अपने बड़ों से आज्ञा लेती है जिसका उदाहरण प्रस्तुत गीत के माध्यम से दिया गया है–

''दूध बिलोवंती मन्नै, माता ए पूछै

कहवै तो माता कातक न्हाय ल्यू हे राम

कातक तो न्हाइए बेटी बड़ा ए धर्म सै

सासू न तील पराहियों हे राम।''

इसी प्रकार लड़कियाँ अपने पिता, चाचा, ताऊ, चाची ताई से कार्तिक स्नान की आज्ञा मांगती है तथा बदले में उनके बड़े उन्हें कातक न्हाण के लाभ दायित्व का बोध भी प्रस्तुत गीत में किया जाता है। इन पंक्तियों में बेटी किस

प्रकार अपनी माँ से कार्तिक स्नान की आज्ञा लेने जाती है तो माँ अपनी बेटी को कार्तिक स्नान का महत्व समझाती हुई कहती है। कार्तिक स्नान एक बड़ा धर्म है और कार्तिक स्नान के बाद दान–पुण्य के महत्व को भी समझाती है। माँ अपनी बेटी को अपने सास–ससुर की सेवा का संदेश भी गीत के माध्यम से देती है।

प्रस्तुत गीत कार्तिक मास के महत्व व्रत, त्योहार, स्नान दान को प्रस्तुत करता है। जो अक्सर महिलाओं द्वारा गाया जाता है–

''आया कातक मास बाहण हम न्हाण चालां

कातक के महीने म्हं बरत घणा।

पहला बरत तो आया हे बेब्बे पूनम का

सत्नारायण का बरत करां पीपल सीचां गा

आया कातक मास ......

कातक के महीने ....

दूजा बरत आया हे बेब्बे चौथ का

यो बरत सुहागण नारी पति की खुशी का

करके हार सिंगार कै तुलसा की पूजा करां

कर तुलसा की पूजा हे बेब्बे कहाणी सुणा

आया कातक ....

कातक महीने म्हं ....

तीजा बरत आया हे बेब्बे यो बेटां का

स्याऊ माँ का बरत बेब्बे सातम का

आया कातक का ....

कातक के महीने म्हं ......

बण मैं लंगड़ी गाय बाहण वांकी सेवा करां

वा दे आशीर्वाद सब फलां–फलां

आया कातक ......

कातक के महीने ....

लगंड़ी गा नै लेकै बाहण मैं स्याऊ कै गई

या सै तेरी बाहण मात मेरी कुख दिवा

काला–काला दिया मात धोला राख लिया

उनकी हो गई राड़ कि सारा भजा दिया–2

आया कातक ......

कातक के महीने ....

ले बेटे नै साथ बाहण मैं आय गई

फेर बुलाई सास बाहण बरत मनै उजण कर्‌या

इस प्रकार प्रस्तुत हरियाणवी लोकगीत में कार्तिक मास में आने वाले व्रतों का विस्तार से उल्लेख किया है तथा उन व्रतों में सुनाई जाने वाली कथा

कहानी को भी बहूत ही स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। सर्वप्रथम कार्तिक मास में पूर्णिमा का व्रत आता है। जिसमें सत्यनारायण भगवान की पूजा तथा कथा कही जाती है। कार्तिक मास की पूर्णिमा से ही इसकी शुरूआत होती है। बहूत सी महिलाएँ इस महीने में ब्रह्म मुहँर्त में उठकर स्नान करती है। जिसे 'कातक न्हाण' कहा जाता है। कार्तिक स्नान के पश्चात् तुलसी पूजन का भी विधान है। महिलाओं एवं कुंवारी कन्याओं द्वारा तुलसी की पूजा तथा कथा कही जाती है। हम सभी जानते हैं कि तुलसी एक उपयोगी पौधा है। सर्दी, जुकाम, खांसी, बुखार आदि छोटी–मोटी बीमारियों के लिए यह रामबाण औषधि है। हरियाणा प्रदेश के शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में तुलसी का अत्यधिक महत्व है। यहॉ के लोग इसे पौधे से ज्यादा पवित्र भाव के साथ देखते हैं। इसका उपयोग दैनिक जीवन के धार्मिक कर्मकाण्डों एवं पूजा आदि में किया जाता है। तुलसी पूजन के समय कार्तिक मास में महिलाएँ व कुंवारी कन्याएँ इस गीत के माध्यम से अपनी आराधना प्रस्तुत करती हैं–

''तुलसी महारानी नमो–नमो, हरि की पटरानी नमो नमो।

जो तुलसी ए सवेरै पूजै, भगवान के दरसन पावैं।।''

दूसरा व्रत करवाचौथ का आता है जो सुहागिन औरतें अपने पति की लम्बी आयु के लिए रखती हैं। लोकगीतों के माध्यम से करवाचौथ के व्रत का महत्व व तुलसी पूजा के विधान को स्पष्ट किया गया है। इसी कार्तिक मास में एक अन्य महत्वपूर्ण व्रत अहोई अष्टमी का आता है। हरियाणा में इसे सप्तमी का व्रत कहते हैं जिसे माताएँ अपने बच्चों की शुभकामना के लिए रखती हैं। स्याऊ माता की पूजा गाय के प्रतीक के रूप में की जाती है। इन व्रतों के साथ कार्तिक मास में देश भर में मनाया जाने वाला सबसे बड़ा त्योहार दीपावली भी आता है जो भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व रखता है।

बसंत ऋतु के गीत :–

बसंत ऋतु भारतीय संस्कृति में खुशियाँ और राहत लाने वाली ऋतु है। इस मौसम में वृक्षों पर नई कोपले आने लगती है। बसंत का आगाज प्रकृति बड़े ही मनमोहक अंदाज में करती है। नदियों की कलकल, फूलों का खिलना व फूलों की खुशबू मौसम में नया रोमांच भर देती है। सुबह सबेरे चिड़ियों की चहचहाट बसंत के आगमन पर किसान सरसों के पीले–पीले फूल खिलते व पकती फसलों को देखकर खुश होते ही बसंत ऋतुओं का राजा कहा जाता है। इस ऋतु में तापमान भी सम रहता है। यह ऋतु सुंदर और आकर्षक होती है। रंग–बिरंगी तितलियाँ भंवरे, मधुमक्खियाँ, फूलों व कलियों के आसपास मंडराती है। इसी माह में बसंत पंचमी का त्योहार मनाया जाता है। माघ महीने के शुक्ल पक्ष की पंचमी को बसंत पंचमी का पावन त्योहार मनाया जाता है। बसंत पंचमी को देवी सरस्वती की पूजा अर्चना की जाती है। बसंत पंचमी के आगमन से किस प्रकार सबका मन हर्षाने लगता है। प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से दर्शाया गया है–

''या बसंत पंचमी आई हे

या सबके मन को भायी हे–2

चमक उठी फूलां की क्यारी

कोयल बोलै मीठी बाणी–2

हरे–हरे खेत लहराए हे

या बसंत पंचमी आई हे–2

या सबके मन ....

सिरसम पीले–पीले फूलां पै आई हे–2

गेहुॅआ की हे बाल लहराई हे

सबका जिया हर्षाया हे या बसंत पंचमी आई हे

या बसंत पंचमी ....

या बके मन ....।''

इस प्रकार बसंत ऋतु में चारो ओर खुशनुमा माहौल होता है। फसलें खेतों में लहलहाती हैं। बागों में हरियाली छाई रहती है। कोयल मीठे बोल बोलती है। तितलियाँ फूलों पर मडराती हैं, अर्थात् मनुष्य प्रकृति सब बहूत ही हर्षोल्लास के साथ बसंत पंचमी का अभिनंदन करते हैं। इस पर एक हरियाणवी लोकगीत जो स्त्रियाँ सरसों की फसल पर पीले–पीले फूलों को देख हर्षाते हुए गाती हैं–

''बसंत पंचमी आई हे सखी

सिरसम तोड़ै अंगड़ाई हे सखी–2

पीले–पीले फूल सिरसम के

गल मिल रे सै जई बरसम कै

पशु छिक–छिक पर जुगाली हे सखी–2

बसंत पंचमी आई हे सखी–2

सिरसम तोड़े अंगड़ाई हे सखी

फूल–फूल पै तितली डोलै

बागा कै मैं कोयल बोलैं

मीठी–मीठी तान सुणावै–2

जणो ब्याह मैं गावैं लुगाई हे सखी

बसंत पंचमी ....

सिरसम तोड़ै ....

फूलां का खुशबू पै भंवरा डोलै

मोर पपीहा बागा मैं बोलै–2

हरियाली चौगरदे छाई हे सखी

बसंत पंचमी आई हे सखी

सिरसम तोड़ै ....

गेहूँ के खेत मैं आरी बाली

नाचां खुशी मैं बजावां ताली–2

अन्नदाता कै लक्ष्मी आई हे सखी

बसंत पंचमी ....

सिरसम तोड़ ....

बसंत पंचमी का शुभ दिन आया

माँ शारदे न जन्म था पाया

केलापति न गीत बनाया

सब सखियाँ न मिलकर गाया

सब मिलकर देवां बधाई हे सखी

बसंत पंचमी .....।''

प्रस्तुत गीत के माध्यम से हरियाणवी भाषा और संस्कृति की झलक मिलती है कि किस प्रकार बसंत ऋतु और बसंत पंचमी का नाच–गाने के साथ स्वागत करते हैं। बसंत पंचमी के शुभ दिन माँ शारदे के जन्मोत्सव को सब मिलकर खेत खलिहान, बाग बगीचों में प्रकृति के साथ लोकगीत तथा लोकनृत्य के साथ आनन्दित होकर मनाते हैं। चारों ओर खुशी का वातावरण बसंत पंचमी पर छाया रहता है। अन्नदाता अर्थात् किसान माँ भारती का बड़ा बेटा इस ऋतु में अत्यंत खुशी मनाता है। उसके खेतों में फसल लहलहाती है। वह उसके पकने का उत्सव मनाता है। उसके खेतों में खूब हरियाली घास चारे के रूप में उपलब्ध रहती है। जिससे पशु भी तृप्त रहते हैं।

फागुन के गीत :–

भारत वर्ष में फागुन महीने का अपना विशेष महत्व है। फागुन में उत्साह उमंग, हंसी–ठिठौली का रंग जन–जन पर चढ़ने लगता है। महिलाएँ लोकगीतों को गाते हुए घर के कामों को निबटाने के बाद रात में इकट्ठी होती है तथा नाच–गाकर, खेल–तमाशे कर होली के खेल खेलती है तथा फागुन के गीत गाती है। पहले फागुन के महीने में बड़े बुजुर्गों की चौपाल भी देर रात तक चलती थी। हुक्के के साथ हंसी–ठिठौली का रंग बिरंगा माहौल बना रहता था। फागुन माह में होली के त्योहार पर होली के गीत–संगीत का स्वर पंद्रह–बीस दिन पहले ही सुनाई देने लगता था। परन्तु आज अत्याधुनिक युग में यह सब समाप्त हो गया है। वर्तमान समय सोशल मीडिया, टी.वी. आदि में सिमटकर रह गया है। अब ना वह फाग रहा और ना होली का पहले जैसा चाव रहा। वर्तमान मोबाइल संस्कृति के कारण त्योहार भी डिजिटल होते जा रहे हैं।

भारतीय लोक में जो सांस्कृतिक धरोहर है उसका नमूना हरियावणी लोकगीत में देख सकते हैं। फाग की एक झलक प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से देखी जा सकती है। जिसमें एक स्त्री अपने पति से आने का वादा लेती है–

''इबकै पक्कम आइए फागण मास मैं चमन

होली खेलां चंदा के परकास मैं चमन

चैत मैं चिन्ता न चित्त खाया चूट कै

लाग्या जब बैसाख बैरी मर जाऊँ विष घोट कै

इबकै पक्कम आइए फागण मास मैं चमन

होली खेलां चंदा के परकास मैं चमन

छावैं थी घटा ए बैरण साढ़ बरसया टूट कै

मैं बारिस में भीजी तेरी तलास मैं चमन

तेरा नाम रटूं सूं साँस–साँस मैं चमन

इबकै पक्कम आइए फागण मास मैं चमन

होली खेलां चंदा के परकास मैं चमन

सामण मैं सुहालियां की भर–भर कै पिटारी चाल्ली

बहँ अर बेटियाँ की कोथली सिंधारी चाल्ली

झूलण खातर पींग पाटड़ी लुगाईयां की लारी चाल्ली

चमन बिन झुलावै कौण मेरे दिल पै आरी चाल्ली

तीजा न बी ना झूली इस आस मैं चमन

जोबन मेरा एकला तेरी प्यास मैं चमन

इबकै पक्कम आइए फागण मास मैं चमन

होली खेलां चंदा के परकास मैं चमन

बैरी बणया भादवा तू ना दिख्या भाई रोई के

आसोज मास बीत गया सारे महीने सोई के

दसहरे की रामलीला हमनै रोटी पोई कै

दीवाली की दीपमाला लीलो नै संजोई सै

मगसर पौ भी बीत गया इस ख्याल मैं चमन

नागण सी नाचूँ सूं हरि घास मैं चमन

इबकै पक्कम आइए फागण मास मैं चमन

होली खेलां चंदा के परकास मैं चमन

माह के महीने पाला पड़ता मरगी जड़ाई मैं

मुंह ढक कै न रोऊँ सूं मैं एकली रजाई मैं

फागण मैं भी ना आया तो मर ज्यांगी हरजाई मैं

होली मंगलै जब चाल्लै मेरे साथ मैं चमन

जीवन भर रहूँगी तेरी दास मैं चमन

इबकै पक्कम आइए फागण मास मैं चमन

होली खेला चंदा के परकास मैं चमन।''

इस प्रकार प्रस्तुत गीत में नायिका फागुन और होली के त्योहार के इंतजार के साथ प्रियतम के आने की गुहार करती हैं। होली के खेल जो रात में खेले जाते थे उनका जिक्र भी गीत में आया है। 'होली खेलां चदां के प्रकाश मैं' में प्रियतम के आने की चिन्ता को भी चैत महीने के माध्यम से दर्शाया गया है तथा फागुन में पक्का आने को कहती है। इसी प्रकार सभी महीनों की विशेषताओं के साथ विरह को चित्रित करती हैं।

फाल्गुन माह न केवल स्त्री–पुरुषों के लिए खुशहाली की बहार होती है। बच्चे, बूढ़े सभी को अपने रंग में रंगकर एक मस्ती भरा माहौल पैदा करता है। जिसका स्पष्ट उदाहरण एक अन्य लोकगीत में देखा जा सकता है–

''काच्ची इमली गदराई सामण मैं–2

बुढ्ढी ए लुगाई मस्ताई फागण मैं–2

कहियो ए उस ससुर मेरे न

बिना धाली ले जा फागण मैं

काच्ची इमली गदराई सामण मैं–2

बुढ्ढी ए लुगाई मस्ताई फागण मैं–2

कहियों हे उस जेठ मेरे न

बिना घाली ले जा फागण मैं

कहियो हे उस देवर मेरे न

बिन मुकलावा ले जा फागण मैं

काच्ची इमली गदराई सामण मैं–2

बुढ्ढी ए लुगाई मस्ताई फागण मैं–2

कहियो हे उस भावज मेरी न

बिन धाली ले जा फागण मैं

काच्ची इमली गदराई सामण मैं–2

बुढ्ढी ए लुगाई मस्ताई फागण मैं–2

कहियो हे उस गौरी मेरी न

पांच बरस गम खावै पीहरे मैं

काच्ची इमली गदराई सामण मैं

बुढ्ढी ए लुगाई मस्ताई फागण मैं।''

फाल्गुन के मस्त महीने के भारतीय संस्कृति में एक से एक लोकगीत है। ये लोकगीत गांव–गांव की मिट्टी में रचे बसे हैं। साथ ही होली के गीत भी इसी तरह घुले मिले हैं जिस प्रकार से दूध में मक्खन मिला रहता है। इसका उदाहरण इस हरियाणवी लोकगीत में देखा जा सकता है–

''फागण का मस्त महीना हे सखी

होली खेलां गालां मैं।

बूढ़े–बूढ़ी मस्ताई हे सखी

होली खेलैं गालां मैं।।

नान्हे बालक बच्चे आवैं

भर–भर कै पिचकारी ल्यावैं

लेके लाल गुलाल उड़ातै हे सखी

होली खेलैं गालां मैं

फागण का मस्त महीना हे सखी

होली खेलै गाला मैं।''

फाल्गुन मास में होली उत्सव को आज भी बहूत हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। फाल्गुन माह अत्यंत उत्तम माना जाता है। इस महीने सभी देवी–देवता मनुष्य जीवन में समृद्धि प्रदान करते हैं। फाल्गुन माह में भगवान श्री कृष्ण की आराधना का विशेष महत्व है। महाशिवरात्रि का पर्व भी इसी मास में आता है। इस माह में भक्ति का विशेष लाभ मिलता है। यह रंगों भरा माह फाल्गुन बच्चे, बूढ़े, जवान सभी में हर्षोल्लास भर देता है।

प्रस्तुत गीतों में भी इस माह के महत्व तथा होली के पावन त्योहार का वर्णन किया गया है कि फागुन में गली–गली में होली का शोर होता है। छोटे बच्चे पिचकारी और गुलाल से होली के खेलों में नई उमंग और मस्ती भर देते हैं।

अध्याय-५

रोजमर्रा के कार्यों एवं व्रत संबंधी हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

रोजमर्रा के कार्यों एवं व्रत संबंधी हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

किसी भी प्रदेश के लोगों का जीवन वहाँ की बोली में पहनावे में तथा रीति–रिवाजों में झलकता है। हरियाणा ग्राम्य परिवेश का प्रदेश है। यहाँ अधिकतम लोग खेती–बाड़ी पर निर्भर करते हैं। हरियाणवी लोगों का विश्वास शुद्ध–सात्विक, आहार–विहार अर्थात् देसी भोजन पर अधिक है। यहाँ के जनमानस की मूल चेतना को निम्नलिखित पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है–

''भूरी भैंस का दूधा, वा राबड़ घोलना।

इतना दे करतार, तो फिर ना बोल्ना।।''[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में हरियाणवी लोगो के देसी खान–पान तथा आहार–व्यवहार का उल्लेख किया गया है कि ईश्वर अगर उन्हें दूध–दही से ओत–प्रोत रखे तो अन्य कोई वस्तु मांगने की आवश्यकता नहीं है। हरियाणा प्रदेश आहार–विहार के साथ ही वेशभूषा और पहनावे भी सादा है। यहाँ पुरुष लोग खादी का धोती–कुर्ता, सिर पर सफेद साफा, जिसे यहाँ कई जगहों पर खंड्वा भी कहा जाता है और पैरों में चमचमाती जूती पहनते है। हरियाणवी स्त्रियों का मुख्य पहनावा दामण–कुर्ता, चूंदड़ी, सलवार–कमीज, साड़ी, लहंगा–लुगड़ी, पीला पोमचा आदि निराली छटा बिखेरते हैं।

पहनावे के अलावा हरियाणवी स्त्रियों के आभूषण गजब हैं, जिन्हें विशेष अवसरों, शादी–विवाह, व्रत, त्योहारों आदि पर पहनती है। जिनमें प्रमुख है, टीका, सिंगार, पट्टी, हंसली, बोरला, लौंग, नथ, टोपस, झुमके, बूजली, कर्णफूल,

---

[1] डॉ. रामपत यादव, हरियाणवी भक्ति साहित्य, पृष्ठ 14

अंगूठी, तागड़ी, कड़े–छैलकड़े, नेवरी, पाजेब, चुटकी आदि आभूषण धारण करती है।

हरियाणवी स्त्री और पुरुष दोनों की ही दिनचर्या बेहद परिश्रमपूर्ण होती है। कृषि आधारित प्रदेश होने के कारण खेती–किसानी से जुड़े कार्यों में स्त्री–पुरुषों को बराबर मेहनत करनी पड़ती है। इसी परिश्रम और मेहनत से यहॉ के जनमानस के स्वभाव व व्यक्तित्व में सीधापन, खरापन, सच्चाई तथा सहज जीवंतता की भावना परिलक्षित होती है। लोकगीत सीधे तौर पर लोक मानस का संगीत है। वे पारम्परिक लोकगीत जो गांव की मिट्टी और परिश्रम में रचे जाते हैं, दैनिक दिनचर्या से संबंधित लोकगीत होते हैं।

गांव के सामान्य लोगों की अपनी बोली मे रचे–बसे लोकगीत, जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों तथा अवसरों पर गाये जाते हैं। ध्यान से देखा और जाना जाये तो हरियाणा प्रदेश की दैनिक जीवन से जुड़े गीत, कथाएँ, कहानियाँ वहाँ के लोगों की मूल चेतना तथा परिश्रम को ठीक–ठीक व्यक्त करती प्रतीत होती है। परिश्रम हरियाणवी जनमानस का गहना है, जैसे एक कहावत को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है, जो गुड़ खाए वही कान छिदावे।'' अर्थात् जो आनंद लेता हो वही परिश्रम भी करे और कष्ट भी उठाए अभिप्राय यह कि सुख चाहने वाले को संघर्ष की करना पड़ेगा। लोकगीत अधिकाशः रूप से स्त्रियों द्वारा अपने दैनिक जीवन के संघर्ष को उत्साह और आनंद के भावों को अभिव्यक्त किए गए हैं।

दिनचर्या संबंधी लोकगीतों को विभिन्न भागों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे प्रभाती गीत, चक्की गीत, चरखा कातने संबंधित लोकगीत, शृंगार गीत तथा खेतों में काम करते हुए किसानों से संबंधित कृषि गीत हरियाणवी जन चेतना में प्रमुख रूप से प्रचलित है।

प्रभाती गीत :–

प्रभाती गीत या भजन दैनिक लोक जीवन के सर्वाधिक निकट है। प्रभाती सूर्योदय से कुछ समय पहले गाया जाने वाला गीत होता है। इसे जागरण गीत भी कहते हैं। आज की भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में हमारे पास प्रभाती गाने सुनने का समय नहीं है। इसलिए वर्तमान समय में प्रभाती उपेक्षित हो गई है। यहॉ यह कहना गलत नहीं होगा कि आज हम प्रभाती के महत्व को ही नहीं जानते। आजकल के मशीनी और तकनीकी युग में मनुष्य आंखे खोलते ही 'टेक्नोलॉजी' की दुनियाँ में खो जाता है। तथा फेसबुक, व्हाट्सअप, ट्विटर, इन्सटाग्राम जैसे टेक्निकल ग्रहों की सैर करता है। लेकिन पहले मनुष्य प्रभाती के रूप में संगीत की मधुर ध्वनि के साथ आंखे खोलता था तथा जनमानस से तथा प्रकृति से जुड़ाव महसूस करता था। प्रभाती हर क्षेत्र की सांझी बपौती होती है। जिसे अपनी बोली में गाया जाता है। प्रभाती गाने और सुनने वाले दोनों ही निहाल हो जाते है। पहले हमारी दादी–माएँ घर के काम करते हुए प्रभाती गाती थी तथा बच्चों को उसी प्रकार प्रभाती गाकर नींद से जगाती थी, जिस प्रकार लोरी गाकर सुलाती थी। बच्चे प्रभाती के मधुर संगीत के साथ हंसते–खिल खिलाते आंखे खोलते थे जैसे–

''मीठी–मीठी लोरी गाकर, मम्मी तुझे सुलाती है।

प्रभाती की टेर लगाकर दादी तुझे जगाती है।''

इस प्रकार सुबह–सवेरे गाए जाने वाले गीतों को प्रभाती कहा जाता है। इन गीतों के माध्यम से ज्यादातर ईश्वर स्मरण किया जाता है। संत कबीरदास का प्रसिद्ध प्रभाती भजन–

''मेरी सूरत सुहागिनी जाग री ।। टेक।।

क्या तुम सोवत मोर–नींद में, उठ के भजनियाँ में लग री।

चित से शब्द सूनो सरवन दे, उठत मधुर धुन राग री।।

दोउ कर जोड़ि शीश चरनन दे, भक्ति अचल वर मांग री।

कहै कबीर सुनो भाई साधो, जगत पीठ दै भाग री।।"[2]

प्रस्तुत प्रभाती प्रातः काल समय नींद से जगने तथा जगकर प्रभु स्मरण करने की प्रेरणा दी गई है।

हरियाणवी स्त्रियों एवं पुरुषों के जीवन में आराम न के बराबर है। वे दिन भर एक के बाद एक परिश्रम के कार्य करते रहते हैं। जिनसे उनकी दिनचर्या बेहद संघर्ष भरी होती है। दिन भर कामों में व्यस्त रहने के कारण उन्हें प्रभु, भक्ति, भजन आदि का समय निकाल पाना असम्भव होता है। सूर्य के उगने से पूर्व उनके दैनिक कार्य शुरू हो जाते हैं। पुरुष लोग अपने खेतों की ओर निकल पड़ते हैं और स्त्रियाँ अपने घर तथा पशुओं के कार्यों में लग जाती हैं। स्त्रियाँ घर परिवार के कार्यों के साथ दिन भर खेतों में भी पुरुषों के साथ कंधे–से–कंधा मिलाकर काम करती हैं। पहले के समय में स्त्रियाँ सब काम हाथ से ही करती थी जैसे चक्की चलाकर आटा पीसना, पनघट से पानी भरकर लाना, चरखा कातना, धागा बुनना, पशुओं के चारा काटना, कपड़े धोना, बुनाई, कढ़ाई फुलकारी आदि सभी काम बड़े ही परिश्रम के साथ लोकगीतों को गाती हुई करती थी। वर्तमान समय में अवश्य मशीनों ने स्त्रियों के कामों सहायता प्रदान की है जिससे उन्हें थोड़े आराम के साथ बौद्धिक कार्यों में सफलता प्राप्त हुई है। पहले के समय में सूर्य उदित होने से सुबह सवेरे जब आंखे खुलती थी तो घरों में मांओं की मधुर आवाज से प्रभाती गीतों की धुन सुनाई देती थी। सूर्य आने से पहले चक्की से आटा पीसते हुए, दूध–बिलोते हुए माँ के बहूत तल्लीन मधुर स्वर, मन में उमंग के भाव पैदा करते थे। जिसका स्पष्ट उदाहरण लोक में प्रचलित प्रणाली भजन में देखा जा सकता है–

"सावरिया म्हारी प्रभाती सुण जाइयो भगवान।। टेक।।

---

[2] प्रभाती भजन, संपादक छोटेलाल दास, संतनगर वरारी, भागलपुर–3 बिहार, पृष्ठ 01

नारायण म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

ब्रह्मानन्द घर गऊ चराऊ रामा उठ सवेरे प्रभाती

सावरिया म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

ठाकुर जी म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

ब्रह्मानन्द घर दूध काढौ हो रामा उठ सवेरे प्रभाती

सावरिया म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

ब्रह्मानन्द घर खीर पकै हो उठ सवेरे प्रभाती

सावरिया म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

नारायण म्हारी प्रभाती सुण जाइयो भगवान

ब्रह्मानन्द घर विप्र जिम्मै हो रामा उठ सवेरे प्रभाती

सावरिया म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

ब्रह्मानन्द घर लिछमी बैटै हो रामा उठ सवेरे प्रभाती

सावरिया म्हारी प्रभाती सुण जाइयों भगवान

ब्रह्मानन्द घर न्याय पुराण हो रामा उठ सवेरे प्रभाती

सावरिया म्हारा बेड़ा पार लगाइयो भगवान

हो रामा उठ सवेरे प्रभाती।।''

प्रस्तुत प्रभाती गीत में सुबह सवेरे प्रभु को याद किया गया है। दिन भर दैनिक कार्यों में लगे रहने के कारण पूजा–पाठ, उपासना न कर पाने उठ सवेरे

गाय चराते, दुध दुहते खाना पकाते ईश्वर स्तुति का जिक्र किया गया है। ईश्वर को ब्रह्मानन्द स्वरूप तथा न्यायकारी होने की बात कही गई। अपने जीवन की नैया पार लगाने को प्रभु को प्रभाती सुनाई जा रही क्यों जीवन रूपी नैया को भाव सागर से पार लगाने में ईश्वर का ध्यान, नाम स्मरण का विधान है। इस प्रकार सुबह सवेरे ईश्वर स्तुती प्रभाती गीतों में की जाती है। जिनको गाने व सुनने वालों का दिन बन जाता है। अर्थात् दिन भर एक नई उमंग का भाव भरा रहता है। इसी तरह का एक ओर प्रभाती गीत लोक संस्कृति में प्रचलित है–

''उठो नै धरती माता खोलो किवाड़ी

पैर धरैगी दुनिया सारी हो सवेरा होया ...

उठो नै गंगा मैया खोलो किवाड़ी

नाहण करैगी दुनिया सारी हो सवेरा होया ...

उठो नै सूरज राजा तपो घामड़ी

नीर चढ़ावै दुनिया सारी हो सवेरा होया ...

उठो नै देवी–देवताओं खोलो किवाड़ी

धौक लगावैगी दर्शन करैगी दुनिया सारी हो सवेरा होया ...

उठो नै सीता मैया तपो ये रसोई

भोग लगावै दुनिया सारी हो सवेरा होया ...

उठो–उठो नै बेटा–पोता खोलो किवाड़ी

काम लगी स दुनिया सारी हो सवेरा होया ...

उठो–उठो नै बहूओं और बेटियों खोलो किवाड़ी

काम लगी हे या दुनिया सारी हो सवेरा होया ... ।''

प्रस्तुत प्रभाती गीत में सवेरा होने का सुन्दर चित्रण किया गया है कि किस प्रकार घर की दादी, माए सुबह–सवेरे उठकर धरती माता को नमस्कार करती हैं। सुन्दर मधुर संगीत के साथ सर्वप्रथम धरती माँ को जगाती हैं कहती हैं कि हे धरती माता आप अपनी आंखें खोलिए सुबह हो गई है अब सारी दुनिया आपके आश्रम में अपने दैनिक कार्यों को करेगी उसके बाद स्नान करने के लिए पवित्र गंगा नदी को स्मरण करती हुए जगाती है कि उठो गंगा मैया अब आपके पवित्र जल से दुनिया स्नान करेगी। स्नान आदि करने के बाद सूर्य भगवान को जल चढ़ाने के लिए गुहार लगाती है। सभी देवी–देवताओं के पूजा, आराधना करने के पश्चात् मधुर स्वर में गाते हुए अपने बेटे–पोतों, बहूओं और बेटियों को नींद से जगाती है और कहती हैं सब उठ चूके हैं और अपने कार्यों में लग चुके हैं अब तुम भी नींद से जागो व अपने–अपने कामों में लग जाओ।

इस प्रकार प्रभाती प्रातःकाल का एक मधुर संगीत है जिसे जगाने के लिए गाया जाता है। फिर वो जगना नींद से हो या अपने कर्तव्य के लिए हो। सुबह–सवेरे प्रभु स्मरण के लिए प्रभाती एक बहूत ही सुंदर एवं मधुर संगीत है। जो दिन भर मनुष्य में ऊर्जा का संचार करता है। प्रातःकाल सूर्य उदय होने से पूर्व ध्यान, स्मरण भजन का विधान वैदिक समय से रहा है। वर्तमान भाग दौड़ भरी जिन्दगी में आज के मनुष्य के पास स्वयं के लिए समय का अभाव रहता है। मशीनी युग में वह स्वयं भी एक मशीन की तरह काम करता है। जिससे उसकी दिनचर्या अस्त व्यस्त होती जा रही है।

चक्की गीत :–

हरियाणवी स्त्रियाँ दैनिक क्रियाकलाप करते समय अपने भावों को लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती रहती है। उन गीतों में स्त्रियों की

मानसिक, सामाजिक, पारिवारिक और दैनिक समस्याओं का उल्लेख करती है। हरियाणवी लोक जीवन में चक्की–चूल्हे की पुरानी परम्परा है। स्त्रियाँ सुबह–सवेरे मुहँ–अंधेरे उठकर हाथ से चलने वाली चक्की से आटा पीसती थी। चक्की की हरियाणा में अत्यधिक महिमा थी। हरियाणवी जनमानस की चेतना में चक्की को लेकर अनेक गीत रचे बसे है। लोक जीवन में चक्की के कार्य चक्र परिवर्तन का प्रतीक है। आज भले ही चक्की घर के किसी कोने में धूल फांक रही हो चक्की को लेकर एक प्रसिद्ध कहावत है–

> ''पारस नाथ तै चक्की भली, जो आव देवै पीस,
>
> फूवड़ नार तै मुरगी भली, जो अण्डे देवे बीस।''

इसी प्रकार चक्की की महिमा में पहेलियाँ भी प्रचलित है–''एक सींग की गां, जितणी खिवावै उतणा खा, इस पहेली का उत्तर भी चक्की ही है। स्त्रियों के श्रम और संघर्ष को केन्द्र में रखकर हरियाणवी संस्कृति में महिलाओं ने अनेक गीत बुने हैं। जिनके माध्यम से अपने दुःखों को अभिव्यक्त किया है। अनमेल विवाह की अभिव्यक्ति करती नवविवाहिता किस प्रकार व्यक्त करती हैं–

> ''याणे कै ब्याह दी ए, याणे कै मेरी जान
>
> मैं चक्की पीसू सू, मेरी जड़ मैं बैठ रौवै सै
>
> पिया रोवै मत ना ए, तनै दाणे दूंगी पीस कै
>
> याणे कै ब्याह दी ए, याणे कै मेरी जान।''

प्रस्तुत गीत में नवविवाहिता के अनमेल विवाह का दुःख प्रकट किया गया अपने से छोटी उम्र के पति का जिक्र करती हुई कहती कि जब मैं चक्की पर पीसणा पीसती है तो उसका पति पास बैठ कर रोता है। तो वह से बहलाती हुई कहती कि रौवै मत ना तुझे दाने पीसकर दूंगी। प्रस्तुत गीत व्यंग्यात्मक

शैली में रचा गया जो हंसी विनोद में याणे पति अर्थात् उम्र में छोटे पति का उल्लेख किया गया है–

''चाकी पै धर्या पीसणा चाकी का भर्या पाट

मेरे घर मैं जुल्मी सास जगावै आधी रात

पीसण र आई चाकी पै बैरी सांप फिरै

तै मन्नै खाले घर की राड़ मिटै

चाकी पै धर्या पीसणा चाकी का भर्या पाट

मेरे घर मैं जुल्मी जिठानी जगावै आधी रात

पीसण आई चाकी पै बैरी सांप फिरै

तैं मन्नै खाले घर की राड़ मिटै।''

प्रस्तुत गीत में घर की छोटी बहू अपनी सास और जेठानी द्वारा सुबह हाथ की चक्की से आटा पीसने के लिए जगाती है लेकिन बहू को सुबह–सवेरे जल्दी उठकर आटा पीसने का दुःख है। उसी व्यथा को गीत के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। चाकी पर पीसणा रखा है तथा चाकी के पाट भी अनाज से भरे है। इतना अधिक पीसण देख बहू को अपनी सास, जेठानी जुल्मी नजर आती है। चाकी पीसण परिश्रम का कार्य है। बहू को चक्की चलाना साँप के काटने के समान जहरीला लगता है। इसलिए गीत में कहती है–'चाकी रूपी सांप मुझे खा ले जिससे सास–बहू की लड़ाई खत्म हो जाए।' उसी प्रकार जब जेठानी उसे आटा पीसने को जगाती है। तो इसे भी वह अपने उपर होने वाला जुल्म बताती है। इसलिए घर की लड़ाई ही खत्म हो जाए अपने को सांप द्वारा खाने को कहती है। प्रातःकाल सूर्य उदय से पहले चक्की चलाना और पूरे परिवार के लिए आटा पीसना बहूत ही परिश्रम का कार्य होता था। आटा पीसते

हुए या अन्य श्रम कार्यों को करते हुए स्त्रियाँ अपने भावों को इसी प्रकार के लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती थी। आजकल तो बिजली से चलने वाली चक्की घरों तक पहुँच गई है। बहूत कम घरों में हाथ की चक्की से आटा पीसा जाता है। आधुनिकता की होड़ में बेशक चक्की पीछे छूट गई हो लेकिन आटा पीसने के साथ ही यह एक उत्तम प्रकार का व्यायाम भी है। जिससे स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है। चाकी अपने हाथ से चलाई जाती थी जिससे मोटा, महीन अपने स्वादनुसार तथा स्वास्थ्य अनुसार अनाज पीसा जा सकता था। इसी प्रकार का एक लोकगीत महीन, मोटा पीसने की व्यथा को लेकर स्त्रियाँ अक्सर विवाह–शादी में गाती है–

"गीले गीले जौ का पीसणा री

नीका पीसू उड़–उड़ जाए ...

मोटा पीसू कोई न खाए ...

चौमासा सावन आ गया री अरी मोरी मां री ...

इतना आटा मैं पीसा री जितणा नदियाँ मं रेत

चौमासा सावन आ गया री अरी मोरी मां री ...

इतनी रोटी मैं पोयी री जितणे पीपल पात री

चौमासा सावण आ गया री अरी मोरी मां री ...

इतने चावल मन्नै कुट्टे री जितने समंदर मोतियां

चौमासा सावन आ गया री अरी मोरी मां री ...

रोटी–रोटी बाट ली री रह गई रोटी एक री

छोटा देवर लाडला री वा भी ले गया खोस री

चौमासा सावन आ गया री अरी मोरी मां री ...।''

ग्रामीण स्त्रियों के जीवन में अत्याधिक क्रियाकलापों में घर केन्द्र में रहा है। घर में भी उनका अधिकतर समय चक्की–चूल्ले के इर्द–गिर्द घूमता है। भारतीय पारिवारिक परम्परा में संयुक्त परिवार परम्परा रही है। जिससे उनको अत्यधिक मेहनत करनी पड़ती थी उनकी दिनचर्या सवेरे चार बजे ही शुरू हो जाती थी। शुरूआत चक्की के माध्यम से आटा पीसने से होती थी। पूरे कुनबे का आटा पीसना कड़ी मेहनत का कार्य होता है। बारिश के मौसम में अनाज नमी पकड़ लेता है जिसको पीसना और अधिक मुश्किल होता है।

प्रस्तुत गीत में गीले अर्थात् नमी युक्त अनाज को पीसने के कठिनाई को अपनी मां से कहती है। संयुक्त परिवार में एक तो अधिक आटा पीसना पड़ता है। और रोटियाँ भी अत्याधिक बनानी पड़ती है। बेटी अपनी मां से कहती है कि हे मां मैने चौमासा में गीले अनाज को पिसणा बहूत दुःखदायी है। महीन पीसती हूँ तो उड़–उड़ जाता है मोटा पीसती हूँ तो परिवार जन मोटा अनाज नहीं खाते हैं। आगे कहती है कि मैंने पूरे परिवार के लिए इतना आटा पीसा जितना नदियों में रेत है और रोटियाँ इतनी अधिक बनाई जितने पीपल के वृक्ष के पत्ते होते हैं। उसके बाद भी मेरे लिए एक ही रोटी बची वो भी लाडले देवर ने ले ली। संयुक्त परिवार में अक्सर ऐसा हो जाता था कि घर की स्त्री जो पूरे परिवार को पीसकर पकाकर खिलाती थी। वह स्वयं भूखी रह जाती थी। उसी व्यथा को प्रस्तुत लोकगीत में अभिव्यक्त किया गया है।

संयुक्त परिवारों में बहूत से लोगों के लिए अनाज पीसा जाता था लेकिन आधुनिक युग में सब कार्य मशीनों से होने शुरू हो गए हैं। परिवार भी एकाकी होते जा रहे हैं जिससे परिवारों में काम को लेकर जो तकरार होती है। उसका

सुंदर चित्रण लोकगीतों में बखूबी देखा जा सकता है उसी प्रकार का एक लोकगीत जिसमें चक्की पीसणे को लेकर हुई तकरार को देखा जा सकता है–

''गौरी र मैंने तेर तै पीसाणा

तेरा घर–घर हांडणा छुटाणा

क्यूकर पीसूं हो मेरा बालम

घर मैं तेरे चाकी ना ...

तड़कै चाकी ल्यावां गा

गौरी ए मैनें तेर तै पीसाणा ...

क्यूकर पीसूं हो मेरा बालम

घर मैं थारे दाणे ना ...

गोरी ए मैंने तेरे तै पिसाणा,

तेरा घर–घर हांडणा छुड़ाना

एकम नै मैं पीसूं कोन्या एकली मैं नार सू

दूज नै मैं पीसूं कोन्या दूज भैया दूज सै

तीन नै मैं पीसूं कोन्या तीजा का त्योहार सै

चौथ नै मैं पीसूं कोन्या चौथ करवा चौथ सै

पांचम नै मैं पीसूं कोन्या पांचा की पंचायत सै

छठ नै मैं पीसूं कोन्या छः भाईया की बाहण सू

सातम नै मैं पीसूं कोन्या सातम अहोई माता सै

आठ्म नै मैं पीसूं कोन्या अष्ठ्म की कढ़ाई सै

नौमी नै मैं पीसूं कोन्या नौमी गूगा नौमी सै

दसमी नै मैं पीसूं कोन्या दसमी का त्योहार सै

ग्यारस नै मैं पीसूं कोन्या व्यारस मरजाणा सै ...

गौरी र मेरी मरिये मतना

चाकी पे लावा पीसवाय।''

प्रस्तुत लोकगीत में एकांकी परिवार का वर्णन मिलता है। जिसमें घर के कामों को लेकर पति–पत्नी की मीठी नोक झोक का सुन्दर चित्रण किया गया है। वहीं हिन्दू रीति–रिवाजों में किन–किन विशेष अवसरों पर चक्की न पलाने की अनेक प्रथाएँ प्रचलित है। उनका जिक्र भी प्रस्तुत गीत में हुआ है जैसे तीज त्योहारों पर चक्की चलाने की मनाही होती है। विशेष तीज त्योहारों पर स्त्रियाँ दैनिक कार्यों में से कुछ कार्यों से अवकाश लेकर दूसरे महत्वपूर्ण कार्य करती थीं जैसे घर का साज, श्रृंगार तथा विशेष पकवान बनाना आदि। दूसरी ओर एकांकी परिवारों में घरेलू कामों का ज्यादातर दबाव स्त्रियों पर ही पड़ता है। उसका भी सुन्दर वर्णन गीत में हुआ है।

चक्की पीसने को लेकर परिवारों में तकरारे भी होती ही रहती थी जिसमें पति–पत्नी से भी अधिक कहा–सुनी, सास–बहूँ, देवरानी–जेठानी में भी होती है। दैनिक कार्यों को लेकर हुई ये छोटी–छोटी कहा सुनी कई बार परिवार के टूटने का कारण भी बन जाती है। कुछ उसी प्रकार की अभिव्यक्ति प्रस्तुत गीत में देखी जा सकती है–

''उठ बहँ मेरी पीस ले

यो दिन धोला लिकड़ आया हो

तन्नै के सासू पीसणा ...

मैं काच्ची नींद जगाई हो ...

सेजा पै तै बालम बोल्या सुण ले अम्मा मेरी हो

भले घरां की ब्याह कै ल्याया इब नां चालै थारी हो

भारी सी मैं झोटी ल्यूगां

छोटा बीरा ल्यूंगा पाली हो

बलध्या की मैं जोड़ी ल्यूंगा

बाबल ल्यूंगा हाली हो

भारी सी मैं चक्की ल्यूंगा थम नै ल्यूं पनहारी हो

गोबर कूड़ा थमै करोगी गरज पड़ै रह जाइयो हे ...।''

प्रस्तुत गीत में पीढ़ियों का द्वन्द्व देखा जा सकता है तथा साथ ही आधुनिकता की दौड़ में मां–बाप की मान मर्यादा पर करारा व्यंग्य किया गया है कि किस प्रकार सास द्वारा बहूँ को सवेरे उठकर दैनिक कार्यों को करने के लिए कहना परिवार टूटन का कारण बनता है। तथा लालची और बदजुवान बेटा अपनी मां को अपना आदेश सुनता हुआ कहता है कि अब हमारी चलेगी घर के सभी बढ़ियाँ सामान में से जैसे कि दूध के लिए सबसे बढ़िया भैस मैं ल्यूंगा, बैल मैं ल्यूंगा। यहॉ तक घर की चाकी भी मेरे ही हिस्से में होगी। इतना ही नहीं अपने माँ–बाप और भाई को घर के कामों को करने वाले नौकर के रूप में रखूगां। रहना हो तो रहे अन्यथा नहीं। प्रस्तुत गीत में ऐसे टूटते परिवार का

बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। जो हमें हमारे तात्कालीन समाज में होने वाले दुर्व्यवहार को स्पष्ट रूप से दिखाता है।

हरियाणवी चरखा गीत :–

चरखा धागे की बुनाई के लिए हाथ से संचालित मशीन है। चरखे को अंग्रेजी में 'स्पीनिंग व्हील' के नाम से जाना जाता है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में चरखे ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। स्वतंत्रता आंदोलन में चरखा आजादी का प्रतीक बन गया था। महात्मा गांधी ने स्वदेशी अपनाओं का नारा देकर विदेशी कपड़ों का भविष्कार किया। तब से चरखे का महत्व गांव देहात में अत्याधिक बढ़ गया।

हरियाणवी लोक जीवन में भी चरखे की परम्परा अत्याधिक पुरानी है। मानवी सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही कपड़ों की बुनाई के लिए चरखे के द्वारा धागे की बुनाई का कार्य शुरू हुआ। हिन्दी साहित्य में अमीर खुसरो की पहेलियों में चरखे का उल्लेख देखा जा सकता है–

''खीर पकाई जतन से चरखा दिया चलाय .....।''

इस प्रकार कह सकते हैं कि 13वीं सदी से चरखे का उल्लेख मिलता है। हरियाणवी लोक में बहूत से परिवारों में लड़की की विदाई के साथ दहेज में चरखा देने की परम्परा रही है। लोक जीवन में मंगसर के माह की चरखे के साथ गहन रिश्ता रहा है। मंगसर से चरखा विशेष रूप से घरो में दैनिक कार्यों का हिस्सा बन जाता है। एक जमाने में तो ऐसा कोई घर नहीं था जिसमें चरखे की घर्राहट भी सुनाई ना दे। ग्रामीण स्त्रियाँ मंगसर माह लगते ही चरखे को कातने के लिए तैयार करती। कताई का कार्य बहूत परिश्रम वाला होता था। पहले कपास की लुठाई करके उसे पिनवाया जाता था फिर पीनी हुई रूई की पूणियों से सूत कातकर धागा बुना जाता था।

इस प्रकार कताई, बुनाई का कार्य करते हुए स्त्रियाँ चरखे संबंधी लोकगीतों, लोईयों तथा बाल गीतों के माध्यम से अपने भाव अभिव्यक्त करती रहती थी। इसी प्रकार का एक बाल गीत देखा जा सकता है–

''घोड्या की काठी, जीवों म्हारे हाथी,

हाथी की सूंड, जीवों म्हारा भूंड,

भूंड की दातरी, जीवों म्हारी बांदरी

बांदरी का चरखा, जीवों म्हारे घरका

घरके का नाम, जीवों म्हारा गाम।''

प्रस्तुत बाल गीत में पशु–पक्षियों तथा जीव–जन्तुओं के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढंग से अपने परिवार और गांव के कल्याण की कामना की गई है। लोक जीवन में प्रचलित मां की लोरी में चरखे का उल्लेख मिलता है–

''लल्ला लल्ला लोरिया

मेरा तीन दिन का ललणा

दादी धोरै खेलै,

लल्ला लल्ला लोरिया

उसका चरखा दिया तोड़ ताकू दिया मोड़

लल्ला लल्ला लोरिया ...।''

चरखा बाल गीत, लोरियों के साथ लोक गीतों में भी बड़े ही दार्शनिक रूप में देखा जा सकता है–

‘‘चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...

बंद कोठड़ी मैं बैठ बनाया

हे इसमें लोहा भी ना लाया ...

चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...

जब यो चरखा ए बनकै आया

सारे कुनबे कै मन को भाया

खूब खिलाया ए खूब पिलाया

हे यो सब नै लाग्या प्यारा

हे चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...

जब चरखे में आई जवानी

खूब करी ए अपणी मनमानी

बात किसै की ए कोन्या मानी

हे ना हर मैं ए ध्यान लगाया

चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...

जब चरखे में आया बुढ़ापा

चारों खूट्टे हालण लागै

हे यो चरखा हालण लागै

हे यो चरखा घुण नै खाया

चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...

टूट गई माला उधड़ गई जतनी

हे इस ताकू न बल खाया

चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...

मूरख जाणै हे चरखा गाया

हे काया पै शबद बनाया ...

चरखे का भेद ना पाया

कारीगर नै अजब बनाया ...।''

प्रस्तुत हरियाणवी लोकगीत में चरखे की बनावट के माध्यम से मानव देह की बनावट तथा उसे बनाने वाले ईश्वर का बड़े ही दार्शनिक ढंग से उल्लेख किया गया है। चरखे को आधार बनाकर मनुष्य की चारों अवस्थाओं शिशु,

बचपन, जवानी तथा बुढ़ापे का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। ईश्वर को अजब कारीगर कहा है कि जिस प्रकार चरखे का कारीगर बड़े जतन से चरखे को बनाता है। चरखे को आधार देने के लिए ही आकार की दो लकड़ियाँ लगाई जाती है। जिन्हें पाटड़े कहा जाता है। फिर इन्हीं पाटड़ों को स्थापित करके खूंटे के माध्यम से चरखे का घेरा तैयार किया जाता है। दूसरी ओर की खूटियों में ताकू का आधार डाला जाता है। दोनों खूटों के बीच एक धूरी में लम्बी लकड़ी लगाई जाती जिसे बेलणा कहते हैं। अर्थात् बड़े ही जतन करने के पश्चात जिस प्रकार एक चरखे को बनाया जाता है। उसी प्रकार वह ईश्वर रूपी कारीगर मानव देह का निर्माण हाड़–मांस जाने कितने तरह के अस्थि पेजर लगाकर करता है। जिनका भेद पाना भी असम्भव कार्य है। साईंस ने बहूत तरक्की करने के बाद भी हम ईश्वर की महीमा से आज भी अनजान है। लोकगीत में बड़े ही तर्क पूर्ण ढंग से शब्दों के माध्यम से मनुष्य की विभिन्न अवस्थाओं में उसकी गतिविधियों का चित्रण किया गया है। सर्वप्रथम उसके बचपन का जिक्र हुआ है। जिसमें बच्चा घर में सबका प्यारा होता है। सब उसका खूब लाड़–प्यार से ख्याल रखते हैं। लेकिन फिर जवान होता है। तो अपनी मनमानी करनी शुरू कर देता है। ईश्वर की भी अवहेलना करता है। जब मनुष्य में बुढ़ापा आता है। उसके हाथ पैर भी काम नहीं करते अर्थात् अब इस अवस्था में शरीर अनेक रोगों की चपेट में आ जाता है। प्रभु की उपासना में भी उसका ढंग से ध्यान नहीं लग पाता है। इन सबका वैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत गीत में दिखाया गया है।

लोकगीतों के अलावा पहेलियों, कहावतों तथा लोककथाओं में भी चरखे का अपना विशेष महत्व रहा है। एक उदाहरण देखिए–

''दो लकड़ लकड़ मैं चाम,

चाम के मूँह मैं लोहा।

कह एक चेता कोई घोड़ा होगा?

नहीं गुरु जी उसके कान मैं जनेऊ

कह चेला कह कोई ब्राह्मण होगा?

ना वो ब्राह्मण सन्यासी

कोई बड़ा पण्डित बूझै,

बताओ महारथी।'' – (चरखा)

इस प्रकार के बूझो लोकगीत गाये लोक जीवन भी बहूत प्रचलित थे। जब भी गांव में किसी बड़े बुजुर्ग के पास बैठते थे तो ऐसे पहेली बूझो का सिलसिला शुरू हो जाता था। जो अपने आप में ज्ञानवर्धक तो ही साथ में मनोरंजन पूर्ण भी होता था। इसी प्रकार एक पहेली है जो चरखे से ही संबंधित है–

''आठ काठ का पींजरा और नौ तारों की डोर,

बीबी चाल्ली ससुराड़ मै, अब कूण कहलावै मोर।''

एक अन्य पहली ओर देखिए–

''सुक्खा डीक्खर अण्डे देवै।'' – (चरखा)

इस प्रकार चरखा बहूत अलग–अलग ढंग से लोक में गाया जाता है। एक बहूत ही प्रचलित लोकगीत जिस अक्सर गाया तो जाता है। लेकिन उसका भेद पाना बहूत ही बड़ा कार्य है। इस भजन या गीत को जानना और समझना आत्मज्ञान से अवगत होने के तुल्य अर्थात् उस ईश्वरीय चेतना को

समझ पर काम, क्रोध, मध, मोह जैसे अवगुणों से परे आत्म चेतना विकसित करने के बराबर है–

''चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

चरखा म्हारा रंग–रंगीला पूणी लाल गुलाल ...

हरि हर पूणी लाल–गुलाल

कातण वाली नार सुन्दरी लुलं लुलं घालै तार

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

वन जायो वन उपन्यो रामा बन मैं ठहरों जाए ...

हरि हर वन मैं ठहरो जाए ...

एक अचम्भों ऐसो देखो बेटी जायो बाप

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

बेटी बूझै बाप नै म्हारों अनजायौ वर हेर

हरि हर अनजायौ वर हेर

अनजायौ वर ना मिलै तो थारो म्हारो ब्याह

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

दोराणी घर मांडो रोपियो जेठाणी घर ब्याह

ननंदल चवरॉ चढ़ गई देवर फेरा खाय

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

एक अचम्भों ऐसो देखो किड़ी सासरे जाए

हरि हर कीड़ी सासरे जाए

हाथी घोड़ा लिया बगल मैं ऊँट लपेटा खाए ...

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

सासू मरजाइयो सुसरो मरजाइयो परिणयोड़ों मर जाए

मत मर जाइयो खाती को बेटो चरखे दियो बनाए

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...

चरखो–चरखो सभी कहै रामा चरखो लखौ नै जाए

हरि–हरि चरखौ लिख्यो नै जाए

चरखौ लिख्यो एक दास कबीरो आवागमन मिट जाए

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नारी ...

चरखे को भेद बता दे हे कातण वाली नार ...।''

प्रस्तुत गीत में चरखा मनुष्य का शरीर है तथा कातने वाली नार से अभिप्राय आत्मा है। इस गीत में लौकिक बिम्बो व प्रतीकों के माध्यम से उस अलौकिक ईश्वर के मिलन तथा जन्म मरण से पार पाने का भेद कहा है। आत्मा को चरखा कातने वाली नार कहा है जो सम्पूर्ण शरीर को संचालित करती है। सूत कातने की जो प्रक्रिया है। वह मनुष्य के अच्छे बुरे कर्म है। चरखे को अपने रंगरूप का कोई अभिमान नहीं रखता उसी प्रकार दार्शनिक दृष्टिकोण के आधार पर आत्मा न मरती है न जन्म लेती है। उसी प्रकार चरखे की बुनावट है वह भी वन में उत्पन्न होता है और वन में ही मिल जाता है।

मनुष्य को जब अपने अस्तित्व और अपनी आस्था को जानने की जागृति उत्पन्न होती है। तब वह ऊर्जा की उर्ध्वगामी दिशा की ओर बढ़ता है। अर्थात् अज्ञान से ज्ञान की ओर बढ़ता है। योग दर्शन के अनुसार मूलाधार से सहत्रार चक्र तक की चेतना विकसित करने का प्रयास शुरू होता है। लोक परलोक को जानने की कोशिश शुरू होती है। साधना की अवस्था पार करने के पश्चात समाधि में पहुॅच जाता है। अर्थात् आत्मा ब्रह्म तत्व में विलिन हो जाती है। इस लौकिक संसार में चिंटी जैसी तुच्छ जीव भी गर्व में जीती है। भौतिक संसार मे सभी मनुष्य भ्रम जीते रहते हैं। आगे दोरानी, जेठानी, इड़ा, पिगंला नाड़ियाँ तथा ननद को चेतना का प्रतीक और देवर को मन का प्रतीक कहा है। आगे सासू, ससूरा, ननद पणजियो सब मरो से अभिप्राय है। क्रमशः काम, मोह, क्रोध, मद अवगुणों से जुड़ा है। सर्वप्रथम काम की वजह से एक रिस्ता बनता है। वहीं आगे बच्चों से मोह का रिश्ता बन जाता है। सास–बहँ का ननद, देवर का रिश्ता आज क्रोध का बन जाता है। मद का अर्थ है नशा पैसे के नशे में अनेक बुरे कर्मों की ओर बढ़ता है। इसलिए इन चारों अवगुणों काम, क्रोध, मद, मोह को मार कर उस चरखा बनाने वाले ईश्वर को जिन्दा रहने दिया जाए। आगे गीत में कहा ही कि चरखा तो बहूत लोग गाते हैं। लेकिन ये गीत सबकी समझ में नहीं आता।

प्रस्तुत गीत में संत कबीर के द्वारा प्रयुक्त उलटबासियों की रहस्यात्मक शैली में कहा गया है। दूसरे अर्थ में योग दर्शन के गूढ़–बिम्बो और प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

हरियाणवी पनघट गीत :–

हरियाणवी संस्कृति में पनघट एक अनूठी मिशाल है। पनघन पर प्रत्येक सुबह–सायं एक आनंदमयी व उल्लासमयी त्योहार की तरह होती है। पनघट पर प्रायः महिलाएँ ही जाती थी। ग्रामीण स्त्रियाँ पनघट पर अपने विचार विनिमय करती थी। यह उनके मनोरंजन के प्रमुख स्थानों में से एक रहता था। पनघट

पर अपने सुख–दुःख के भावों को, घर–गृहस्थी की नोक–झोंक को विभिन्न गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती थी। आज के समय में पनघट का महत्व घर–घर नल लगने से खत्म हो चुका है। पुराने समय में ग्रामीण स्त्रियाँ विशेष रूप से नई–नवेली बहूएँ सज–धजकर पीतल के बंटे टोकणी सर पर रखकर पानी भरने के लिए जाती थी। हार–श्रृंगार करके जब पानी लेने पनघट पर गीत गाती हुई जाती थी। तो रास्ते से गुजरने वाले मुसाफिरों की नजर बरबस ही उनकी और आकृष्ट हो जाती है। हरियाणवी लोक संस्कृति में पनघट संबंधी बहूत से गीत प्रचलित है। जिन्हें अक्सर विवाह शादी में महिलाओं घर गाया जाता है–

''मेरा सिर पै बन्टा तोकणी

मेरा हाथ मैं नेजू डोल

मैं पतली सी कामनी ...

एक राह मुसाफिर जा रह्या

छोरी एक घूंट पानी तो पिला

मैं परदेशी दूर का ...

छोरे ना मेरी डूबै बाल्टी

छोरे ना मेरा नवै हो शरीर

मैं पतली सी कामनी ...

छोरे किसके सो थम पाहुणे

हो ... छोरे किसके सो लविहार

छोरी बाप तेरे के है पाहवणे ....

हो ... छोरी तेरे सा लणिहार ...

तू पतली सी कामनी ...

छोरे इब मेरी डूब बाल्टी ...

हो ... छोरे इब मेरा नवै हे शरीर ...

छोरी क्यूकर डूबै बाल्टी

हो छोरी क्यूकर नवै हे शरीर ...

तू पतली सी कामनी ....

छोरे डब–डब डूबे मेरी बाल्टी

हो छोरे झिल–मिल नवै हो शरीर

मैं पतली सी कामनी

मेरा सर पै बन्टा तोकणी

हो मेरा हाथ मैं नैजू ढोल

मैं पतली सी कामनी ...।''

ग्रामीण संस्कृति में पनघट पर पानी भरना महिलाओं का अनिवार्य दैनिक कार्य होता है। उसी पनघट पर पानी भरती कामिनी का जिक्र प्रस्तुत गीत में हुआ है।

लोकगीतों के माध्यम से स्त्रियाँ अपने भावों को अभिव्यक्त करती है। जिसका स्पष्ट उदाहरण पनघट संबंधी इस लोकगीत में देखा जा सकता है–

''मेरी नाजुक नरम कलाई रे ...

पनियां कैसे जाऊ?

अपने ससुर की मैं ऐसी लाडली

आंगन में कुई खुदवाई रे ...

पनियां कैसे जाऊँ ...

मेरी नाजुक नरम कलाई रे ...

अपने जेठ की मैं ऐसी लाडली

रेशम की डोर बटवाई रे ...

पनिया कैसे जाऊॅ ...

अपने देवर की ऐसी लाडली

सोने की झारी मंगवाई रे

पनिया कैसे जाऊॅ ...

मेरी नाजुक नरम कलाई रे

अपने पिया की मैं ऐसी लाडली

दो–दो पनिहारी रखवाई,

पनिया कैसे जाऊॅ?

मेरी नाजुक नरम कलाई ...

सास नणद मेरी जनम की बैरण

आंगण की कुई मुंदवाई

पनिया कैसे जाऊॅ?

मेरी नाजुक नरम कलाई

दोराणी जिठाणी मेरी जनम की बैरण

लगी पनिहारी हटवाई री

पनिया कैसे जाऊ?

मेरी नाजुक नरम कलाई ...।''

प्रस्तुत लोकगीत में स्त्री के मनोभावों एवं पारिवारिक नोक झोंक को दर्शाया गया है। एक ओर जहॉ ससुर, जेठ, देवर, नई नवेली बहँ के पक्ष में दिखाई पड़ते हैं। उसे पनघट पर जाकर पानी न भरना पड़े इसलिए घर में ही पानी का कुऑ खुदवाते हैं, हाथों में छाले न हो जाए इसके लिए रेशम की डोर बनवाते हैं। वहीं दूसरी ओर सास, ननद, जेठानी उसी नई नवेली बहँ के विपक्ष में दिखाई पड़ती है। सास घर के आंगन में खोदे कुएँ को दोबारा मिट्टी से भरवा देती है। ताकि बहँ पानी भरने पनघट पर जाए। जहॉ पति उसके लिए पनिहारिन की व्यवस्था करता है वहीं जेठानी उन पनिहारियों को हटा देती हैं।

इसी प्रकार का एक अन्य लोकगीत जिसमें स्त्री–पुरुष की सुन्दर नोक–झोक को दर्शाया गया है–

''चंद्रकला कुएँ पाणी नै गई थी

पानी आली मन्नै पाणी प्यादे, मरता फिरू तिसाया

इतनी दूर की बणी खड़ी तु किसकी जान का गाला

हो ... कै दैक्ख मेरे हाथा न हो रूप दिया बेमाता नै

हो ... जन्म दिया स मेरी माता नै

सीधी सरडक चाल्या जाईयो नाता भाई का

दुनिया मैं त खो दे तन्नै बहम् लुगाई का

कुएँ पर त चाल पड्या हो म्हारे घेर मैं आण डट्या

सोड़ सोड़िया दरी गींडवे लावै नाई का ...

दुनिया मैं त खो देगा तैन बहम लुगाई का

माँ ए मेरी तो दाल बणावै भावज मेरी मांडे पोवै

ताते पाणी की भरी बाल्टी घाल पाट्ड़ा न्हालो

सांची–सांची बता दे री माता कौन बटेऊ आग्या

हा .. वो ये स बटेऊ हे तेरी बेटी कूए पै बतलाई

हंस कर कर्या मखौल आया मेरा जमाई।''

प्रस्तुत गीत में हंसी मखौल के रूप में मुसाफिर अपनी नवविवाहिता के साथ मखौल करता है। जब वह उसे उसके मायके से लेने के लिए आता है तो वह पनघट पर पानी भरती रहती है। कुएँ पर ही उनकी मुलाकात होती है। लेकिन लड़की उसे पहचान नहीं पाती क्योंकि पुराने समय में लड़की के लिए वर ढूंढ़ने का काम ब्राह्मण, नाई द्वारा किया जाता था दूसरा घूंघट प्रथा होती

थी। जिससे अपने ही पति को पहचाने में कई दिन लग जाते थे। कुएँ पर हुई मुलाकात की मीठी नोक–झोक के बाद जब वह मुसाफिर घर पहुॅचता है तब इस बात का भेद उसकी माँ बतलाती है।

पनघट, टोकणी, बंटे को लेकर हरियाणवी लोक में बहूत से गीत प्रचलित है जैसे–

''टोकणी पीतल की पीतल की

हे भ्याणी तै मोल मंगाई

ओढ़ पैहर पाणी न गई–2

रस्ते में सुबेसिंह भाई–2

टोकणी तार दई–2

हे मन्नै दो कप चाय बनाई

टोकणी पीतल की पीतल की

म्यावी त मोल मँगाई

सास मेरी तेरा ताली–2

हे मनै दे भाईया की गाली ...

सास मेरी गाली ना दिये–2

हे मेरै एक सुबेसिंह भाई

सुबेसिंह चाल पड़्या चालते नै बीन बजाई

बीन का लहरा सुण कै–2

मेरी माता भागी आई

टोकणी पीतल की पीतल की–2

भ्याणी तै मौल मंगाई

महतारी तनै जुल्म कर्‌या

मेरी बेबे हीणे घर ब्याही

बेटा ओ म्हारा दोष नहीं तेरी बेबे हिणे घर ब्याही

नाई बाह्मणा न करी सगाई ....।''

प्रस्तुत गीत में एक बटन अपने भाई को अपने जीवन के सुख–दुःख का वर्णन करती भाई अपनी बहन के दुःखी जीवन के विषय में अपनी मां से बात करता है कि क्यों मेरी बहन का रिस्ता गरीब घर में किया। कमजोर घर में शादी करने के कारण आज वह खुश नहीं है। यो भी अपनी विवशता को प्रस्तुत गीत के माध्यम से प्रकट करती है तथा अपने बेटे को समझाती माध्यम हुई कहती है कि बेटा इसके किसी का दोष नहीं पहले नाई, ब्राह्मण बेटी के लिए घर, वर ढूंढ़ते थे। समाज में परम्परानुसार शादी विवाह का कार्य यही लोग करते थे। जिससे मां–बाप को बहूत ज्यादा जानकारी नहीं होती उसी सामाजिक रूढ़ियों के कारण तुम्हारी बहन का विवाह कमजोर परिवार में हुआ। इस प्रकार पनघट के गीत के माध्यम से एक बहन अपने भाई को अपने जीवन से परिचित कराती है।

शृंगार संबंधी हरियाणवी लोकगीत :–

श्रृंगार का वर्णन ऋग्वेद में मिलता है। श्रृंगार की परम्परा नई नहीं है। भारतीय परिपेक्ष्य में स्त्री पति एवं परिवार को अत्याधिक महत्व देती है। श्रृंगार की ये परम्परा देवलोक से चली आ रही है। दूसरा पुरुष हमेशा से ही स्त्री को श्रृंगारिक रूप में देखना चाहता है। स्त्री भी हमेशा से ही सुहाग चिन्हों को उपयोग करती आई हैं। इन सुहाग चिन्हों का विशेषज्ञों ने स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों का भी उल्लेख किया गया है। श्रृंगार रस के गीत सब के मन को गुदगुदा जाते हैं। लोकगीतों के माध्यम से ह्रदय के भावों को वाणी मिलती है। अनायास ही उपजे मन के भावों के ये गीत समूह के गीत हैं। उनमें लय है। ये प्राचीन समय से चलते आ रहे हैं। इनके मूल लेखक के बारे में जानकारी नहीं है। समाज तथा संस्कृति के साथ लोकगीतों की शब्द लय में भी बदलाव लाजमी है। लोकगीतों के माध्यम से हम एक–दूसरे से बहूत से भावों को प्रकट करने का अवसर मिलता है।

लोकगीतों में केवल भावों की अभिव्यक्ति नहीं है ये पीढ़ी–दर–पीढ़ी का संचित ज्ञान पहुँचाने का एक आसान एवं महत्वपूर्ण माध्यम है। लोकगीत हमारी सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

हरियाणा में स्त्रियों के श्रृंगार की छटा निराली है। हार–श्रृंगार उनकी वेशभूषा का अभिन्य अंग होते है। हरियाणा में स्त्रियाँ 16 श्रृंगार धारण करती हैं। जिनका वर्णन लोकगीतों में दृष्टिगोचर होता है–

''मैं तो कर सोलह श्रृंगार बेबे हे ...

पाणी की टोकणी लेय गई–2

पाछे तै बीरा आग्या बेबे हे ...

मौसी बेबे कड़ै गइ–2

कर सोलह श्रृंगार बेटा रै

पाणी की टोकणी भरण गई

तनै क्यू बदलया था बाणा बेबे हे

मौसी की जल–बुझ राख हुई

तनै तील डेठ सौ दे दी बीरा रै

क्यूकर पाटै धरी–धरी ...

तैन सोने में पीली कर दी ....

क्यूकर चमकै धरी–धरी ...

तैन बड़े अफसर कै ब्याह दी बीरा

पड़ स रहना बन–ठन क ...

मै तो कर सोलह श्रृंगार बेबे हे

पाणी की टोकणी लेण गई–गई

प्रस्तुत गीत में हरियाणवी स्त्रियों का पहनावे और आभूषणों के प्रति लगाव तथा सोलह श्रृंगार का वर्णन किया गया है। जिसमें नव विवाहित सोलह श्रृंगार करके पानी लेने पनघट पर जाती है। इसमें सास–बहू की तकरार को उल्लेखित किया गया है। बहू को साज श्रृंगार तथा वेशभूषा का अत्याधिक चाव करती है वहीं सास को बहू के साज–श्रृंगार से ईर्ष्या होती है। बहू अपने भाई तथा मायके से लायी दान, दहेज, आभूषणों को पहन ओढ़ के प्रदर्शित करती है। अगे अपने भाई की तारीफ करती हुई कहती है भाई आपने मेरे लिए बड़े अफसर के रूप में वर को चुना है इसलिए भी मुझे हैसियत के अनुसार वेशभूषा

को धारण करना पड़ता है। डॉ. देवेन्द्र कुमार 'दीपक' ने हरियाणा की वेशभूषा के विषय में लिखते हैं–

''पुरुष धोती–कुर्ता एवं पगड़ी पहनते हैं। महिलाएँ घाघरा, कुर्ती, चुनड़ी, पीलिया, पोमचा, दुकानिया, दुपट्टा, जमकर, सलवार, साड़ियाँ पहनती है। विश्नोई स्त्रियाँ बहूरंगी लहरिया धारण करती। अहीर महिला अपीन नीली कमीज और लाल ओढ़नी में सहज ही पहचानी जाती है।''

हरियाणवी स्त्रियाँ अनेक प्रकार के आभूषणों को धारण करती है। उनका उल्लेख लोकगीतों में बखुबी देखा जा सकता है–

''मेरे मन में उत्साह जाग्या हो

ल्यावे टूम बलगवा गेले मैं जाऊँगी

पाया मैं रमशौल खूब छमकाअंगी।

कहां–कंणी, हसला हंसती पहनॅूगी मैं चंदनहार।

कड़े–छैलकड़े पहनूगी मैं भरतार।

सखी सहेलियाँ बीच सान दिखाऊॅगी।

पाया मैं रमझौल खूब छमकाऊॅगी।

इस प्रकार प्रस्तुत गीत में स्त्रियों द्वज्ञरा पहने जाने वाले सब प्रकार के आभूषणों का उल्लेख किया गया है। किसी भी परिवार की सम्पन्नता प्रायः उस परिवार की स्त्रियों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले आभूषणों से आंकी जाती है। हाथों में पहने जाने वाले आभूषणों में अक्सर महिलाएँ, चूड़ियाँ, कंगन, कडूले, धन्न, मदेली, बाजूबंद, घड़ी, हथफूल आदि पहनती है। तथा पांवों में पायल, चूटकी, रमझौल, नवेली–झाझंण, ताती–पाती आदि आभूषण धारण करती है।

तागड़ी, गुच्छा, नाड़ा कमरबंध आदि आभूषण कमर में पहनती है। बुजली, झूमके, बाली, कर्णफूल कान के प्रमुख आभूषण होते हैं। मांग टीक, बोरला माके पर धारण किए जाने वाले आभूषण होते हैं। इसी प्रकार गले में हार, चैन, पतरी, ढोल, कण्ठी, गलसरी, गुलीबंद, झालरा, मटरवाला, ताबीज आदि आभूषण धारणा करती है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हरियाणा की स्त्रियों को आभूषणों के प्रति विशेष लगाव है। यहॉ स्त्रियाँ अपने शरीर पर फल–पत्ती, नाम आदि गुदवाकर अपीनप सुंदरता के चार–चांद लगवाती है। इस क्रिया को मोदना या अंग आलेखन कहा जाता है। अपने साज–श्रृंगार के लिए स्त्रियाँ अनेक तरह के आभूषणों को प्रयोग का जिक्र हरियाणवी लोकगीतों की परम्परा में खूब–रचा बसा है। जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है–

''मेरा नो ताले का पैडिल हे–हे

मेरा जेठ घड़ा कै लाया है ...

मैं ओढ़ पहर पाणी चाल्ली है ...

रस्ते मे जिठानी मिल भी हे ...

हे बेबे सांचम सांच बता दे हे

यो पैडिल किसने धड़ाया हे ...

हे बेबे झूठ कति ना बालू हे ...

मेरा जेठ घड़ा कै लाया।

हे गौरी ठखत उठै रोटी पोइये हे

मैने खा कै नौकरी पै जाणा है

हो पिया रोही उस पै पुवाइये हो

जिसकै रातौ पैडिल घड़ावै हौ

हो गौरी मूली उपर बैक्ल हौ ...

हे तेरी किसनै मार दयी अक्ल रै

रे गोरी साईकल ऊपर हैडिल रै

तेरा इतै घड़ा दू दैडिल रै

रै गोरी टैची उपर रैची रै

मेरी लगै धर्म की बेरी रै।''

प्रस्तुत गीत में रिस्तों को बड़े ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। जेठ द्वारा अपने छोटे भाई की पत्नी को उपहार स्वरूप दिया गया गले का आभूषण पर जेठानी द्वारा किया गया विरोध को दर्शाया गया है। जेठानी का पति बड़े सी हंसि विनोद पूर्ण शैली में अपनी पत्नी को समझाता है कि छोटे भाई की पत्नी धर्म की बेटी होती है। इसलिए उसको उपहार दिया गया। इस प्रकार रिस्तों की गरिमा की समझ के तौर इस लोकगीत को देखा जा सकता है।

हरियाणवी लोकगीतों में स्त्रियों के साज–शृंगार आभूषणों, वेशभूषा संबंधी असंख्य गीत प्रचलित है जैसे–

''मेरा नौ डांडी का बीजणा

झनाझन बाज बीजणा

मेरी सास कैह बहँ पीस ले

हो मेरे राजा जी हलाव हाथ छाले पड़ जा हाथ मैं

हो मेरा नौ डांडी का बीजणा

मेरी जेठानी केवै बहँ धान लै

मेरा राजा हलाव हाथ धोली होजया चूज मैं

हो मेरा ......

मेरी दोराणी कैवै जीजी गुंप ले

हो मेरे राजा हलाव हाथ ऊंगली मूंड जा चून मैं

हो मेरा ......

प्रस्तुत लोकगीत में घर के चाकी चूल्ले का उल्लेख किया गया है कि किस प्रकार नव नवेली बहू से सास, जेठानी घर के कार्यों से करने को कहती है तो पति की लाडली पत्नी को वह काम करने की मनाही करता है। नव नवेली बहू के भावों की अभिव्यक्ति प्रस्तुत जीत के हुई है। ससूर के द्वारा वाड़ाए गए आभूषण का उल्लेख भी सुंदर ढंग से किया गया है। स्त्रियों को वस्त्र, आभूषणों से अत्याधिक लगाव होता है। उस आकर्षण की परम्परा प्रस्तुत गीत में बखुबी देखी जा सकती है—

''मेरा चूंदड मैंगा दे हो ... हो ननदी के बीरा ...

तैन नू, तैन नू ढूंगे पै राखू ननदी के बीरा

मेरा बोरला घड़ा दे हो ... हो ननदी के बीरा

तैन नू, तैन नू ऑख्या पै राखू हो ननदी के बीरा

मेरा कुरता सिमा दे हो ... हो ननदी का बीरा

तैन नू, तैन नू कांदा पै राखूं हो ननदी का बीरा

मेरा झालरा घड़ा दे हो ... हो ननदी के बीरा

तैन नू, तैन नू छाठी पै राखू ... हो ननदी के बीरा

मेरा घाघड़ा सिला दे हो ... हो ननदी के बीरा

तैन नू तैन नू ढूंगे पै राक्खू हो ननदी के बीरा

मेरी पायल घड़ा दे हो ... हो ननदी के बीरा

तैन नू तैन नू ठोक्कर पै राक्खू हो ननदी के बीरा ..।''

प्रस्तुत लोकगीत में हरियाणा में प्रचलित स्त्री आभूषणों और परिधान का सून्दर चित्रण किया गया है। किस प्रकार अपने पतियों से स्त्रियाँ गीत के माध्यम से अपने लिए उपहार मांगती है। हरियाणी संस्कृति, बोली, पहनावा आदि का सून्दर चित्रण गीत में बड़े ही सुन्दर ढंग से कहा गया है।

अध्याय-६

विविध प्रकार के हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

विविध प्रकार के हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन

भारत 'अनेकता में एकता' के सूत्र में बधा हुआ है। यहॉ विभिन्न जातियों अनेक धर्मों, बहुरंगी संस्कृति एवं विविध भाषाओं के लोग रहते हैं। अनेक प्रकार की विविधता एवं भिन्नता होते हुए भी यहॉ के जन–जीवन में सांस्कृतिक एकता पाई जाती है। प्रत्येक प्रदेश के जनजीवन की अपनी सामाजिक, संस्कृति हुआ करती है। जो उसके लिखित व मौखिक साहित्य के अनेक रूपों में झलकती है। किस प्रकार गन्ने की पोरी–पोरी में रस व्याप्त होता है, वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त होती है। मानव हृदय में लहज रूप उत्पन्न भाव को विभिन्न क्रियाओं तथा हाव–भाव से व्यक्त करता है, जैसे गाकर, नाचकर, हंसकर, रोकर प्रकट करता है। यह एक स्वाभाविक क्रिया है। आदिकाल से ही मनुष्य अपनी रागात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति गीतों, कथा, कहानी, उक्तियों आदि के द्वारा प्रकट करता आया है। वही लोककथा, लोकगाथा, लोकनृत्य और लोकगीत लोकसाहित्य क विधाएँ हैं। लोकगीत लोक में प्रचलित संस्कृति, मानवीय मूल्यों के संबंधो को उसी समाज के लोगों द्वारा सृजित किया जाता है। लोकगीत विभिन्न अवसरों पर गाए जाते हैं। पीढ़ी दर पीढत्री मौखिक रूप से रूपान्तरिक होते आए हैं। लोकगीतों को विभिन्न अवसरों पर रीति–रिवाजों में परम्परा के आधार पर विभिन्न प्रकार से गाया जाता है, जैसे विभिन्न ऋतुओं के गीत, संस्कार गीत, शादी विवाह के गीत, व्रत–उत्सव गीत, तीज त्योहारों के गीत, संस्कार गीत आदि। लोकगीतों की उत्पत्ति मानव मन की अनुभूतियों का फल है। लोकगीत को मानव मन की अनुभूतियों की गहराई की भांति यह पाना काफी कठिन है। व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू में लोकगीतों को देखा जा सकता है। जब बच्चा गर्भ में आता है तब से लेकर मृत्युपर्यन्त गीतों की धुन सुनता रहता है। जन्म लेकर वह लोरी के रूप में इन लोकगीतों की धून को सुनता हुआ बड़ा होता है। फिर वह लोकगीत मॉ की

लोरी के रूप में हो या दादी, नारी की बाल कहानियों में, प्रकृति के सूक्ष्म परिवर्तनों में हो या घर, खेत, चक्की, पनघट या अन्य कोई भी श्रम कार्य करते जनमानस में विभिन्न त्योहारों, मेलों तीर्थस्थलों आदि में हम लोकगीत को रचाबसा पाते हैं।

हरियाणा में लोकगीतों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है विविध प्रकार के लोकगीतों से हमें यहॉ की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, परिस्थितियों की झांकी देखने को मिलती है। हर क्षेत्र में संस्कृति की छटा अनेक रूपों में बिखरी हुई है। हरियाणा की भूमि पर पारिवारिक विवाह के रीति–रिवाज, भाषा, रहन–सहन, खान–पान, नैतिक मूल्यों का एक अनूठा संगम देखने को मिलता है। जाति के विषय में हरियाणा में 'छत्तीस जाति सांझला' की कहावत् विख्यात है। इसका अर्थ यह है कि हरियाणा में सभी जातियों के लोग निवास करते हैं। कुछ जातियों के लिए विशेष प्रकार के गीत गाए जाते हैं। जिनमें अहीर जाति का विरहा, दुसाध जाति का पचरा आदि लोकगीत प्रसिद्ध है।

विविध जातियों व धर्मों से संबंधी हरियाणवी लोकगीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन :–

हरियाणवी लोकगीतों में विविध प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं। हरियाणा की पुरानी धरोहर अत्याधिक समृद्ध है। यह प्रत्येक क्षेत्र में सृजन की भूमि है। यहॉ की धरती स्र्का के बराबर है। किसी जाति विशेष में गाए जाने वाले गीतों को भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इसी प्रकार का एक लोकगीत खाती अर्थात् बढ़ई जाति की कारीगरी की तुलना बेमाता से करते हुए लोक में स्त्रियॉ गाती हैं–

"तु तै री भाभी सुधरी घणी सै, खाती के न छड़ राखी

खाती का ए मेरा के लागै सै, बेमाता न छड़ राखी

ठा कै टोकणी पाणी नै चाली, फौजी छुट्टी आवै सै

पाणी भर कै उल्टी आई, मॉ बेटे नै सिखावै सै

तेरी बहू बदमाश रै बेटा, गाला मैं गिरकावै सै

खूंटी के तैं बैंत तार मेरी, कड कै बीच जंचावै सै

और मार दो–चार रै बेटा, बहू बिगड़ती आवै सै

रोटी पोऊँ ठाड्डी रोऊँ, खड़या बगड़ मैं लखावै सै

रोवै मतना रै मेरी गौरी, क्यूॅ मेरी देही न जलावै सै

झोली दे कै बुलाई कमरे में, सहज–सहज बतलावै सै

म्हारा तौ रै गौरी दोष नहीं, या मां राणी पिटवावै सै

गोड्यां कै मैं सिर धर कै नै इब मेरे लाड लड़ावै सै।''

प्रस्तुत लोकगीत खाती जाति का उल्लेख किया है जो लकड़ी को बड़े ही सलिके से कांट–छांट कर सुन्दर वस्तुऍ गढ़ता है। जिस प्रकार से ईश्वर मनुष्य, जीव–जन्तु तथा प्रकृति को गढ़ता है। उसी तर्ज पर स्त्री की सुन्दरता पर पति के यार–दोस्तों द्वारा पानी भरने गई स्त्री को कहते हैं कि तु तो भाभी बहुत ही सुथरी अर्थात् सुन्दर हो। क्या तुम्हे भी किसी खाती अथार्थ बढ़ई ने घड़ा है। स्त्री भी उस मनचले यूवकों को प्रति उत्तर देती हुई कह देती है कि खाती का मेरी कोई नहीं लगता मुझे तो सबको बनाने वाले ईश्वर में बनाया है। बहुओं का इस प्रकार घर के बाहर के पुरुषों से बतलाना पितृसत्तात्मकता समाज को कहा रास आता है। प्रस्तुत लोकगीत में उसी पितृसत्तात्मक समाज की प्रतिनिधि सास भी इसी बात को लेकर बहू के चरित्र पर ऊंगली उठती है और वह अपने बेटे को बहू के विषय में उल्टी–सीधी बातें कह मिटवाती है।

किसी भी औरत को ये शुचितावादी समाज चरित्र के आधार पर ही आंकलन करता आया है। सास द्वारा अपने बेटे को बहू के बारे में भला–बुरा सिखाने पर पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर हाथ–उठाना गौरव की बात समझी जाती है। जबकि यह उनकी छोटी सोच और कमजोरी की पुख्ता पहचान है। बिना पूरी बात जाने बिना सिर्फ स्त्रियों को कसुरवार ठहराना और सजा देना पितृसत्तात्मक समाज का अपना न्यायलय है। लेकिन वर्तमान समय में बहुत से पुरुष इस सोच को छोड़कर समानता के व्यवहार को अपनाने लगे हैं। प्रस्तुत गीत में भी जब फौजी पति को पूरी सच्चाई का पता चलता है। तो वह अपनी गलती भी मान लेता है तथा अपनी पत्नी के लाड़ भी लड़ाता है। इस प्रकार सास–बहू और पति–पत्नी की खट्टी–मीठी नोक–झोक का वर्णन प्रस्तुत लोकगीत में हुआ है।

हरियाणवी लोकगीतों में मध्यकाल की भक्त कवियित्री मीराबाई से जुड़े बहुत से लोकगीत लोक में प्रचलित है फिर चाहे राजस्थान, गुजरात के हरियाणा में भी मीरा आज भी गाई जाती है। मीरा का संबंध राजपूताना जाति से था। राजपूतों में स्त्रियों को घर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होती थी। जब भी राजपूतान के बड़े घरानो की स्त्रियॉ घर से बाहर जाती थी उन्हें विशेष जगहों पर ही जाने की अनुमती होती था जैसे की उन्हें मंदिर जाने की छूट मिली हुई थी। लेकिन जब भी महिलाएँ घर से निकलती थी उन्हें अकेली घर से बाहर जाने पर पाबंदी होती फिर वह जगह मंदिर ही क्यों न हो। जब बड़े घराने की स्त्रियॉ घर से बाहर निकलती थीं उनमें आठ का पर्दा, चार का पर्दा दो का पर्दा इस प्रकार की प्रथा प्रचलित थी। अर्थात् ये स्त्रियॉ अपने कुल की प्रथा अनुसार आठ स्त्रियों के साथ चार स्त्रियों के साथ या दो स्त्रियों के साथ लेकर ही घरों से मंदिर इत्यादि के लिए घर से बाहर कदम रख सकती थी। मीराबाई के समय में अनेक कुप्रथाएँ प्रचलित थी जिनमें सती प्रथा तथा घूंघट प्रथा अत्याधिक भयंकर रूप में प्रचलित थी। जिनका मीराबाई ने डटकर विरोध भी किया है। मीरा के पदों में भी इन प्रथाओं का जिक्र देखा जा

सकता है तथा लोक में गाये जाने वाले गीतों में स्पष्ट उदाहरण देखे जा सकते हैं।–

''आहे म्हारी राजपूता री जात

एकली एक जाया ना करते

तेरे पिता की ए इज्जत भारया

सारी दुनिया नै पाटरया ए वेरा

आए तेरे मुख मैं नागर पान

जहर न खाया ना करते .....

म्हारी राजपूता री जात ...

एकली जाया ना करते

मैं कृसन की कृसन मेरा

सारी दुनिया नै पाट रया री बेरा

आए चाहे लेले मेरी जान

भगत घबराया ना करते ....

म्हारी राजपूता री जात ...

एकली जाया ना करते

मैं तो ए मीरा धारे कुल की दासी

सारी दुनिया मैं तेरी हो रही हांसी

आए मेरा दिल सै बेईमान

घणी ए कलसाया ना करते

म्हारी राजपूता री जात ...

एकली जाया ना करते

पहल्यां तो री मनै मन को मारया

कि देख्या री मनै दसमा द्वारा

फेर मिल्या री मनै कृसन फला

आरी हम पहोच लिए धणी दूर

बावड़ कै आया ना करते

म्हारी राजपूता री जात ...

एकली जाया ना करते।''

इस प्रकार हरियाणा में जब विवाह शादी कुंआ पूजन या घर में अन्य खुशी के अवसरों में विविध विषय उविषयों से जुड़े लोकगीत ग्रामीण महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं। जो विभिन्न जाति, समुदाय, कुनबे, कबिलों में अलग–अलग क्षेत्रीय बोलियों में गाये जाते हैं।

सगे–संबंधियों–संबंधी हरियाणवी लोकगीत :–

घर–परिवार में विभिन्न रिश्ते–नातों में हंसी–खुशी, दुःख–तकलिफ प्रत्येक प्रकार के भाव हरियाणवी लोकगीतों में उजागर होते रहते हैं। कभी सास–बहु के रिश्तों में नोक–झोक, कभी ननद–भाभी, देवरानी–जेठानी, पति–पत्नी के

संबंधों में खट्टी–मीठी नोक–झोक चलती रहती है। जिन्हें अक्सर महिलाएँ लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। कभी विचारात्मक गीत जकड़ी के माध्यम से कभी दास्य–विनोद भरे चूटिले गीतों तथा कभी–कभी तीखे व्यंग्यात्मक शैली में लोकगीतों को अभिव्यक्त करती है।

हरियाणा में जब कन्या का विवाह कर दिया जाता है तो ससुराल में जाकर सम्पूर्ण गृहकार्य का भार बहु के कंधों पर डाल दिया जाता है। सास–ननद उससे खूब काम करवाती है। ग्रामीण क्षेत्रों इस प्रकार की स्थिति आज भी बरकरार है। घर के कामों में अक्सर स्त्रियाँ अपनी सहेत का भी ख्याल नहीं रखती। काम करते–करते वह दुबली–पतली हो जाती है। अपनी अवस्था से असंतुष्ट होकर विद्रोह करने लगती है। बहुओं के इस प्रकार के व्यवहार करने पर उन्हें प्रताड़ना भी दी जाती थी। वह अपनी इस प्रकार अवस्था को भी गीतों के माध्यम से बखुबी प्रकट करती है जिसका स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत गीत में देखा जा सकता है–

"मैं तो माड़ी होगी हो राम

धंधा करकै इस घर का

बखत उठकै पीसणा पीसू

सवा–सवा पहर का तड़का

मैं तो माड़ी होगी हो राम

धंधा करकै इस घर का

चूल्ले में आग बाली

छोरे नै दे दिया धक्का

बासी कुस्सी टिकड़े खागी

घी कोन्या घर का

मैं तो माड़ी होगी हो राम

धंधा करकै इस घर का

सास–ननद निगोड़ी न्यू कहै

ना माने बैठी मारै सपड़का

मार मूर कै नै पावण गेरी

देवर कर लिया घर का

मैं तो माड़ी होगी हो राम

धंधा करकै इस घर का

बड़े जेठ की मॅूछ उखाड़ी

सूसरे का कालजा धड़का

मैं हठली, हठ की पूरी

कहा ना मानू किसे का

सारा कुणबा रोल कै पीटण लाग्या

नास करा लिया सिर का।''

एक समय था जब बहुएँ ससुराल पक्ष की प्रताड़ना को चुपचाप सहन कर जाती थी और किसी को कुछ बता तक नहीं पाती थी क्योंकि घर से बाहर

निकलने पर पाबंदी होती थी। न ही पुराने समय में स्त्रियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। और ना आज के समय की तरह मोबाइल, टेलीफोन की सुविधा होती थी। परन्तु आज समय बदल चूका है। आज बल्कि शिक्षा पर बल दिया जाता है। आज स्त्रियॉ अपने पर होने वाले अत्याचारों और अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। वर्तमान समय सास के अत्याचारों के प्रतिक्रिया स्वरूप बहुऍ एक विद्रोहणी नारी के रूप में दिखाई देती है। अपने विद्रोह के स्वर को वह प्रस्तुत लोकगीत के माध्यम से प्रस्तुत करती है–

''गया–गया री सास तेरा राज

जमाना आया बहुओं का

सास्सड़ राणी चाकी पीसै

बहुअड देखण जाए

मोटा–मोटा री सास तेरा चून

जमाना आया बहुओं का

सास्सड़ राणी दाल बनावै

बहुअड़ देखण जाए

काच्ची–काच्ची री सास तेरी दाल

जमाना आया बहुओं का

सास्सड़ राणी खाणे बैठी

बहुअड़ देखण जाए

थोड़ी खा ल्यो री दाल मेरी सास

जमाना आया बहुओं का

सास्सड़ राणी कात्रण बैठी

बहुअड़ देखण जाए

मोटा–मोटा री सास तेरा खूत

जमाना आया बहुओं का

गया–गया री सास तेरा राज

जमाना आया बहुओं का।''

हरियाणवी लोकगीतों में यहॉ की परम्पराग, आदतें, विचार, मूल्यों को बड़े ही सहजता से अभिव्यक्ति मिली है। प्रस्तुत गीत में समय के साथ आए घर की सत्ता के बदलाव का उल्लेख किया गया है। पूराने समय में घर के राज–काज का कार्य सास यानि घर की बड़ी स्त्री के हाथों में होती थी। सास के अनुसार ही घर के सभी सदस्य रहते थे। एक प्रकार से घर–परिवार सास कि देख–रेख में चलते थे। पितृसत्तात्मक समाज में घर और बाहर के कामों को बांटा हुआ था। समाज में पुरुषों को घर के बाहर के कार्य करने की जिम्मेदारी होती थी तथा घर के भीतर के अधिकतर कार्य स्त्रियों के जिम्मे में होते थे। जो घर की सत्ताधिकारी सास के अनुसार होने चाहिए। लेकिन आज समाज में परिवारों में आए बदलाव में एक बदलाव यह भी स्पष्ट दिखाई देने लगा है कि घर की कमान बहुएँ सम्भालने लगी है।

प्रस्तुत गीत में बहु सास को इसी प्रकार के शब्दों को अभिव्यक्त करती है कि सास अब समय बदल गया है आपका जमाना जो चूका है। बहुओं का समय आ गया है। जो कार्य सास होने बहुओं से अपनी हुकुमत के बल पर

करवाती थी। उन्हीं कामों को आज बहुएँ सास से आदेश देकर करवाने लगी हो। जो एक प्रकार से नैतिक आचरण का पतन भी है। समाज में मनुष्यता के छोटे–बड़े के प्रति जो लिहाज पूराने समय में था उसका ह्रास भी प्रस्तुत गीत में देखा जा सकता है। दूसरा सास जो अपनी सत्ता के बलबूते बहुओं पर जो अत्याचार करती थी उसका सिद्ध बहुओं द्वारा एक प्रकार का विद्रोह भी परिलक्षित हो रहा है। प्रस्तुत गीत में देखा जा सकता कि जब बहूँ का राज आता है तो वह भी सास के कामों में कमियॉ ढूढ़कर वहि अन्याय कर रही है। सास जब हाथ से चाकी से आटा पीसती है तो बहु उसे देखकर आटा मोटा कहकर सास पर व्यंग्य करती है। इसी प्रकार दाल, रोटी बनाने में कमियॉ निकालती है। उन्हीं दैनिक कार्यों में जैसे चाकी से आटा पीसना, खाना बनाना, चरखों से सूत कातना आदि कार्यों में पहले सास अपने राज में बहुओं से आदेश देकर करवाती थी और आज बहुओं ने जब घर की कमान अपने हाथों में ली है तब वही दिनचर्या के कर्य बहुएँ अपनी सासूमाओं से करवाने लगी है। अर्थात् वर्तमान समय में घर परिवार की सत्ता बहुओं के हाथ में है जो कि एक प्रकार से टूटते बिखरते संयुक्त परिवारों का परिणाम तथा नैतिक भावना का पतन के रूप में भी समझा जा सकता है। पूरानी रूढ़ियों को तोड़ने तक तो समाज में कोई हर्ज नहीं लेकिन रिश्तों की गिरती मर्यादा अपने आप में समाज के लिए विचारणीय प्रश्न है।

पारिवारिक संबंधों में सास–बहु में रूठना–मनाना घर–परिवार की छोटी–छोटी बातों पर कहा–सूनी होती रहती है। लेकिन फिर भी सास अपनी बहु से तथा बहु अपनी सास के मान–सम्मान का पूरा ख्याल रखती आई है। विभिन्न तीत–त्योहारों, व्रत, स्नान पूजा में बहुएँ अपनी सास की अनुमति से ही सम्पन्न करती हैं। इसी प्रकार का एक त्योहार मकर संक्रांति जो अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार जनवरी प्रथम माह में होता है। जनवरी माह की चौदह तारिख को प्रतिवर्ष मकर संक्रांति का त्योहार बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है।

हरियाणा के सीमावर्ती राज्य पंजाब में लोहड़ी का लोहार पंजाब क्षेत्र विशेष त्योहार है। लोहड़ी 13 जनवरी की शाम तक विशेष उत्साह के साथ मनाया जाता है। यूवक–युवतियॉ रंग–बिरंगे पारम्परिक परिधान पहनकर तैयार होते हैं। आग जलाई जाती है तथा आदमी के चारों ओर धूमधाम से नृत्य किया जाता है। बच्चों को विशेष रूप से मूंगफली, रेवड़ी का वितरण कि जाता है। इसी प्रकार कुछ–कुछ समानता लिए हरियाणा में यह त्योहार मकर संक्रांति के रूप में मनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि सूर्य पौष मास में धनु राशि को छोड़कर मकर राशी में प्रवेश करते है।। तो सूर्य की इस संक्रति को मकर संक्राति के रूप में पूरे देश में मनाया जाता है। हरियाणा में इस दिन घर की बहुएँ बेटियॉ सुबह वाह्य मुर्हत में उठकर घर की साफ–सफाई का कार्य कर जल्दी स्नान आदि कर तैयार हो जाती है। बड़े–बुजुर्ग व बच्चे सभी सामुहिक रूप से आग जलाकर आग के पास बैठकर अपने को ठण्ड से बचाते हैं। वहीं पर बैठकर सभी बच्चे बड़े घर में पकवान खाते हैं। रेवड़ी, मूंगफली का वितरण करते हैं।

वहीं महिलाएँ मकर संक्राति के त्योहार को अपने अनोखे रूप में मनाती है। घर पर आई नयी दुल्हन द्वारा घर के बड़े बुजुर्गों को मनाने या जगाने की अनुठी रस्म अदा की जाती है। इस दिन सुबह–सुबह गांव की सभी बड़ी, बुजुर्ग औरते टोली बनाकर चौपाल, तालाब या अन्य जगह बैठे परिवार जनों को मनाने या जगाने जाती है। मनाना या जगाना ये क्षेत्र विशेष के लिए अलग–अलग शब्द का प्रयोग किया जाता है। किसी किसी जिले की ओर मनाना कहते हैं लेकिन महेन्द्रगढ़, रेवड़ी, नारनौल क्षेत्र में जगाना शब्द का प्रयोग भी कि जाता है। जब स्त्रियॉ इस रस्म को करती है तो उपहार स्वरूप वस्त्र, मिठाई आदि भेंट करती है। इस रस्म को बड़े धर्म तथा पूण्य के कार्य के रूप में किया जाता है। ससुराल पक्ष को स्त्रियों बड़े से श्रद्धा और भक्तिभाव से मनाती है। जिसका एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत लोकगीत में परिलक्षित होता है–

''बाहण मेरी सास रासगी हे

हे मेरा ससुरा करै मरोड़

मन्नै कोय जतन बता दयो हे

बाहण या आई सकरात हे

हेरी सासू का रेशमी सूट

ससुर का हे काम्बल ल्या दयो री

सास तनै आई मनावण री

तेरा ल्यायी रेशमी सूट

ससुर का काम्बल ल्याई री

सास मैं तनै मनाऊ हे

हे थम पहरो रेशमी सूट

ससुर का तो काम्बल ल्याई हे

सास तेरे बेटे कै ब्याही री

हेरी मनै छोड़डे मायड़ बाप

सास तेरी सेवा करूँगी री

सास तनै हलवा जिमां द्यू री

हेरी तेरे ल्या मैं दाबू पैर

सास तनै मनाऊ री

बहू मेरी भली घरा की हे

हे मेरा ल्यायी रेशमी सूट

ससूर का काम्बल ल्यायी हे

सास तनै खूब जिमा द्यू री

हे जेठे का राख द्यू माण

देवर का तो घेवेर ल्या द्यू री

बहू ए हु भले घरा की हे

हे तेरा सुखी रहै

परिवार मान म्हारा सबका राख्या है

बहू हे म्हारी जुग जीवो हो

हे म्हारा सबका राख्या मान ल्या तेरा सिर पुरकास हे।''

प्रस्तुत लोकगीत में मकर संक्रांति पर बहुएँ अपने सास–ससुर, जेठ, देवर आदि को कम्बल, चद्दर आदि देकर मनाती है। हरियाणा में एक बड़े त्योहार के रूप में मनाया जाता है। हरियाणा में इसके महत्व को यहॉ के लोकगीतों के माध्यम से बखूबी जाना जा सकता है। मकर संक्राति पर्व पर स्नान और सूर्यो वासना का भी विशेष महत्व है। इस दिन हमारी पुरानी मान्यताएँ आज भी हमारे गांव देहात में निभाई जाती है। उन्हीं परम्पराओं को हरियाणवी लोकगीतों में भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। सास–बहु की समय अनुसार कहा–सुनी खट्टी–मिठी नोक–झोक फैसन को लेकर प्रस्तुत गीत में देख सकते हैं–

''बहुओं का दोष नहीं सै हे ये बिगड़ती आवै सै

ये नहीं उम्र नै देक्खै हे, ये फैसन करणा चाहवै न

ये चौड़े पजामें पहरै हे ये दो–दो गोज लगावै सै न

इनके धौले केश हो गए थे काली मेहदी लावै सै

सत्संग का नाम लेवै से हे ये चुगली पीटण सै

घर आते खाट मैं पड़ ज्या हे, ये सर मैं दरद बतावै स

इसनै रोटी साग ना बावै हे सब्जी मैं नमक बतावै सै

ये देवै नमक का बहाना हे, ये रोज लड़ाई चाहवै सै

ये आप रसोई मैं बड़ के हे ये खाट मैं पड़ी निरडाने सै

इनकै बेटे घरवै गवै हे, ये कानाफूसी लावै सै

वे कमरे भीतर आकै हे, अपणी मॉ की बात बतावै सै

तेरी जी चाहवै जो खाइये रे गौरी, मॉ पिटवाणा चाहवै सै

मेरी मॉ तै थोड़े से दिनां की रै तू सारी उमर मवै चाहतै सै।''

रीति–नीति भक्ति संबंधी हरियाणवी लोकगीत :–

हरियाणा कृषि प्रधान प्रदेश है। कृषि करना, पशुपालन करना यहॉ के प्रमुख व्यवसायों में शामिल है। ग्रामीण अपनी आजीविका के लिए कृषि एवं पशु व्यवस्था पर निर्भर रहते हैं। एक समय जब शिक्षा का अभाव था ग्रामीण लड़के–लड़कियों खेलकूद कर, पशुओं को खेतों में चराकर, तालाब पर पशुओं को पानी पिलाकर लाने का खेतों से चारा लाने आदि का कार्य करके अपना

समय व्यतीत करते थे। घेरलू कार्यों में दक्षता उस समय आगामी जीवन की अनिवार्यता थी। किशोर युवक–युवतियाँ जीवन की महत्वपूर्ण अवस्था के आकर्षण को कृष्ज्ञि के बिम्बों के माध्यम से प्रेम और श्रृंगार को दर्शाया गया ही जिसका जिक्र हरियाणवी लोकगीत में भी देखा जा सकता है।

प्राचीन समय में शिक्षा के अभाव में हरियाणवी लोग कृषि और पशुपालन पर ही जीवनयापन करते थे। गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि पशुओं को पालते और उनके दूध, घी, उन आदि को बेचकर अपना जीवनयापन करते थे। खेतों में काम करते हुए अपने देवी–देवताओं की भक्ति संबंधी भजनों को गाते गुनगुनाते रहते थे। साथ ही रीति–नीति संबंधी अनेक पदों को विभिन्न लोकोक्ति मुहावरों के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे उसी प्रकार का उल्लेख प्रस्तुत लोकगीत का एक उदाहरण कृषि संबंधी श्रृंगारिक लोकगीत में देखा जा सकता है–

''एक बरस का छोटा

जंगल मैं चरावै भेड़

मेरा दिल धड़कया

छोरे भेड़ परे नै कर ते

मेरा खाया चने का खेत

मेरा दिल धड़कया

छोरी ऊँची बाड़ लगा ले

मेरी अड़ै चरैगी भेड़

मेरी दिल धड़कया

छोटे म्हारे घेरे मैं आइये,

फेर औड़े करूगी मुलाकात

मेरा दिल धड़कया

छोरे म्हारी मैं आइये

छोर्या नै मारी किलकार

मेरा दिल धड़कया

छोरे इब मेरी जान बचा ले

तेरा गुण भूलॅू ना शान

मेरा दिल धड़कया।''

प्रस्तुत लोकगीत में श्रृंगार रस की पीयूस, धारा परिसिक्त हुई है। श्रृंगार रस अनादि काल से सहृदयो के आनन्द का माध्यम बनता आया है आने वाले समय में भी श्रृंगार रस अलौकिक आनन्द का साधन बना रहेगा। प्रेम जीवन का एक परम तथ्य है। जिसकी व्यापकता अक्षुण्ण है। प्रेम जीवन के सभी भावों का राजा है। प्रस्तुत गीत नवयुवक और नवयुवती के किशोरावस्था के आवर्षण का सुंदर चित्रण किया गया है। किशोर–किशोरी के प्रारंभिक आकर्षण को गीत के माध्यम से श्रृंगार रस में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

सामाजिक कुप्रथाओं संबंधी हरियाणवी लोकगीत :–

समाज में अनेक प्रकार की कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित है जिनको लेकर समाज में अनेक लोकगीतों में प्रचलित कुप्रथा को उल्लेखित किया गया है। इन्हीं कुप्रथा भ्रुण हत्या एक ऐसा अभिशाप जिससे भारत बहुत बुरी तरह ग्रस्त

है। यह एक शर्मनाक बात है। हरियाणा भी इस कुकृत्य में लिप्त है। औरत को नहीं देवी माना जाता है। मॉ बहन को बड़े ही सम्मान से देखा जाता है। वही यह कुप्रथा एक बड़ा पाप है। प्रस्तुत लोकगीत में अजन्मी बच्ची की पुकार का वर्णन किया गया है–

''बूंद खून की तेरे गरम मैं आज तनै पुकारै हे मां

आ लेण दे मनै दुनिया मैं तू मतना मारै मां

तेरी गैल्या लडू झगड़ल्यू, अरै ओड़ माप की ना सू मैं

या मर जी सै भगवान राम की किसे श्राप की ना सूॅ मैं

टू जाणै सै कोई निशानी तेरे पाप की ना सू मैं

क्यूं मारै स मनै बता के मेरे बाप की ना सू मैं

डर कै दुनियादारी तै टू मतना हारै मां

आ तेण दे मनै दुनिया मैं तू मतन्या मारै मां

बूंद खून की तेरे गरम मैं आज तनै पुकारै हे मां

अम्बर तै मै पड़ी नहीं सू, नीर मरद का मेल हो गया

आपस मैं गुण सुत्र मिलगे फेर कुदरत का खेल हो गया

हाड़ मांस मैं या धली आत्मा, दीवै के म्है तेल होया

यो है नियम सृष्टि का के न्यारा तेरी गैत होग्या

इसे जगहा पै तु भी एक दिन क्यू ना विचारै मां

आ लेण दे मनै दुनिया मैं .....

बूंद खून की ....

मैं दुनियां मैं आ ज्याजी तो बता तेरा के ठाऊ मां

अपणा मैं लिखवा कै ल्याऊ उसी करम का खाऊ मां

सहा तेरै तो हाय रहणी कोन्या चली विराणै जाऊ मां

फरक नहीं बेटा बेटी मैं आज तनै समझाऊ मां

सात जन्म तक पाप छूट ना, मतना खोटी धरै मां

आ लेण दे मनै दुनियां ......।''

जाने क्यों समाज में बेटी को बोझ माना जाता है। एक बेटी दो परिवारों की जिम्मेदारियॉं निभाती है। कभी किसी को शिकायत का मौका नहीं देती फिर भी समाज औरत की महानता को समझना नहीं चाहता। पिछले गीत में एक बेटी अपनी मां से जनम देने की अपील करती है। वह एक दूसरे गीत में एक बहू अपने पति से अपनी सास की शिकायत करती नजर आती और कोई कसूर इतना है कि उसने बेटी को जन्म दिया है–

''ना जीयी ना मरी दिखै मै

उसवै ऐसा काम कर्‌या

मां तेरी नै मेरे पिया जी,

जीणा मेरी हराम कर्‌या

वो हे देगा छांह गौरी रै

जिसनै सिर पै धाम कर्या

सबका वो हे रूखाला सै

तनै याद क्यूॅ न राम कर्या

ना जीयी न मरी .....

पेट, भराई खाणा दे ना,

ब्याई ढाल सतावै वा

गूंद पंजीरो कित घालै थी,

रोटी गिण कै ल्यावै था

क्यूकर उठंगी जाये तै

तन का काला चाम कर्या

मां तेरी नै मेरे पिया जी ....

दूसरे की राह मैं रे गौरी जो भी कांटे बोवैगा

एक दिन चुभ ज्या पां मैं उसकै

उस दिन बैठ कै रोवैया

केकैयी न लालच मैं वो रै

दशरथ भी बदनाम कर्या

सबका वो है रूखाला सै तनै ....

मैं तो समझू थी मां बरगी पर सासू मेरी निस्तर गी

मीराबाई भज ईश्वर नै गौरी पर ले पार उतरजी

उसनै तो कुलदीप बल्हारा

मेरा सबेरा शाम कर्या

मां तेरी नै मेरे पिया जी

में हे देगा छांह गोरी रै ....।''

प्रस्तुत लोकगीत में औरत अपने पति से अपनी सास की शिकायत करती है मैंने अपनी सास को मॉ के समान समझा लेकिन सास मुझे अपनी बेटी नहीं मानती। जब वह स्त्री बेटी को जन्म देती है तो वह न तो बच्ची को स्नेह दुलार देती है। और नहीं मुझे यानि बच्ची की मां होने के कारण खाना देती है बेटी के जन्म के बाद उनका शरीर बिल्कूल नीर्ण–शिर्ण हो चुका है। जब तक उसको खाना–पीना सी ढंग से नहीं मिलता तब तक वह जाये से अर्थात् किस प्रकरण स्वास्थ्य हो पाएगी। पति भी पत्नी को बड़े नैतिकता से समझता है कि जो दूसरों के रास्तों में कांटे बोता है। चाहे कांटे किसी न किसी दिन स्वयं के पैरों में भी चुभते हैं। कन्या भ्रूण हत्या पर एक दूसरा गीत–

''मात मनै मरवाइये ना

थारी शान देखणा चाहू सू

गर्भ तै बाहर लिकड़ कै हिन्दुस्तान देखणा चाहू सू

दो चार साल मैं भाई नै खिलावण जोगी हो ज्यांगी

पकड़ कै डोरी पालणा हिलावण जोगी हो ज्यागी

आ ज्या भाई झोली दे बुलावण जोगी हो ज्यांगी

बांथ कै पोंची भाई कै जी लावण जोगी हो ज्यांगी

सावण की पणमासी आला चांद देखणा चाहू सू

गर्भ तै बाहर लिकड़ कै हिन्दुस्तान देखणा चाहू सू

खर्च होण तै मतना डरियो मेरा बिन खर्चे ब्याह हो ज्यागा।

प्रस्तुत लोकगीत में कन्या भ्रूण हत्या भेदभाव की मान्यताओं को प्रदर्शित करती है। भारत की जनसंख्या में प्रति 100 पुरुष 93 से कम महिलाएँ है संयुक्त राष्ट्र ने भी सेत किया है कि भारत में बढत्रती भ्रूण हत्या जनसंख्या से जूड़े संकट उन्नत कर सकती है। एक कुप्रथा समाज में अनेक कुप्रथाओं को बढ़ाओ देती है। जैसे भ्रूण हत्या की वजह से जहॉ समाज में कम महिलाओं के कारण सेक्स से जुड़ी हिंसा एवं बाल अत्याचार के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों के पतन की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

भारत में पुरुष प्रधान समाज में यह परम्परा है कि वंश को आगे बढ़ाने के लिए कम से कम एक पुत्र होना अनिचार्य है दूसरी परम्परा यह है कि माता–पिता की मृत्यु होने पर आत्मा की शांति के लिए पुत्र ही मृत माता–पिता की चिता को मुखारित दे सकता है।

इन कुरूतियों को खत्म करने और समाज के दृष्टिकोण के बदलने के लिए विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ एवं सरकारें समय–समय पर कदम उठाती है। जैसे–''सरकार गर्भधारण से और प्रसवपूर्व लिंग चयन पर रोक कानून 1994 में लागू किया। इसमें 2003 में संशोधन किया गया।''

प्रस्तुत लोकगीत में बिना जन्मी बच्ची अपने मां से प्रार्थना करती है जिसे बड़े ही मार्मिक ढंग से कहा गया है कि मां तुम मुझे जन्म से पहले मत मरवाना

मैं भी जन्म लेकर आप लोगों की दुनिया को देखना चाहती है। तथा थोड़ी बड़ी होने पर आप के साथ घर के दैनिक कार्यों में हाथ बटाऊंगीं। जिस भाई की खातिर तुम मुझे इस दुनिया में नहीं लाना चाहती है। थोड़ी बड़ी होने पर उन भाई की देख–रेख स्वयं कर हुगी। भाई–बहन का प्रेम जिस रक्षा की डोरी से रक्षाबंधन का त्योहार मनाया जाता है। मैं भी अपने भाई की सूनी कलाई पर प्रेम का धागा बांधना चाहती हूँ।

हे दहेज के खिलाफ बहुअड़ क्यूकर बोलैगी

मैं तो कानून के आधार पै खटाखट बोलूंगी

हे खटाखट बोलूंगी हे फटाफट बोलूंगी

हे जो लिख राख्या संविधान मैं वे भेद खोलूंगी

छेड़खानी के खिलाफ बहुअड़ क्यूकर बोलेगी

उनके मुॅह पै देके चाटा मैं फटाफट बोलूगीं

हे खटाखट बोलूंगी हे फटाफट बोलूंगी

हे सो लिख राख्या संविधान ......

पर्दाप्रथा के खिलाफ बहुअड़ क्यूकर बोलेगी

मैं तो खोल बगा कै घूंघट नै खटाखट बोलूंगी

हे खटाखट बोलूंगी हे फटाफट बोलूंगी

हे जो लिख राख्या संविधान मैं वे भेद खोलूंगी

गैर कानूनी पंचात मैं बहू क्यूकर

मैं तो तोड़ के फरमान नै खटाखट बोलूगी।

समाज में दहेज प्रथा एक भयंकर बुराई है। इसके कारण समाज में स्त्रियों के प्रति अनेक प्रकार की यातनाएँ और अपराध जन्में है। इस कुप्रथा को मिटाने के लिए 1961 में दहेज निषेध अधिनियम तथा योजनाएँ प्रयासरत है। दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाओं से छुटकारा पाने में लोगों की नैतिक चेतना को प्रभाव में लाना तथा स्त्रियों को शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्र प्रदान करके दहेज प्रथा के खिलाफ कानून को लागू करने में सहायक हो सकते हैं।

शिक्षा एक मुल्यवान उपहार है जिसे माता–पिता अपनी बेटी को दे सकते हैं। आर्थिक मजबूती और शिक्षा के लिए प्रोत्साहन करना सबसे अच्छा दहेज है। प्रस्तुत लोकगीत में पढ़ी–लिखी बहुत दहेज के खिलाफ आवाज उठा सकती है। समाज में फैली कुरीतियों को शिक्षित स्त्रियॉ लोकगीतों के माध्यम से भी बखूबी उठाती है। प्रस्तुत गीत में छेड़खानी के खिलाफ पर्दाप्रथा के खिलाफ आवाज उठाएगी और समाज में कुप्रथाओं के खिलाफ सामाजिक चेतना को उजागर कर पाएगी। इसलिए बालिका शिक्षा समाज के उत्थाने के लिए आवश्यक एक महत्वपूर्ण कार्य है। तथा प्रत्येक माता–पिता का अपने बच्चों के प्रति फर्ज भी। समाज में महिलाओं द्वारा शिक्षा के अभाव एवं दहेज प्रथा छेड़खानी पर्दाप्रथा बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरूतियों को गीता के माध्यम से स्त्रियों के भावों को अभिव्यक्ति व्यक्त हुई है। इसी प्रकार बाल विवाह लड़कियों के बचपन का गला काटती एक सामाजिक कुप्रथा है। सभ्य और आदर्श कहे जाने वाले समाज में बाहर–बाहर सब अच्छा–अच्छा दिखता है। लेकिन अंदर से सब खोखला है। ये सामाजिक कुप्रथाएँ हमारी संस्कृति, हमारे समाज को नकारात्मक पहलू दर्शाता है। बाल विवाह पर व्यंग्य करता एक लोकगीत जो इस प्रकार है–

''हे याणा सा भरतार भाण मेरा पतंग उड़ाव सै

पतंग जले में न्यू लिधराखी ब्याह करवावै सै

ठैहर नंनदी ठैहर ननदी ठैहर के जाइएँ

सिमवा टू तैन खट पैहर कै जाइए ....

दोराणी जेठानी मेरी तानै मार ...

कै दामजा लाई

21 सूट 51 बासण यो हि दायजा लाई

भीतर से मेरी सासू टिकड़ी

कै राम लूट कै लाई

अपणा–अपणा ठो लाई

मेरे बेटे के लाई ...

चूप–चूप सासड़ चूव रै सासड़

नया स्कूटकर लाई

लीली पैन्ट गुलाबी बुर्सट

काले चश्मे लाई

लीली स्हायी धोली तकती

गैल मास्टर लाई

तैन री सास पढ़ाया कोन्या

आप पढावण आई।

प्रस्तुत लोकगीत बाल विवाह पर करारा कटाक्ष करता हुआ है जब एक पढ़ी–लिखी लड़की का अपने से कम उम्र और कम पढ़े लिखे लड़के से विवाह हो जाता है। ससुराल में उसकी सास जेठाणी दोवणी उसे दहेज के लिए ताने मारते ही तो पढ़ी लिखी बहु उनको व्यंग्यात्म जबाव देती है। मैं तो पढ़ी लिखी आपका लड़का अनपढ़ है उसे पढ़ाने लिखाने के लिए आई हूॅ और पठमे की प्रस्तुत दहेज में अपने साथ लेकर आई हूॅ। इस प्रकार लोकगीत के माध्यम से शिक्षा का महत्व और दहेज के खिलाफ सामाजिक चेतना के भावों को उजागर किया गया है।

हरियाणवी लोकगीतों में स्त्रियॉ केवल अपने भावों की अभिव्यक्ति ही नहीं करती अर्थात् समाज की सामायिक सांस्कृतिक राजनैतिक सभी मुद्दों पर हरियाणवी लोकगीतों में स्त्रियॉ केवल अपने भावों की अभिव्यक्ति नहीं करती अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सभी मुद्दों पर अपने विचारों को अभिव्यक्त करती है। राजनैतिक चेतना का स्तर हरियाणवी लोकगीतों में परिलक्षित होता है–

हे रे मोदी तनै ईसी रेल, रेल मैं रै धूम्मा ठा दिया

हे रे मोदी तनै ईसी रेल, रेल मैं रै धूम्मा ठा दिया

पहली रेल नोटबंदी की चलाई

बूढ़िया के रै तनै धरे खुसवाए

हे रे मोदी तनै ईसी रेल, रेल मैं रै धूम्मा ठा दिया

दूजी रेल तनै करोना की चलाई

सकूल कालेज बंद करवाए

पीसां के रै तनै भात भराए

हे रे मोदी तनै ईसी रेल, रेल मैं रै धूम्मा ठा दिया

तीजी रेल मोदी ईब रै चलाई

तीनूं कनून इसे बणाए

जमींदार भाई तनै रोड़ पै बिठाए

हे रे मोदी तनै ईसी रेल, रेल मैं रै धूम्मा ठा दिया

चौथी रेल मोदी हम रै चलाता

काले कानूनां नै रद्द करवाता

हे रै तू मोदी तनै ईसी चलाई रेल

पांचवी रेल म रै मोदी तनै बिठानां

तेरै रे जाल मैं तनै फसाना

हे रै मोदी तू फसया जमीदारा बीच ...।

देश—विदेश में फैली महामारी, बाद तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं का उल्लेख भी लोकगीतों में बखूबी देखा जा सकता है। इसी प्रकार का कोरोनाकाल में हरियाणवी महिलाओं द्वारा गाया गया लोकगीत जिसमें कोरोना के कारण आई विपदा तथा संकट का वर्णन प्रस्तुत लोकगीत में देखा जा सकता है—

देख मेरे भगवान कैसे बेबस है इंसान

पहल्या करोना आया हे चीन में

फेर इनै भरी उड़ान, कैसे बेबस है इंसान

देख मेरे भगवान कुछ ना कर पा रह्या इंसान

फिर फैल्या ए यो देस–विदेसा

जैसे फिर्‌या तूफान कैसे बेबस है इंसान

देख मेरे भगवान कैसे बेबस है इंसान

मौता की गिणती बढ़ण लाग री

माच रह्या कोहराम, कैसे बेबस है इंसान

देख मेरे भगवान ......

वैद्य डाक्टर फेल हो गये

होग्ये फेल प्लान, कैसे बेबस है इंसान

देख मेरे भगवान कैसे बेबस है इंसान

पैसा धेला काम ना आ रह्या

रहगें खड़े मकान, कुछ ना कर पा रह्या इंसान

देख मेरे भगवान कैसे बेबस है इंसान

जै बाहणों थम बचणा चाहो,

सै भाइयो धम बचणा चाहो

घर तैं बाहर कती मत जाओ

बालम बूढ़या नै समझाओ

कर द्यो एक एहसान, कैसे बेबस है इंसान।

प्रस्तुत लोकगीत में दुनिया में फैली कोविड–19 जैसी महामारी का वर्णन किया गया है। इस लोकगीत में महामारी के कारण इंसान पर आई विपदा और मनुष्य की बेबसी को वर्णित किया गया है। सबसे पहले कोरोना महामारी चीन के वुहान शहर से अन्य देश में फैला मध्य चीन के वुहान शहर में दिसम्ब्र 2019 में शुरूआत हुई। उसके पश्चात् कोरोना ने देश–विदेश की उड़ान भरी और पूरी दुनिया में मौतों का कोहराम मचाया। कोरोना वायरस को लेकर जनमानस में अजब बेचैनी मचने लगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना वायरस को महामारी घोषित कर दिया है। कोरोना वायरस का संबंध ऐसे परिवार से है जिसके फैलने से जुकाम से लेकर सांस लेने में दिक्कत हो सकती है। WHO के अनुसार बुखार, खासी, सांस लेने में तकलीफ इस वायरस के लक्षण है। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। इस प्रकार दुनिया में फैली भयंकर बीमारी कोरोना वायरस से संबंधित लोकगीत भी स्त्रियों द्वारा गया जाता है। जिसमें स्त्रियॉ लोकगीत के माध्यम से जनचेतना का प्रचार प्रसार और इस भयंकर महामारी से बचने के उपाय भी लोकगीत के माध्यम से उजागर करती है।

सामाजिक जनचेतना लोकगीतों में बड़े ही सुंदर ढंग से चित्रित हुई है। ग्रामीण क्षेत्र की अनपढ़ महिलाएँ जो कभी स्कूल नहीं गई उन्हें किसी प्रकार का अक्षर ज्ञान न होने पर भी लोकगीतों में उनके वैज्ञानिक विचारों का उल्लेख देखा जा सकता है। स्त्रियों को कम दिमाग कहने वाले पितृसत्तात्मक समाज को हरियाणवी लोकगीतों में स्त्रियों ने बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से धरती, चंद्रमा, सागर, नदियों का लयात्मक उल्लेख किया है–

''तनै नमन करूँ मां धरती,

मनै कदे ना देखी फिरती

सूरज देख्या री चंदा देख्या,

मनै देखी छाया ढलती।

सागर देख्या री गंगा देखी

नदियॉ देखी बहती

तनै नमन करूॅ मॉ धरती

मनै कदे ना देखी फिरती

सारी दुनिया का बोझ उठा री

फिर भी कोन्या थकती

तनै नमन करूॅ मॉ धरती

मनै कदे ना देखी फिरती।

प्रस्तुत लोकगीत में धरती माता को नमन करते हुए कहा गया है कि सूरज, चंदा सब भली भांति दिखाई देते हैं लेकिन धरती घूमती हुई दिखाई नहीं देती। छाया ढलती भी दिखाई देती है। इस प्रकार लोकगीत में स्त्रियॉ एक प्रकार से वैज्ञानिक प्रश्न करती नजर आती हैं। धरती के घूमने पर सवाल करती हैं। पृथ्वी की धूर्णन अथवा पृथ्वी का घूमना पृथ्वी ग्रह का अपनी धुरी के चारो ओर घूमना है। वहीं अंतरिक्ष में धूर्णन अक्ष के उन्मुखीकरण में परिवर्तन है।

इस प्रकार छोटे से लोकगीत में स्त्रियों ने पृथ्वी के धूर्णन को लेकर प्रश्न किया है। तथा विचारात्मक तथ्यों का उल्लेख किया है।

बाल खेल से संबंधित हरियाणवी लोकगीत :—

बाल गीतों में प्रमुख रूप से लोरी खेलकूद आदि के विशेष गीत सम्मिलित होते हैं। बाल खेल गीत बालकों के सामाजिक जीवन, आकांक्षाओं और समकालीन वातावरण के द्योतक है। बाल गीतों में स्वर बच्चों के ही होते हैं। केवल 'लोरी' को मॉ, दादी, नानी या अन्य संबंधी महिला या बड़ी बहन गाती है। बाल गीतों के माध्यम से शब्दों का ज्ञान तथा शिक्षा दी जा सकती है। बाल गीत बच्चों के आंतरिक निकास में सहयोगी होने के साथ ही साहसी, विनम्र और संस्कारी भी बनाता है–

''पोसम्पा भई पोसम्पा

डाकिये ने क्या किया?

सौ रूपये की घड़ी चुराई

अब तो जेल में आना पड़ेगा

जेल की रोटी खानी पड़ेगी

जेल का पानी पीना पड़ेगा

अब तो जेल में आना ही पड़ेगा।

बाल खेल बच्चों की आधुनिकता का बोध भी करवाते हैं। तथा नये शब्द का भी बोध करवाता है। छोटे–छोटे बाल खेल बच्चों में प्राण चेतना का जोश भी जगाता है। नई शब्दावली का अवबोध भी प्रस्तुत खेल में देखा जा सकता है। भलाई बुराई के परिणाम का भी ज्ञान करवाते हैं। जैसे चोरी करने पर जेल जाना पड़ सकता है।

''एक लड़की बाग में रो रही थी

उसका साथी कोई नहीं था

ऊठ सहेली ऊठ, अपने ऑसू पोंछ

ऊपर क्या?

चंदा मामा

नीचे क्या?

धरती माता।''

प्रस्तुत बाल गीत में दो सहेलियों के आपसी सहयोग का वर्णन किया गया है। एक लड़की बाग में रो रही है जब उसका कोई साथी नहीं, नहीं होता तब एक अंजान लड़की उसको उठाती है। आंसू पोछती है और उसकी सहेली बनती है। दो सहेलियॉ आपस में बड़े ही सुंदर खेल खेलती है।

''आओ मिलो, सीलो सालो

कच्चा धागा रेस लगा लो ...

दस पत्ते तोड़े एक पत्ता कच्चा

हिरण का बच्चा

हिरण गया पानी में,

पकड़ा उसकी नानी ने

नारी गई लंदन,

वहां से लाई दो कंगन,

एक कंगन टूट गया,

नानी का दिल टूट गया

नानी को मनाएंगे

रस मलाई खायेंगे,

रस मलाई अच्छी,

उसमें निकली मच्छी

मच्छी में निकला कांटा

मम्मी ने मारा चाटा

चाटा लगा जोर से

हमने खाए समोसे

समोसे बड़े सस्ते

बुआ जी नमस्ते।''

अध्याय-७

उपसंहार

उपसंहार

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज व परिवेश में उसका जन्म होता है वह समाज को अंगीकृत कर उसी के अनुरूप अपने जीवन अपने आचार–विचार व्यवहार व संस्कृति में अपने आप को ढाल देता है। विकास के सोपान पर कदम रखते हुए उसे अपने समाज के साथ–साथ अन्य सामाजिक जीवन को भी देखने का अवसर मिलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के मध्य उसे अंदर एक द्वंद्व की सी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। यही द्वंद्व उस व्यक्ति के जीवन में उथल–पुथल मचाता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति उसके रहस्य को जानना चाहता है। उसमें अपने समाज संस्कृति और मान्यताओं आदि को समझने व परखने की जिज्ञासा पैदा होती है। लोक साहित्य वह स्रोत है जिसके माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक अंतरधाराओं की तरलता का एहसास किया जा सकता है।[1]

लोक साहित्य प्रायः लिखित होता है। इसके रचयिता का नाम भी प्रायः अज्ञात रहता है। हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक एवं परंपरागत होता है तथा यह लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। विश्वामित्र उपाध्याय के अनुसार–''मनुष्य अपने जीवन में सुख–दुःख का जो अनुभव करता है; अपने परिवेश तथा प्रकृति में जो कुछ देखता है; उससे सहज रूप में उत्पन्न भावों को वह अपनी वाणी तथा हाव–भाव से अभिव्यक्त करता है। साधारण जन अपने मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालने वाले घटना के बारे में गाकर; नाच कर या रोकर अपनी रागात्मक भावनाओं को प्रकट करते हैं; यह उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। मानव आदिकाल से अपनी रागात्मक भावनाओं

---

[1] हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन डॉक्टर राजेश्वर उनियाल, पृष्ठ संख्या–11

की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों के द्वारा करता गया है! जनसाधारण की यह स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''[2]

किसी स्थान का लोक साहित्य वहाँ की लोक संस्कृति का दर्पण होता है। मनुष्य जाति की भाषा उनकी संस्कृति धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य, सभ्यता आदि का अवलोकन मनुष्य के लोक साहित्य के द्वारा ही किया जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी हमारी मनुष्य जाति। जन जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है। वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश तथा समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोग समाज है।

डॉक्टर सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिमानव के अवशेष उपलब्ध हो। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप से झलकती है।

''लोक साहित्य'' शब्द 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। यह अंग्रेजी के अनुकरण पर आया है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिटरेचर' का अर्थ 'साहित्य'। इसी लोक साहित्य का अर्थ है। ''किसी काल विशेष का न होकर युग–युग से चला आया हुआ वह साहित्य, जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।''

लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जिसे लिपिबद्ध करने का यह प्रयत्न सदैव ही अपूर्व रहेगा। उसमें जन–मन के असंख्य उद्‌गार प्रकट होते हैं, जिसको लिपिबद्ध करना कठिन है। इस संदर्भ में चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घाटोयो नीर, कबीर की उक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक छाप हुआ करती हैं, जो उसके लिखित, मौखिक साहित्य

---

[2] हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन डॉक्टर राजेश्वर उनियाल, पृष्ठ संख्या–26

के अनेक रूपों में झलक उठती है। इस प्रकार लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है, आवेग के क्षणों में जन–मन में निस्सृत अकृत्रिम भावपूर्ण अभिव्यक्ति जो अपना रूपाकार स्वयं निर्धारित करता है, लोक साहित्य है।[3]

लोक साहित्य का निर्माण अपने आप ही हो जाता है। जब जन साहित्य की रचना अचानक होती है। लोक साहित्य का अर्थ वह सामान्य जन समूह है। जो अपनी जन जात प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति में कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोक साहित्य के विषय में डॉक्टर भीम सिंह मलिक कहते हैं–''पान के पुनः–पुनः चबाने से, गन्ने की पोर–पोर के रस में तथा महाभारत की कथा श्रवन में जो मजा बार–बार आता है वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त है।''[4]

लोक साहित्य का क्षेत्र बहूत व्यापक है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है और जन समुदाय तक इसका प्रचार–प्रसार होता है, लोक साहित्य एक ऐसा शास्त्र है, जिसने अपने अंतर्गत कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किया हुआ है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। लोक साहित्य के गुढ अर्थ को सहजता से समझने के लिए हिन्दी साहित्य कोश के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने घड़ी हो, पर आज इसे सामान्य लोग समूह अपनी ही मानवता है, और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी कारण जिसके किसी किसी भी शब्द में रचना

[3] डॉ. कृष्णचंद्र शर्मा, लोक साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ संख्या–57
[4] डॉ. भीम सिंह मलिक, हरियाणा लोक साहित्य : संस्कृति दिग्दर्शन, पृष्ठ संख्या–76

चैतन्य नहीं मिलती है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोग का अपना है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।''[5] अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी व्यक्ति के समाज व उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, किसी समाज के लोक साहित्य से उस समाज के व्यक्ति के चरित्र को भली भांति समझा जा सकता है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है, जो चाहे किसी भी विशेष समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उपजा हो या चाहे वह कहीं भी पल्लवित तथा पुष्पित हुआ हो, उसकी सुगंध दूसरे लोक में फैल ही जाती है, क्योंकि लोक का संबंध केवल भौतिक नहीं होता बल्कि अत्यधिक आत्मिक होता है। तथा प्रकृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की भूमिका ठीक उसी तरह से होती है जिस तरह से किसी कारखाने में मशीन व बिजली की होती है। प्रकृति यदि किसी कारखाने की मशीन है, तो आत्मा उस में बिजली की भूमिका अदा करती है, प्रकृति किसी मशीन की तरह विशिष्ट पहचान व नए–नए आयाम देती हैं तथा आत्मा इसे बिजली की तरह न केवल ऊर्जावान व प्रकाशमान ही बनाती है, वरन् इसमें अलौकिक सुख का अहसास भी कराती है, यदि लोक से प्रकृति को हटा दें तो साहित्य व लोक साहित्य में कहीं भी भिन्नता नजर नहीं आएगी। सर्वत्र एक जैसा ही स्वरूप दिखाई देगा। ठीक इसी तरह से बिना अध्यात्मिक सुगंध के वह नीरस व बेजान भी नजर लग सकता है। इसलिए लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की विशेष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार से बिना बिजली की मशीन निष्प्राण है, ठीक उसी तरह बिना आत्मा के प्रकृति का आनंद नहीं उठाया जा सकता।[6]

लोक साहित्य में लोक कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के जन्म के साथ ही लोक कथा का उद्‌य हुआ। मनुष्यों में कहानी कहने और सुनने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। नानी व दादी के मुख से कहानियाँ सुनने

[5] डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–271
[6] हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन, पृष्ठ संख्या–34

की परंपरा सदियों से चली आ रही है। लोक कथा में जीवन के सुख–दुःख, रीति–रिवाज, आस्था एवं विश्वास की परंपरा भी अभिव्यक्त होती है। लोक कथाओं का मौखिक रूप अधिक प्राप्त होता है। जो पूरे विश्व में व्याप्त है। लोक कथा किसी मानव समूह की वह सांझी अभिव्यक्ति है जो कथाओं, कहावतों, चुटकुलों आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है। लोक कथाएँ वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोक कथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण हैं। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं।

लोकगीतों की भांति लोककथाएँ भी हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त है। दादी अथवा नानी के पास बैठकर बचपन में जो कहानियाँ सुनी जाती है, चौपालों में इनका निर्माण कब, कहाँ कैसे और किसके द्वारा हुआ, यह बताना असंभव है। यद्यपि दादी–नानी से ज्यादा कहानियाँ दादा–नाना सुनाते हैं लेकिन फिर भी दादी–नानी को ही ज्यादा महता देना भी विरासत में चली आ रही परिपाटी का ही परिणाम है।

इस प्रकार भारतीय समाज में लोक कथाएँ परंपरागत रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार की लोक कथाएँ भारतीय समाज में प्रचलित है। जिसमें परियों की कथा, पौराणिक कथा, विभिन्न व्रत तथा त्योहारों की कथा, दंत कथाएँ, बोध कथाएँ, नाग कथा आदि लोक कथाएँ साहित्य में प्रचूर मात्रा में मिलती है। लोक कथाएँ जीवन की व्यापकता को समेटे हुए होती हैं। इनमें मानव जीवन के विभिन्न पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। लोक कहानी लोक साहित्य के एक बहूत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती है। इस विषय मैं डॉक्टर राजवीर धनखड़ 'हरियाणा के लोक साहित्य में जीवन दर्शन' पुस्तक में

लिखते हैं–''लोक कथा का प्राचीनतम रूप वैदिक काल में प्राप्य है। पंचतंत्र, हितोपदेश, व्रत कथा, बेताल पंचविशतिका, जातक एवं जैन कथाएँ अपने उद्देश्यों को लेकर सामान्य जन का मनोरंजन करने तथा उन्हें सदुपदेश देने का कार्य करती रही है। भगवान का रहस्य जानने तथा मनोरंजन के उद्देश्य में इन कहानियों की रचना होती रही है। इन कहानियों में राजा रानी की कहानी, भूत प्रेत, परी की कहानी पशु–पक्षियों की कहानी, देवी–देवताओं, धार्मिक विषयों की कहानी, इतिहास पुराण की कहानी आदि है।''[7]

''लोकगाथा एक ऐसा लोकरंजन प्रधानात्मक गीत है जिसमें गेयता के साथ कथानक भी प्रधानता होती है। इसलिए इसे कहीं पर कथागीत तो कहीं पर गीतकथा कहा गया है। यद्यपि लोकगाथा की गणना लोकगीतों में ही होती है। लोकगाथाओं में युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का पुट अधिक पाया जाता है। अतः लोक गाथाएँ वें काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास है। अथवा जिन्हें काल क्रम में ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की कुछ घटनाएँ जो कोरी कल्पनाजन्य है वे आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती है। लोकगाथाओं को अवदान, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया गया है। राजस्थानी में इसे रूयात नाम में जाना जाता है। लोक गाथाएँ दो रूप में मिलती है– एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं, जिन्हें वीर कथा कहा जा सकता है। इन्हें ही पंवारा भी कहते हैं यथा जगदेव का पंवारा। इसमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे साके ये उन पुरुषों के शौर्य में से संबंधित है जिनके प्रति इतिहास साक्षी है। साके में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।''[8]

लोक जीवन में अनेक सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर खेल तमाशे किये जाते हैं। जिनमें से कुछ का सम्बन्ध नृत्यगीत और अभिनव से होता है उसे लोकनाट्य कहते हैं। हरियाणा की लोकनाट्य परम्परा प्राचीन है इसमें

[7] डॉ. राजवीर धनखड़, हरियाणा के लोक साहित्य में जीवन दर्शन, पृष्ठ संख्या–10

[8] डॉ. शंकरलाल, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–78

साँग, रामलीला, घोड़ी बाजा यहाँ की नाट्य परम्परा की प्रमुख कड़ियाँ हैं। 'साँग' तो हरियाणा की नाट्य परम्परा का सिरगौर है। इसे यहाँ ''कौमी नाटक'' भी कहा जाता है। यह अभिनयात्मक है इसके अभिनय के लिए व्यक्ति को किसी विशेष प्रकार की सामग्री या पूर्व–निर्धारित योजना की आवश्यकता नहीं होती। इसके अभिनय प्रदर्शन के लिए एक खुली जगह पर ही कोई भी तख्त बिछाकर इसका गंचन किया जा सकता है। इसके पात्र खुले स्थान पर ही अपनी वेशभूषा में तैयार होकर प्रदर्शन करते हैं। हरियाणा की जनरजनकारी यह विधा गीत, संगीत एवं नृत्य की एक मनमोहक त्रिवेणी है। लम्बा 'कथा–गीत' साँग का प्राण है और यह एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। हरियाणा के लोक मानस को रस की जो परितृप्ति दीपचंद, सरूपचंद, लक्ष्मीचंद, मांगेराम, रामकिशन व्यास, धनपत और चंद्रलाल बादी आदि के साँगों में प्राप्त होती है। वह यहाँ के शिक्षित अशिक्षित किसी भी व्यक्ति से छिपी नहीं है।

लोकनाट्य लिखे नहीं जाते बल्कि रचे जाते हैं। इसी कारण इनकी भाषा सामाजिकता का पुट लिए हुए होती है। जो भी किस्से–कहानियाँ मानव समाज में सुनाई व दोहराई जाती है, वही किस्से लोकनाट्य का रूपधारण कर लेते हैं। इनका मूल उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करने के साथ–साथ समाज की अच्छाई व बुराई की तरफ भी लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है। लोकनाट्य जहाँ एक तरफ लोगों को हँसाने, उन्हें अपने अभिनय से गुदगुदाने का कार्य करते हैं वही दूसरी तरफ ये समाज की कुरूतियों पर तीखा व्यंग्य भी करते हैं। लोकनाट्यों में एक गुण यह भी होता है कि इनमें व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कुछ भी सुना देने की क्षमता विद्यमान होती है।

लोकगीत शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोक लोर' शब्द का हिन्दी पर्याय होता है। 'फोक' का अर्थ होता है, लोक तथा 'लोर' का अर्थ होता है, गाथा, विधा। हिन्दी साहित्य में फोक शब्द के लिए 'ग्राम' अथवा 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। परन्तु लोकगीत केवल ग्रामवासियों द्वारा ही नहीं गाए जाते अपितु

नगर शहर में रहने वाले लोगों के द्वारा भी उतनी ही प्रसन्नता से गाए जाते हैं, जितना ग्रामवासी प्रसन्न होकर गाते हैं। लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है, जनमानस के गीत, जन–जन के गीत, जनमानस की आत्मा में रचा बसा गीत अर्थात् जो गीत संपत्ति की तरह विरासत में मिले हो वही लोकगीत हैं मौखिक परंपरा से संपन्न ये लोकगीत किसी जाति, समुदाय, राष्ट्र की सबसे बड़ी पहचान है।

लोक गीत शब्द 'लोक' तथा 'गीत' के सहयोग से बना है। जिसका सामान्य अर्थ है, जो गीत लोक से संबंध रखता हो वही लोकगीत है। अर्थात् लोक रचित एवं लोक प्रचलित गीत को ही लोकगीत की संज्ञा दी जाती है। लोक में प्रचलित ऐसे गीत जिसके रचयिता अज्ञात होते हैं तथा लोक की भावनाओं को व्यक्त करते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से विकसित होते हैं।

लोक में प्रचलित असंख्य गीतों में कई गीत विशेष संस्कारों के अवसरों पर गाए जाते हैं। तो कुछ गीत ऋतुओं एवं व्रतो से जुड़े हुए हैं, विविध कार्य करते समय भी कुछ गीत गाए जाते हैं, ये गीत विभिन्न अवसरों पर समूह में मिलकर औरतों द्वारा गाए जाते हैं। लोकगीतों की उत्पत्ति मानव मन की अनुभूतियों का परिणाम है। इनका जन्म मानव हिमालय की गंगोत्री से हुआ है, जिस प्रकार हम मानव मन की अनुभूतियों उनके मनोभावों की उठने वाली ज्वार भाटा रूपी लहरों को रेखांकित नहीं कर सकते उसी प्रकार हम लोकगीतों को भी विविध प्रकार की सीमाओं में नहीं बांधा सकते। क्योंकि लोकगीतों की उत्पत्ति किसी विशेष या सुनियोजित उद्देश्य को लेकर नहीं हुई है, अपितु जीवन में आने वाली विविध प्रकार के रूपों के अनुसार उनके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है, इसलिए लोकगीतों का वर्गीकरण विविध प्रकार के संस्कारों, कार्य क्षेत्रों, ऋतुओं परिकल्पनाओं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आधार पर करना तरक तर्क एवं युक्ति संगत है।

लोकगीत पश्चिम के गांव से तथा पूर्व के देशों में उपजते हैं, हिन्दी जगत में लोकगीतों का प्रथम दौर में 'ग्रामीण गीत' या 'ग्राम गीत' कहकर किया गया था। बाद में इन्हें लोकगीत की संज्ञा दी गई, हिन्दी में 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' की तर्ज पर स्वीकार किया गया। लेकिन क्षेत्र की दृष्टि से कभी है, यह शब्द ग्रामीण समाज के लिए प्रयुक्त हुआ, तो कभी विश्व आदिम जातियों के अर्थ में ग्रहित हुआ।

हमारे हिन्दू धर्म में सभी कार्य संस्कारों से भरे हुए हैं हिन्दू समाज में 16 संस्कारों का वर्णन किया गया है– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म, कर्ण छेदन, विद्या आरम्भ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन विवाह, अन्त्येष्टि।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सोलह संस्कार मानव जीवन के पूर्ण विकास में आवश्यक है। पर आजकल इन संस्कारों में केवल तीन ही संस्कार प्रचलित हैं, जन्म, विवाह, मृत्यु। इन संस्कारों को गीतों के माध्यम से प्रचलित किया जाता है। इस प्रकार संस्कार गीत वे गीत हैं जो संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं, इनमें कुछ अनुष्ठान के अंग हैं, शेष मनोरंजन, हर्ष उल्लास, एवं आनंद की भावना से पूर्ण होते हैं। समाज में व्यक्ति के लिए जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत अवसर युक्त संस्कार निर्धारित किए गए हैं। संस्कार प्रधान देश होने के कारण भारत में हिन्दू शास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान है। इनमें जन्म, विवाह और मृत्यु पर अधिक गीत गाए जाते हैं, इन गीतों में पुत्रइच्छा, पुत्री अनिच्छा, गर्भधारण के बाद बहू रानी की इच्छा, प्रसव पीड़ा, ननद के उपहार, पीला ओढ़ाना, जच्चा के लिए व्यंजन, कन्या विवाह की चिंता, सुहाग, भात, उबटन, सेहरा, घोड़ी, बारात, छंद, कन्या विदाई, वधू आगमन पर बधाई और मृत्यु से संबंधित शोक गीत सम्मिलित किए गए हैं।[9]

---

[9] डॉ. गुणपाल सांगवान, हरियाणवी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृष्ठ संख्या–27

समय के साथ–साथ कई संस्कार लुप्त हो गए हैं और इन संस्कारों का महत्व कम हो गया है। लोक वार्ता की दृष्टि से उपरोक्त 3 संस्कारों के अतिरिक्त, मुंडन, संस्कार का कुछ महत्व अतिविशिष्ट है। कर्ण छेदन और जनेऊ (यज्ञ पवित) आदि ऐसे संस्कार हैं, जो शास्त्रोंगत विधि विधान के साथ खड़े हैं। वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में संस्कारों के दो प्रकार प्रचलित हैं। एक शास्त्रीय स्वरूप को विधिपूर्वक मंत्र उच्चारण द्वारा ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है। संस्कारों के दूसरे स्वरूप को महिलाएँ ही सम्पन्न कर लेती हैं, महिलाएँ अपने लोकगीतों के द्वारा समाज की परंपराओं को ध्यान में रखते हुए हैं, संस्कारित गीतों को अपने कोमल कंठ से गीत गाकर जन–जन का मनोरंजन करती हैं, संस्कार गीत प्रसन्नता के अवसर पर खुशी प्रदान करते हैं, तो दुख के समय में शोकाकुल हो करुणामय दृश्य भी प्रस्तुत करती हैं।

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हरियाणवी लोक–धारा प्रधान संपादक डॉ. मीरा गौतम (कुरूक्षेत्र)

2. हरियाणा और पंजाब के लोकगीत संग्रह–तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. मुकेश।

3. सॉन्ग सम्राट पंडित लख्मीचंद के भजन, संपादन सुरेश जागीर प्रकाशक अक्षरधाम समिति (राजि.) सन् 2001 संस्करण।

4. हरियाणा का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य–प्रकाशन अनुज्ञा बुक प्रथम संस्करण।

5. वर्मा रामसहाय संपादक हरियाणा।

6. मालिक, डॉक्टर भीम सिंह, हरियाणा के लोकगीत संस्कृत मूल्यांकन

7. शर्मा डॉक्टर पूर्ण चंद्र, लोक संस्कृत के क्षितिज

8. शर्मा, डॉ. श्रीराम लोक साहित्य सिद्धांत और प्रयोग

9. भक्त डॉक्टर चंद्रशेखर हाड़ोती लोकगीत प्रकाशन।

10. लोक साहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, हिन्दी साहित्य प्रेस इलाहाबाद।

11. हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, प्रथम संस्करण, श्री कृष्ण जन्माष्टमी 2024 प्रकाशन ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, ओमप्रकाश कपूर ज्ञानमण्डल, लिमिटेड वाराणसी।

12. हिन्दी लोकसाहित्य का प्रबंधन, डॉ. राजेश्वर उनियाल, प्रकाशक कल्पना प्रकाशन बी–1770 जहांगीरपुरी नजदीक स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया दिल्ली 110033।

13. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि विद्या चौहान, प्रगति प्रकाशन, प्रकाशित 1972।

14. लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता एवं आगरा।

15. हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य, डॉ. शंकरलाल यादव हिन्दुस्तानी ऐकेडमी इलाहाबाद।

16. मालवीय लोक साहित्य डॉ. श्याम परमार हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

17. कविता कौमुदी भाग–5 प्रकाशक हिन्दी मंदिर प्रयाग।

18. भारतीय लोक साहित्य डॉ. श्याम परमार, राजकमल प्रकाशन पब्लिकेशन लिमिटेड बम्बई।

19. कश्मीर का लोक साहित्य डॉ. मोहन कृष्ण दर प्रकाशन वर्ष 1963।

20. खड़ी बोली का लोक साहित्य डॉ. सत्य गुप्ता हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

21. धरती गाती है, देवेन्द्रनाथ सत्यार्थी

22. खड़ी बोली का लोक साहित्य , डॉ. सत्यागुप्ता हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद।

23. हिन्दू संस्कार, डॉ. राजबली पाण्डेय, चौखम्बा विद्या भवन चौक, वाराणसी 2018।

24. हरियाणा के लोकगीत, डॉ. साधुराम शारदा हरियाणा साहित्य अकादमी।

25. हरियाणा का भक्ति साहित्य, डॉ. रामपत यादव, साहित्य संस्थान गाजियाबाद, निदेशक प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार पटियाला हाउस, नई दिल्ली, 110001 द्वारा प्रकाशित।

26. प्रभाती भजन, सम्पादक छोटेलाल दास संतनगर वरारी, भगलपुर–3, बिहार।

27. हरियाणवी संस्कृति के विविध परिदृश्य, डॉ. दीपिका वालिया संजय प्रकाशन, 4378/4बी, 209 जे.एम.डी. हाउस गली मुरारीलाल, अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली, 110002।

28. हरियाणा प्रदेश के लोकगीतों का सामाजिक पक्ष, जगदीश नारायण भोलानाथ शर्मा।

29. हरियाणा का लोक संगीत, रीता धनखड़, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1669।

30. लोकगीतों में क्रांतिकारी चेतना, विश्वमित्र उपाध्याय प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार प्रकाशन वर्ष 1999।

31. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सातवाँ संस्करण।

32. पाश्चात्य काव्यशास्त्र, देवेन्द्रनाथ शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग कम्पनी, 4230/1, अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली 110002, तीसरा संस्करण 2019।

33. हरियाणा की कृषि संबंधी शब्दावली, प्रेमचंद पातंजलि चण्डीगढ़ हरियाणा साहित्य अकादमी प्रथम संस्करण 1990।

34. हरियाणा के लोकगीत : सांस्कृतिक मूल्यांकन, भीमसिंह मलिक, आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1981।

पत्र-पत्रिकाएँ :-

1. अक्सर पत्रिका, सम्पादक सूरज पालीवाल अंक 55 अप्रैल जून 2022

2. हरिगंधा नवम्बर 1987

3. नवनीत हिन्दी पत्रिका, सम्पादक विश्वनाथ सचदेव अंक अक्टूबर 1984

4. हरियाणा शोध पत्रिका, सम्पादक हरीराम गुप्त नवम्बर 1966

5. दैनिक जागरण

6. दैनिक भास्कर

7. हरिभूमि

8. अमर उजाला

9. पंजाब केसरी

10. मधुरिमा पत्रिका

11. सांझी पत्रिका

12. झंकार

13. संगिनी

साक्षात्कार :–

1. महावीर लावन जिला महेन्द्रगढ़

2. जय सिंह जिला महेन्द्रगढ़

3. वेद प्रकाश जी भगड़ाग जिला महेन्द्रगढ़

4. इद्रा पण्डिताईन महेन्द्रगढ़

5. कृष्ण पण्डिताईन लावन

युगधारा पत्रिका

लखनऊ, उत्तरप्रदेश

प्रशस्ति पत्र
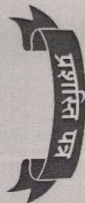
क्रमांक : 357 ydf 2020 दिनांक : १० नम्बर २०२०

आदरणीय श्रवण कुमार यादव जी

का शोध पत्र विषय

हरियाणवी लोक गीतों का हिंदी में समीक्षात्मक अध्ययन

युगधारा पत्रिका के सितंबर अंक में प्रकाशित हुआ है।

संपादक मंडल उनके श्रेष्ठ शोध कार्यों के लिए उन्हें बधाई देता है, एवं उन्नति, सुख, समृद्धि, दीर्घायु व स्वस्थ जीवन की हार्दिक मंगल कामना करता है।

संपादक
सौम्या मिश्रा अनुश्री

अध्यक्ष
गीता अवस्थी

राष्ट्रीय संगोष्ठी

काशी का सन्त साहित्य-समीक्षण एवं प्रो० वासुदेव सिंह

दिनांक : २७ जनवरी, २०२०

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ....श्रवण कुमार यादव....

....विद्याव्रती कॉलेज ऑफ एजुकेशन....

........ने राष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की तथा

....काशी का संत साहित्य :- समीक्षा.... विषय पर

सारगर्भित शोध-पत्र/अतिथि/विशिष्ट/अध्यक्षीय वक्तव्य प्रस्तुत किया।

डॉ. हिमांशु शेखर सिंह
(समन्वयक)
सचिव
प्रो० वासुदेव सिंह स्मृति न्यास

डॉ. उदय प्रताप सिंह
अध्यक्ष
हिन्दुस्तानी एकेडेमी
प्रयागराज

प्रो. श्रद्धा सिंह
(संयोजक-राष्ट्रीय संगोष्ठी)
हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

आयोजक

प्रो० वासुदेव सिंह स्मृति न्यास
वाराणसी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
प्रयागराज, उ०प्र०

सकता है? साधारण जनता के अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन' का भी प्रयोग उपलब्ध है।[4]

ऋग्वेद की अन्य सूक्ति में लोक व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, यथा–

नाम्या आसीदंतरिक्ष शीर्ष्णों द्यौ समवर्तत्।
पद्म्यां भूमिर्दिशः श्रोता, तथा लोकां अकल्पयत।।

अर्थात् भगवान की नाभि से अन्तरिक्ष की सृष्टि हुई। उनके मस्तक से स्वर्ग उत्पन्न हुआ। उनके चरणों से भूमि की सृष्टि हुई। उनके कान से दिशायें उत्पन्न हुई तथा सारे लोकों का निर्माण हुआ।''[5]

भारत में जब आर्यों का आगमन हुआ तब आर्य एवं आर्येत्तर जातियों के बीच 'वेद' और वेदेत्तर स्थिति का आविर्भाव हुआ। उस दशा में 'लोक' शब्द का प्रयोग वेदेत्तर अथवा 'शास्त्रेत्तर' के लिए होने लगा। यहाँ 'लोक' शब्द वेद विरोधी अर्थ का सूचक है। किन्तु आगे चलकर 'लोक' शब्द संस्कृति की संकुचित सीमा तोड़कर ऊँचा उठ गया। वेद के तुल्य ही शब्द अपने स्वतंत्र अस्तित्व का अधिकारी हो गया।[6]

लोक शब्द अंग्रेजी के श्थ्वसइश का पर्याय होते हुए भी उसकी संकुचित भावना में सर्वथा युक्त है और उसका प्राचीन रूप पूर्व में हमारे यहाँ प्राप्त होता है जिसमें संस्कृति और परिष्कृत प्रभावों से मुक्त पुरातन जीवन के दर्शन होते हैं एवं जिसका अपना निश्चित स्वरूप उपलब्ध होता है। साहित्य में लोक शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। कुछ विद्वानों ने 'लोक' को जन कका पर्यायवाची माना है तो कुछ ने 'ग्राम' या 'नगर' की सीमित परिधि के अन्तर्गत बांधा है। कुछ विद्वान अशिक्षित और अल्पसभ्य व्यक्तियों के वर्ग को लोक के अन्तर्गत मानते हैं परन्तु हमारे दृष्टिकोण में 'लोक' शब्द की व्याप्ति में नगर–गाँव आदि सब कुछ आ जाता है। इसे नगर या गाँव की सीमित परिधि के अन्तर्गत बॉधना उचित नहीं है और न ही इसे जन का पर्याय मानना भी उचित है। ग्राम या जन शब्द लोक के समक्ष संकुचित अर्थ एवं क्षेत्र वाले प्रतीत होते हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि ''लोक मानव समाज का वह वर्ग है, जो अपनी प्राचीन मान्यताओं एवं परम्पराओं के प्रति आस्थावान है, वह आधुनिक सभ्यता एवं कृत्रिमता से दूर अपनी प्राचीन संस्कृति, मान्यताओं एवं परम्पराओं को नहीं तोड़ता। वास्तव में लोक वही है जिसमें युग की मनोवृत्तियों के कुछ न कुछ अवशेष उपलब्ध हो।''

सन्दर्भ–

1. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन, पृष्ठ संख्या–21
2. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–10
3. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ संख्या–686
4. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ संख्या–10
5. डॉ. सरोजनी रोहतगी, अवधी का लोक साहित्य, पृष्ठ संख्या–01
6. विद्या चौहार, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ संख्या–40

राष्ट्रीय-संगोष्ठी

(हिन्दी विभाग)

दिनांक - 3-4 फरवरी 2020

संत अलॉयसियस महाविद्यालय

(स्वशासी), जबलपुर

Reaccredited "A+" Grade by NAAC (CGPA : 3.68/4.00)
College with Potential for Excellence by UGC
DST-FIST Supported and DBT STAR College

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि डॉ. /श्री/श्रीमती..

महाविद्यालय/विश्वविद्यालय..

ने भारतीय समाज-विज्ञान तथा अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली के सौजन्य से इस महाविद्यालय द्वारा दिनांक 3-4 फरवरी 2020 को राष्ट्रभाषा, राजभाषा और अब विश्व भाषा हिन्दी (विश्व व्यापार तथा वाणिज्य के विशेष संदर्भ में) विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में सक्रिय रूप से भाग लिया तथा..

....विषय पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

डॉ. अभिलाषा शुक्ल
संयोजक

डॉ. रामेन्द्र प्रसाद ओझा
विभागाध्यक्ष

रेव. डॉ. वलन अरासु
PRINCIPAL

SHODH CHETNA – YEAR-8, VOL. 4 (OCT TO DEC., 2022) ISSN : 2350-0441
A Peer-Reviewed & Refereed
International Multifocal
Research Journal
IMPACT-FACTOR SJIF - 5.999
Paper Recieved : 11st Oct 22 Paper Accepted : 15th Oct 22

"हरियाणवी लोकगीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन"

❐ श्रवण कुमार*

शोध सारांश

लोक साहित्य का अध्ययन, अध्यापन में सबसे पहला उठता है कि 'लोक क्या है', इसे परिभाषित करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल 'हिन्दी लोक साहित्य का प्रबंधन' में लिखते हैं, "लोक क्या है? यह जो गाँवों और नगरों में, खेतों और कारखानों में, गिरी कन्दराओं और मैदानों में, नदियों के गुहाने से लेकर पर्वत शिखरों तक, मधुमक्खी के छत्ते की तरह असंख्य जनता फैली है। वेदव्यास ने जिसके बारे में कहा था कि मैं तुम्हारे अत्यंत गुप्त रहस्य की बात बताता हूँ। इस दुनिया में सबसे बड़ा मनुष्य है, उससे बड़ा कोई नहीं। चण्डीदास ने जिसके बारे में गाया 'सुनाह मानुष भाई, सवार ऊपर मानुष सत्य ताहर, ऊपर नाहीं। हे भाई सुनों! मनुष्य से बड़ा और कोई सत्य नहीं है।"[1]

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शने धातु में 'धञ' प्रत्यय लगाने से बना है। इस धातु का अर्थ है देखना जिसका लटलकार में अन्य पुरुष एकवचन का रूप लोकते हैं। अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ– देखने वाला। इसलिए वह समस्त समुदाय जो इस कार्य को करता है 'लोक' कहलाएगा।[2]

लोक मानव जीवन का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता समाज और पाण्डित्य की चेतना से शून्य है यह एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक से अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक तत्व कहलाते हैं।

"शब्दकोशों में 'लोक' शब्द के अनेक अर्थ हैं। जिनमें से साधारणतया दो अर्थ अधिक प्रचलित है एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है, दूसरा अर्थ जनसामान्य है इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का 'वाचक' लोक शब्द साहित्य का विशेषण है किन्तु इतने में लोक का वह अभिप्राय प्रकट नहीं हो पाता जो साहित्य विशेष के रूप में वह प्रदान करता है।"[3]

अर्थात् लोक एक प्रकार से साहित्यिक संस्कारों से अनभिज्ञ होता है। लोक साहित्य को लोकवार्ता का ही एक अंग माना जा सकता है। लोक साहित्य को लोक संस्कृति के प्रौढ़ रूप में भी समझा जा सकता है। लोक में समस्त जन समुदायों का आविर्भाव होता है।

'लोक' शब्द अत्यंत प्राचीन है। उपनिषदों में अनेक स्थानों में लोक शब्द व्यवहृत हुआ है। जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में कहा गया है कि लोक अनेक प्रकार में फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में वह प्रभूत व व्याप्त है। कौन प्रयत्न करके भी इसे पूरी तरह जान

---

* शोधार्थी, हिन्दी विभाग, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

ISSN-2321-1504 Naagfani

हरियाणवी लोक साहित्य में अस्मिता की तलाश

श्रवण कुमार यादव
हरियाणा
मो.: 9416746237

हरियाणा की गौरवमई परंपरा एवं इतिहास के लिए हरियाणा प्रदेश का समूचे राष्ट्र में विशेष महत्व है हरियाणा प्रदेश के लोक धारा के कवियों ने समय–समय पर हमारे प्रदेश की संस्कृति एवं धरोहर को सुरक्षित रखने का कार्य किया है और उन्होंने मुगलों के शासन में भी आने वाली पीढ़ियों के लिए अपनी संस्कृति व धर्म को बचा कर रखा है लेकिन आजकल का कल्चर हमारी देश की परंपराओं संस्कृति लोक धाराओं सद विचारों को दीमक की तरह खा रही है और युवा पीढ़ी में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के साथ–साथ पश्चिमी संस्कृति की जहर दिनों दिन घोल रही है यह एक ऐसी गंभीर बीमारी है जो हमारी पौराणिक धरोहर को नष्ट कर रही है इस बीमारी से लड़ने के लिए ही एक औषधि है। साहित्य पुस्तकों के प्रचार–प्रसार को बढ़ावा देकर ही आप अपनी लोक भाषा, लोकरधारा, संस्कृति व धर्म को बचा सकते हैं हरियाणवी लोक धारा को हिन्दी इतिहास में जीवित रखने का कार्य लोक साहित्य से जुड़े कवियों लक्ष्मी चंद, जाट मेहर सिंह, नंदलाल शर्मा, ताराचंद, मांगेराम, बाजे भगत, मूलचंद, बख्तार व लालचंद आदि अनेक कवियों ने समय–समय पर अपनी कविताओं में नीति की, अध्यात्म की, समाज की, बुराइयों की, एक दूसरें के प्रति सम्मान व जिम्मेदारी की, गायन विधि की, युद्ध नीति की, ज्योतिष की, तान की, विधि अष्टांग की, योग इतिहास की, वेदों की, पुराणों की व अनेक प्रकार की बातें जो समाज में घटित होती थी उस सबको भजन, सांग, नाटक व रागनियों के माध्यम से समाज में जागृति फैलाई इन कवियों की रचनाएँ आज भी समाज मे ज्ञान वर्धन का कार्य कर रही है लेकिन आज के युवा वर्ग इनकी रचनाओं की तरफ ध्यान न देकर भौतिक संसाधनों की तरह उन्मुक्त हो रहे हैं।

""नया जमाना नई रोशनी सबका ध्यान बदल गया है।
बेशर्मी की हद हो गई कितना इंसान बदल गया है।।""
इस पंक्ति के कवि लालचंद ने अपने विचारों को व्यक्त किया है

हमारे विचारों की नवीनता का कारण एवं समाज में बढ़ता बेजोड़ परिवर्तन हमारी भारतीय परंपरा का हिस्सा नही है अपितु हमारे संपूर्ण समाज में पाश्चात्य सभ्यता का ऐसा गहन प्रभाव देखने को मिलता है कि उस परिवर्तनशील प्रकाश मे मनुष्य की नजरें चकाचौंध मे पड़ जाती है और परिणामतः सभी अपने रास्ते से भटक कर कुमार की ओर अग्रसर होने लगते हैं किसी को यह होश नही रहता कि क्या सही है क्या गलत लोग अपनी परंपरा लोक लाज एवं मर्यादा को त्याग कर अय्याशी पूर्ण जीवन व्यतीत करना पसंद करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप लोग अपनी मर्यादा लोक लाज को भूलते जा रहे हैं।

""जुआ चोरी और जीवन बीर बिरानी हो।
बुरे काम का माध्यम फल डूबे बिन पानी हो।।"
इस पंक्ति के कवि बख्तावर ने अपने विचारों को व्यक्त किया है

जो व्यक्ति हमारी परंपरा के विरूद्ध जाकर अपनी मस्ती मे डूबा रहता है और खोखली परंपराओं के पीछे भागता रहता है, जुआ खेलता है शराब पीता है और दिन–रात जवानी के नशें में डूब कर एक के बाद एक गंदा काम करता है उसे अपने कर्मों के अनुरूप बुरे काम का बुरा नतीजा भोगना पड़ता है और वह एक दिन बिना पानी के बिना ही इतनी गहराई में डूब जाता है की उसकी जग–हंसाई होती है और वह किसी को मुंह दिखाने के लायक नही बचता।

A.P.S. University, Rewa (M.P.)
Plagiarism Verification

Title of Thesis	: "हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन"
Subject	: हिन्दी
Total Pages	: 279
Researcher	: श्रवण कुमार
Supervisor	: डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति, सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय स्नातकोत्तर. महाविद्यालय, बैढ़न जिला सिंगरौली (म.प्र.)
Research Centre	: Deppt. of Hindi, A.P.S. University, Rewa (M.P.)

This is to report that the above thesis was scanned for similarity detection. Process and outcome is given below :-

Software Used	: Urkund
Date	: 18/06/2023
Similarity Index	: 01%
Remarks	: Low Plasgiarism Detected - This Thesis needs Optional Improvement

डॉ० एन० पी० प्रजापति
सहा० प्राध्यापक हिन्दी
शा० महाविद्यालय बैढ़न
जिला सिंगरौली (म०प्र०)

Supervisor
डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर. महाविद्यालय,
बैढ़न जिला सिंगरौली (म.प्र.)

Chief Librarian, Prof. in-Charge
Central Library

26.6.23

Prof. Incharge
Central Library
A.P.S.University, Rewa (M.P.)

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

AWADHESH PRATAP SINGH UNIVERSITY, REWA (M.P.)

STATEMENT OF MARKS

Ph.D. COURSE WORK HINDI EXAMINATION, 2019

ROLL NO. 18071368 NAME SARWAN KUMAR

F/H'S NAME SRI RAM KISHAN

CATEGORY REGULAR MOTHER'S NAME SMT SUSHILA

CENTRE UTD. A.P.S. UNIVERSITY, REWA (M.P)

SUBJECTS	SCHEME OF MARKS THEORY	SCHEME OF MARKS SESS	MARKS OBTAINED THEORY	MARKS OBTAINED SES	TOTAL
RESEARCH METHODOLOGY	80	20	60	15	75
REVIEW OF PUBLISHED RESEARCH	100		76		76
COMPUTER APPLICATIONS	80	20	56	16	72
NATAK AUR RANGMANCH	80	20	62	16	78
COMPREHENSIVE VIVA-VOCE	100		68		68

QUALIFIED THE Ph.D. COURSE WORK EXAMINATION AS PER UNIVERSITY GRANTS COMMISSION (MINIMUM STANDARDS & PROCEDURE FOR AWARD OF Ph.D. DEGREE) REGULATION 2016.

Max. Marks 500 Total 369

MARKS	SEMESTER I	SEMESTER II	SEMESTER III	SEMESTER IV	SEMESTER V	SEMESTER VI
	SEMESTER VII	SEMESTER VIII	SEMESTER IX	SEMESTER X	GRAND TOTAL	

In Words *MARKS OBTAINED THREE HUNDRED SIXTY NINE OUT OF 500*

RESULT PASS DIVISION/GRADE

1. The asterisk(*) adjacent to marks denotes failure. 2. The alphabet 'C' adjacent to marks denote carry forward. 3. 'A' denotes absent. 4. The Alphabets 'PC' denotes "Paper cancelled". 5. The alphabets "SC" denotes "Subject Cancelled".

Grade System	A+	A	A-	B+	B	B-	C+	C	C-	F
Grade Point	10	9	8	7	6	5	4	3	2	1
Range of Marks	91-100	81-90	71-80	61-70	51-60	41-50	31-40	21-30	11-20	00-10

14 SEP 2020

University Office Date Checked by Assistant Registrar (Exam.) A.P.S. University REWA (MP)

हिन्दी विभाग

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

क्रमांक/शोध/2023/68

रीवा, दिनांक : 08/05/2023

शोध जमा पूर्व Presentation/प्रस्तुतिकरण प्रमाण–पत्र

पी–एच.डी. अध्यादेश 30(ए) की कण्डिका 18(1) **Submission of thesis pre. Ph.D. Presentation** के प्रावधानानुसार।

शोध छात्र/~~छात्रा~~ श्रवण कुमार

शोध निर्देशक डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति

शोध पंजीयन क्रमांक 2019/03 अकादमिक/शोध/2022/679

रीवा, दिनांक 22-02-2022 शोध विषय "हरियाणवी लोक गीतों

शोध शीर्षक का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन"

पर विभाग के अध्ययन केन्द्र में दिनांक 08-05-2023 को शोध जमा पूर्व शीर्षक/विषयवस्तु से संबंधित Presentation/प्रस्तुतिकरण किया। प्रस्तुतिकरण संतोषजनक पाया गया।

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय,
रीवा (म.प्र.)
8/5/23

राष्ट्रीय-संगोष्ठी

(हिन्दी विभाग)

दिनांक - 3-4 फरवरी 2020

संत अलॉयसियस महाविद्यालय

(स्वशासी), जबलपुर

Reaccredited 'A+' Grade by NAAC (CGPA : 3.68/4.00)
College with Potential for Excellence by UGC
DST-FIST Supported and DBT STAR College

INDIAN COUNCIL OF SOCIAL SCIENCE RESEARCH

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि डॉ. / श्री / श्रीमती ......सत्येन्द्र कुमार यादव......
महाविद्यालय / विश्वविद्यालय ......आचार्य, विद्यावती कॉलेज ऑफ एजुकेशन, महेन्द्रगढ़, हरयाणा......
ने भारतीय समाज-विज्ञान तथा अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली के सौजन्य से इस महाविद्यालय द्वारा दिनांक 3-4 फरवरी 2020 को राष्ट्रभाषा, राजभाषा और अब विश्व भाषा हिन्दी (विश्व व्यापार तथा वाणिज्य के विशेष संदर्भ में) विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में सक्रिय रूप से भाग लिया तथा ..."अपनी बोली में अपना व्यापार"...... विषय पर अपना शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

डॉ. अभिलाषा शुक्ल
संयोजक

डॉ. रामेन्द्र प्रसाद ओझा
विभागाध्यक्ष

रेव. डॉ. वलन अरासू
प्राचार्य

‘‘हरियाणवी लोक गीतों का हिन्दी में समीक्षात्मक अध्ययन’’

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
की डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2023

विभागाध्यक्ष

प्रो. दिनेश कुशवाह
आचार्य एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शोध–निर्देशक

डॉ. निरपत प्रसाद प्रजापति
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बैढ़न,
जिला-सिंगरौली (म.प्र.)

शोधार्थी

श्रवण कुमार
एम.ए. (हिन्दी)

शोध–केन्द्र

हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

समग्र मूल्यांकन

इस संसार में मित्र धन–धान्य आदि का बहूत ही अधिक महत्व हैं किन्तु माता और मातृभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊपर माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हरियाणवी लोकगीत हमारी मातृभाषा की धरोहर है। जिसकी रक्षा एवं संवर्धन हेतु कार्य करना हमारा परम दायित्व बनता है। जब हम अपनी लोक परंपरा स्वरूप लोकगीतों को संरक्षण प्रदान करेंगे और लोकगीतों को संरक्षण प्रदान करेंगे और लोकगीतों के संवर्धन हेतु कार्य करेंगे तो अप्रत्यक्ष रूप से यह हमारी मातृभाषा की सेवा कहलाएगी, इसी के साथ हम अपनी भाषा के अपनी मातृभूमि के भावों, लोक परंपराओं, लोक कथाओं एवं लोक संगीत को एक सुदृढ़ संरक्षण प्रदान कर सकने में सक्षम होंगे।

हमारे लोकगीत ना सिर्फ हमारी क्षेत्रीयता को दर्शाते हैं, अपितु लोकगीतों में हमारी पौराणिक परंपराएँ रीति–रिवाज निबंध होते हैं, जिनका संक्षरण एवं संवर्धन करना हमारा परम दायित्व है। लोकगीत ना सिर्फ हमारी लोक परंपरा को दर्शाते हैं, अपितु उनमें छिपे हुए अनगिनत भाव हमारे लिए अत्याधिक मूल्यवान हैं, जिन्हें संरक्षण प्रदान करना जिनके बारे में सोचना और समाज के सामने उनके महत्वों को उजागर करना हमारा परम दायित्व बनता है।

नित नवीन ऊँचाइयों को छूते इस समाज में दूषित मानसिकताओं के चलते, हमारी लोक परंपराओं और रीति–रिवाजों को रूढ़िवादी नाम से अलंकृत किया जाने लगा है, जिसके परिणाम स्वरूप इनका वर्चस्व एवं वास्तविकता दोनो ही विलुप्त होती सी दिखाई देती है। वर्तमान समय में अत्याधिक कम लोग हैं जो अपनी इन परंपराओं और अपनी बोली के लिए

सामने आना चाहते हैं, इनमें से कुछ लोग ऐसे भी हैं जो लोकगीतों को दबी कुचली और पुरानी सभ्यता का ढांचा समझते हैं और पश्चात् संस्कृत को विकास क्रम की सीढ़ी का नाम देते हैं। इन्हीं तमाम मानसिकताओं के चलते, लोकगीतों को आज संरक्षण एवं संवर्धन की नितांत आवश्यकता है। अपनी लोक परंपरा एवं अनगिनत रीति–रिवाजों स्वरूप लोकगीतों को एक संवर्धन एवं संरक्षण प्रदान करना हमारा परम दायित्व बनता है।

हमारी लोक परंपराएँ जो कि लोकगीतों की पर्याय है। उनके विलुप्त होते स्वरूप को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में लोकगीतों के अध्ययन की नितांत आवश्यकता परिलक्षित होती है। क्योंकि अगर हमारी लोक परंपराओं को जीवित रखना है तो उन लोग परंपराओं को जीवित रखने का मूल स्रोत हमारे लोकगीत ही है। लोकगीत ना सिर्फ परंपराओं की जननी है अपितु लोकगीत साहित्य एवं संगीत से हमारा सीधा संबंध स्थापित करने का कार्य भी करते हैं, लोकगीतों में जहां एक तरफ प्रत्येक शब्द का अलौकिक अर्थ है, वहीं संगीत का माधुर्य भी परिलक्षित होता है।

अतः इतने अधिक गुणों के परिणामस्वरूप हमारे लोकगीत एवं लोक परंपराएँ जैसे विलुप्त होती जा रही हैं, परिणामस्वरूप वर्तमान समय में अगर संरक्षण नहीं प्रदान किया गया तो वह पूर्ण रूप से विलुप्त हो जाएंगी। लोकगीतों के महत्व को बनाए रखने के उद्देश्य से वर्तमान समय में शोध कार्य का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इन्हीं सब कारणों के चलते शोध कार्य का विषय लोकगीतों पर रखा जा रहा है।

हरियाणवी सामाजिक, सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से लोक गीतों को बल प्रदान करने के उद्देश्य से शोध कार्य पूर्ण किया गया, जिसके परिणम स्वरूप लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन को बल प्राप्त होगा। उक्त शोध

कार्य के माध्यम से लोकगीतों की प्रतिष्ठा के प्रतिपक्ष में लोकपक्ष की महत्ता को बल प्रस्तुत करने का कार्य किया गया।

लोकगीतों के अध्ययन के माध्यम से लोक परंपराओं और रीति–रिवाजों सहित उनकी भाव प्रधानता को संरक्षण प्राप्त है। लोकगीतों के प्रकारों, लोकगीतों के भावों एवं लोकगीतों की विशेषताओं को रेखांकित कर उन्हें संरक्षित करने का कार्य किया। हरियाणवी लोक कला ही नहीं अपितु हरियाणा की प्राचीन सभ्यता को भी संरक्षण प्रदान करने का कार्य किया है जो आने वाली पीढ़ी के लिए अत्यधिक प्रेरणादाई एवं पथग्राही साबित होगा।

हरियाणवी लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन को ध्यान में रखते हुए, हरियाणवी लोकगीतों में पुनः प्राण प्रतिष्ठा करने के उद्देश्य से यह शोध कार्य किया जा रहा है। जिससे की हमारी लोक परंपराओं एवं सभ्यताओं को संरक्षण एवं बल प्राप्त हो सके और हमारी लोकगीतों के माध्यम से हमारी पौराणिक सभ्यता जीवित रह सके। इस अध्ययन के साथ ही साथ हरियाणवी लोकगीतों की प्रमुख धारा को हिन्दी से जोड़ते हुए हरियाणवी लोकगीतों की विकास यात्रा को भी विवेचित करने एवं विश्लेषण करने का प्रयास होगा।

अध्याय की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने छः अध्याय में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में हरियाणवी लोकगीत : परिचयात्मक पृष्ठभूमि इसके अन्तर्गत लोक का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप, लोक साहित्य, लोक साहित्य की विधाए– लोक कथाएँ, लोकगीत, लोकगाथा एवं लोकनाट्य, लोकगीत का अर्थ एवं परिभाषा, लोकगीत की विशेषताएँ, लोकगीतों का

वर्गीकरण, लोकगीत का महत्व, हरियाणवी लोकगीतों का जन्म, हरियाणवी लोक गीतों का इतिहास का अध्ययन किया गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज व परिवेश में उसका जन्म होता है वह समाज को अंगीकृत कर उसी के अनुरूप अपने जीवन अपने आचार–विचार व्यवहार व संस्कृति में अपने आप को ढाल देता है। विकास के सोपान पर कदम रखते हुए उसे अपने समाज के साथ–साथ अन्य सामाजिक जीवन को भी देखने का अवसर मिलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के मध्य उसे अंदर एक द्वंद्व की सी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। यही द्वंद्व उस व्यक्ति के जीवन में उथल–पुथल मचाता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति उसके रहस्य को जानना चाहता है। उसमें अपने समाज संस्कृति और मान्यताओं आदि को समझने व परखने की जिज्ञासा पैदा होती है। लोक साहित्य वह स्रोत है जिसके माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक अंतरधाराओं की तरलता का एहसास किया जा सकता है।

लोक साहित्य प्रायः लिखित होता है। इसके रचयिता का नाम भी प्रायः अज्ञात रहता है। हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक एवं परंपरागत होता है तथा यह लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। विश्वामित्र उपाध्याय के अनुसार–''मनुष्य अपने जीवन में सुख–दुःख का जो अनुभव करता है; अपने परिवेश तथा प्रकृति में जो कुछ देखता है; उससे सहज रूप में उत्पन्न भावों को वह अपनी वाणी तथा हाव–भाव से अभिव्यक्त करता है। साधारण जन अपने मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालने वाले घटना के बारे में गाकर; नाच कर या रोकर अपनी रागात्मक भावनाओं को प्रकट करते हैं; यह उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। मानव आदिकाल से अपनी रागात्मक भावनाओं की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों के द्वारा करता गया है! जनसाधारण की यह स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''

किसी स्थान का लोक साहित्य वहाँ की लोक संस्कृति का दर्पण होता है। मनुष्य जाति की भाषा उनकी संस्कृति धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य, सभ्यता आदि का अवलोकन मनुष्य के लोक साहित्य के द्वारा ही किया जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी हमारी मनुष्य जाति। जन जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है। वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश तथा समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोग समाज है।

डॉक्टर सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिमानव के अवशेष उपलब्ध हो। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप से झलकती है।

''लोक साहित्य'' शब्द 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। यह अंग्रेजी के अनुकरण पर आया है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिटरेचर' का अर्थ 'साहित्य'। इसी लोक साहित्य का अर्थ है। ''किसी काल विशेष का न होकर युग–युग से चला आया हुआ वह साहित्य, जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।''

लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जिसे लिपिबद्ध करने का यह प्रयत्न सदैव ही अपूर्व रहेगा। उसमें जन–मन के असंख्य उद्गार प्रकट होते हैं, जिसको लिपिबद्ध करना कठिन है। इस संदर्भ में चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घाटोयो नीर, कबीर की उक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक छाप हुआ करती हैं, जो उसके लिखित, मौखिक साहित्य के अनेक रूपों में झलक उठती है। इस प्रकार लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है, आवेग के क्षणों में जन–मन में निस्सृत अकृत्रिम भावपूर्ण अभिव्यक्ति जो अपना रूपाकार स्वयं निर्धारित करता है, लोक साहित्य है।

लोक साहित्य का निर्माण अपने आप ही हो जाता है। जब जन साहित्य की रचना अचानक होती है। लोक साहित्य का अर्थ वह सामान्य जन समूह है। जो अपनी जन जात प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति में कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोक साहित्य के विषय में डॉक्टर भीम सिंह मलिक कहते हैं–''पान के पुनः–पुनः चबाने से, गन्ने की पोर–पोर के रस में तथा महाभारत की कथा श्रवन में जो मजा बार–बार आता है वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त है।''

लोक साहित्य का क्षेत्र बहूत व्यापक है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है और जन समुदाय तक इसका प्रचार–प्रसार होता है, लोक साहित्य एक ऐसा शास्त्र है, जिसने अपने अंतर्गत कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किया हुआ है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। लोक साहित्य के गुढ अर्थ को सहजता से समझने के लिए हिन्दी साहित्य कोश के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने घड़ी हो, पर आज इसे सामान्य लोग समूह अपनी ही मानवता है, और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी कारण जिसके किसी किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलती है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोग का अपना है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।''

अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी व्यक्ति के समाज व उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, किसी समाज के लोक साहित्य से उस समाज के व्यक्ति के चरित्र को भली भांति समझा जा सकता है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है, जो चाहे किसी भी विशेष समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उपजा हो या चाहे वह कहीं भी पल्लवित तथा पुष्पित हुआ हो, उसकी सुगंध दूसरे लोक में फैल ही जाती है, क्योंकि लोक का संबंध केवल भौतिक नहीं होता बल्कि अत्यधिक आत्मिक होता है। तथा प्रकृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की भूमिका ठीक उसी तरह से होती है जिस तरह से किसी कारखाने में मशीन व बिजली की होती है। प्रकृति यदि किसी कारखाने की मशीन है, तो आत्मा उस में बिजली की भूमिका अदा करती है, प्रकृति किसी मशीन की तरह विशिष्ट पहचान व नए–नए आयाम देती हैं तथा आत्मा इसे बिजली की तरह न केवल ऊर्जावान व प्रकाशमान ही बनाती है, वरन् इसमें अलौकिक सुख का अहसास भी कराती है, यदि लोक से प्रकृति को हटा दें तो साहित्य व लोक साहित्य में कहीं भी भिन्नता नजर नहीं आएगी। सर्वत्र एक जैसा ही स्वरूप दिखाई देगा। ठीक इसी तरह से बिना अध्यात्मिक सुगंध के वह नीरस व बेजान भी नजर लग सकता है। इसलिए लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की विशेष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार से बिना बिजली की मशीन निष्प्राण है, ठीक उसी तरह बिना आत्मा के प्रकृति का आनंद नहीं उठाया जा सकता।

द्वितीय अध्याय में जन्म एवं मृत्यु संस्कार संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ ही संस्कार, अर्थ, परिभाषा, समाज में प्रचलित विभिन्न संस्कार, जन्म संस्कार संबंधित लोकगीतों की परिभाषा जैसे– ओजणा गीत, सोहर गीत, प्रसव गीत, भेली गीत, छठी गीत, नेग गीत, कुआँ पूजन गीत, पालना गीत, लोरी गीत का अध्ययन किया गया है।

मानव एक सामाजिक प्राणी है। जिस समाज व परिवेश में उसका जन्म होता है वह समाज को अंगीकृत कर उसी के अनुरूप अपने जीवन अपने आचार–विचार व्यवहार व संस्कृति में अपने आप को ढाल देता है। विकास के सोपान पर कदम रखते हुए उसे अपने समाज के साथ–साथ अन्य सामाजिक जीवन को भी देखने का अवसर मिलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक विभिन्नता के मध्य उसे अंदर एक द्वंद्व की सी स्थिति उत्पन्न होने लगती है। यही द्वंद्व उस व्यक्ति के जीवन में उथल–पुथल मचाता है और इसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति उसके रहस्य को जानना चाहता है। उसमें अपने समाज संस्कृति और मान्यताओं आदि को समझने व परखने की जिज्ञासा पैदा होती है। लोक साहित्य वह स्रोत है जिसके माध्यम से सामाजिक सांस्कृतिक अंतरधाराओं की तरलता का एहसास किया जा सकता है।

लोक साहित्य प्रायः लिखित होता है। इसके रचयिता का नाम भी प्रायः अज्ञात रहता है। हालांकि लोक साहित्य की कोई निश्चित परिभाषा देना सम्भव नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि यह साहित्य मौखिक एवं परंपरागत होता है तथा यह लोक संस्कृति का प्रतिबिंब होता है। विश्वामित्र उपाध्याय के अनुसार–''मनुष्य अपने जीवन में सुख–दुःख का जो अनुभव करता है; अपने परिवेश तथा प्रकृति में जो कुछ देखता है; उससे सहज रूप में उत्पन्न भावों को वह अपनी वाणी तथा हाव–भाव से अभिव्यक्त करता है। साधारण जन अपने मस्तिष्क और हृदय पर प्रभाव डालने वाले घटना के बारे में गाकर; नाच कर या रोकर अपनी रागात्मक भावनाओं को प्रकट करते हैं; यह उनकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है। मानव आदिकाल से अपनी रागात्मक भावनाओं की भाषागत अभिव्यक्ति गीतों, कहानियों, उक्तियों के द्वारा करता गया है! जनसाधारण की यह स्वाभाविक भाषागत अभिव्यक्ति ही लोक साहित्य है।''

किसी स्थान का लोक साहित्य वहाँ की लोक संस्कृति का दर्पण होता है। मनुष्य जाति की भाषा उनकी संस्कृति धर्म, रीति–रिवाज, कला–साहित्य,

सभ्यता आदि का अवलोकन मनुष्य के लोक साहित्य के द्वारा ही किया जाता है। लोक साहित्य की परंपरा उतनी ही पुरानी है, जितनी हमारी मनुष्य जाति। जन जीवन के आचार–विचार, रहन–सहन, नीति धर्म एवं जीवन दर्शन की चर्चा जिस साहित्य में होती है। वह लोक साहित्य कहलाता है। प्रत्येक देश तथा समाज की संस्कृति की आधार शिला वहाँ का लोग समाज है।

डॉक्टर सत्येन्द्र ने लोक साहित्य की परिभाषा करते हुए बताया है कि इस जन साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती हैं जिसमें आदिमानव के अवशेष उपलब्ध हो। लोक जीवन में प्राचीन संस्कृति अपने मौलिक रूप से झलकती है।

''लोक साहित्य'' शब्द 'फोक लिटरेचर' का अनुवाद है। यह अंग्रेजी के अनुकरण पर आया है। 'फोक' का पर्याय 'लोक' और 'लिटरेचर' का अर्थ 'साहित्य'। इसी लोक साहित्य का अर्थ है। ''किसी काल विशेष का न होकर युग–युग से चला आया हुआ वह साहित्य, जो हमें जन जीवन के बीच प्रायः मौखिक रूप में ही प्राप्त होता रहा है।''

लोक साहित्य ऐसा साहित्य है जिसे लिपिबद्ध करने का यह प्रयत्न सदैव ही अपूर्व रहेगा। उसमें जन–मन के असंख्य उद्‌गार प्रकट होते हैं, जिसको लिपिबद्ध करना कठिन है। इस संदर्भ में चिड़ी चोंच भर ले गई, नदी न घाटोयो नीर, कबीर की उक्ति सिद्ध होती है। प्रत्येक प्रदेश के जीवन की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक छाप हुआ करती हैं, जो उसके लिखित, मौखिक साहित्य के अनेक रूपों में झलक उठती है। इस प्रकार लोक साहित्य की परिभाषा इस प्रकार है, आवेग के क्षणों में जन–मन में निस्सृत अकृत्रिम भावपूर्ण अभिव्यक्ति जो अपना रूपाकार स्वयं निर्धारित करता है, लोक साहित्य है।

लोक साहित्य का निर्माण अपने आप ही हो जाता है। जब जन साहित्य की रचना अचानक होती है। लोक साहित्य का अर्थ वह सामान्य जन समूह है।

जो अपनी जन जात प्रकृति के सौन्दर्य की दिव्य ज्योति में कल्याणमयी संस्कृति का निर्माण करता है। लोक साहित्य के विषय में डॉक्टर भीम सिंह मलिक कहते हैं–''पान के पुनः–पुनः चबाने से, गन्ने की पोर–पोर के रस में तथा महाभारत की कथा श्रवन में जो मजा बार–बार आता है वही सरसता और ताजगी लोक साहित्य के कण–कण में व्याप्त है।''

तृतीय अध्याय में विवाह संस्कार संबंधी लोकगीतों की समीक्षात्मक अध्ययन के साथ वर खोजणा गीत, सगाई गीत, बान गीत, बन्ना गीत, भात गीत, मेहन्दी गीत, सेहरा बांधना आदि का उल्लेख किया गया है।

लोक साहित्य का क्षेत्र बहूत व्यापक है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की सम्मिलित संपत्ति है और जन समुदाय तक इसका प्रचार–प्रसार होता है, लोक साहित्य एक ऐसा शास्त्र है, जिसने अपने अंतर्गत कई शास्त्रों और एक बड़े इतिहास को समाहित किया हुआ है। लोक साहित्य को समझने के लिए कई विद्वानों ने अलग–अलग परिभाषाएँ दी हैं, अतः आज लोक साहित्य का अध्ययन एवं अनुसंधान सरल बना है और विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से लोक साहित्य का सही स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत होता है। यह साहित्य मनुष्य के अतीत पर प्रकाश डालता है। लोक साहित्य लोक जीवन की अभिव्यक्ति है, वह जीवन में घनिष्ठ रूप से संबंधित है। लोक साहित्य के गुढ अर्थ को सहजता से समझने के लिए हिन्दी साहित्य कोश के संपादक ने लिखा है कि ''वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जो भले ही किसी व्यक्ति ने घड़ी हो, पर आज इसे सामान्य लोग समूह अपनी ही मानवता है, और जिसमें लोक की युग–युगीन वाणी की साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक मानस प्रतिबिम्ब रहता है। इसी कारण जिसके किसी किसी भी शब्द में रचना चैतन्य नहीं मिलती है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय और प्रत्येक लहजा सहज ही लोग का अपना है और उसके लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है।''

अतः हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य किसी व्यक्ति के समाज व उसकी संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है, किसी समाज के लोक साहित्य से उस समाज के व्यक्ति के चरित्र को भली भांति समझा जा सकता है। लोक साहित्य ऐसा साहित्य है, जो चाहे किसी भी विशेष समाज की सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उपजा हो या चाहे वह कहीं भी पल्लवित तथा पुष्पित हुआ हो, उसकी सुगंध दूसरे लोक में फैल ही जाती है, क्योंकि लोक का संबंध केवल भौतिक नहीं होता बल्कि अत्यधिक आत्मिक होता है। तथा प्रकृति से पूर्णतः प्रभावित होता है। लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की भूमिका ठीक उसी तरह से होती है जिस तरह से किसी कारखाने में मशीन व बिजली की होती है। प्रकृति यदि किसी कारखाने की मशीन है, तो आत्मा उस में बिजली की भूमिका अदा करती है, प्रकृति किसी मशीन की तरह विशिष्ट पहचान व नए–नए आयाम देती हैं तथा आत्मा इसे बिजली की तरह न केवल ऊर्जावान व प्रकाशमान ही बनाती है, वरन् इसमें अलौकिक सुख का अहसास भी कराती है, यदि लोक से प्रकृति को हटा दें तो साहित्य व लोक साहित्य में कहीं भी भिन्नता नजर नहीं आएगी। सर्वत्र एक जैसा ही स्वरूप दिखाई देगा। ठीक इसी तरह से बिना अध्यात्मिक सुगंध के वह नीरस व बेजान भी नजर लग सकता है। इसलिए लोक साहित्य में प्रकृति व आत्मा की विशेष में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिस प्रकार से बिना बिजली की मशीन निष्प्राण है, ठीक उसी तरह बिना आत्मा के प्रकृति का आनंद नहीं उठाया जा सकता।

लोक साहित्य में लोक कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के जन्म के साथ ही लोक कथा का उद्य हुआ। मनुष्यों में कहानी कहने और सुनने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। नानी व दादी के मुख से कहानियाँ सुनने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। लोक कथा में जीवन के सुख–दुःख, रीति–रिवाज, आस्था एवं विश्वास की परंपरा भी अभिव्यक्त होती है। लोक कथाओं का मौखिक रूप अधिक प्राप्त होता है। जो पूरे विश्व में व्याप्त है। लोक कथा किसी मानव समूह की वह सांझी अभिव्यक्ति है जो कथाओं, कहावतों,

चुटकुलों आदि अनेक रूपों में अभिव्यक्त होता है। लोक कथाएँ वे कहानियाँ हैं जो मनुष्य की कथा प्रवृत्ति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों एवं परिवर्धनों के साथ वर्तमान रूप में प्राप्त होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ निश्चित कथानक रूढ़ियों और शैलियों में ढली लोक कथाओं के अनेक संस्करण, उसके नित्य नई प्रवृत्तियों और चरितों से युक्त होकर विकसित होने के प्रमाण हैं। एक ही कथा विभिन्न संदर्भों और अंचलों में बदलकर अनेक रूप ग्रहण करती हैं।

चतुर्थ अध्याय में भक्ति एवं ऋतु संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ सावन गीत, तीज के गीत, होली के गीत, बसंत पंचमी के गीत, भक्ति गीत एवं देवी–देवताओं आदि का उल्लेख किया गया है।

लोकगीतों की भांति लोककथाएँ भी हमें मानव की परंपरागत वसीयत के रूप में प्राप्त है। दादी अथवा नानी के पास बैठकर बचपन में जो कहानियाँ सुनी जाती है, चौपालों में इनका निर्माण कब, कहाँ कैसे और किसके द्वारा हुआ, यह बताना असंभव है। यद्यपि दादी–नानी से ज्यादा कहानियाँ दादा–नाना सुनाते हैं लेकिन फिर भी दादी–नानी को ही ज्यादा महता देना भी विरासत में चली आ रही परिपाटी का ही परिणाम है।

इस प्रकार भारतीय समाज में लोक कथाएँ परंपरागत रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्राप्त होती है। विभिन्न प्रकार की लोक कथाएँ भारतीय समाज में प्रचलित है। जिसमें परियों की कथा, पौराणिक कथा, विभिन्न व्रत तथा त्योहारों की कथा, दंत कथाएँ, बोध कथाएँ, नाग कथा आदि लोक कथाएँ साहित्य में प्रचूर मात्रा में मिलती है। लोक कथाएँ जीवन की व्यापकता को समेटे हुए होती हैं। इनमें मानव जीवन के विभिन्न पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। लोक कहानी लोक साहित्य के एक बहूत बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती है। इस विषय मैं डॉक्टर राजवीर धनखड़ 'हरियाणा के लोक साहित्य में जीवन दर्शन' पुस्तक में लिखते हैं–''लोक कथा का प्राचीनतम रूप वैदिक काल में प्राप्य है। पंचतंत्र,

हितोपदेश, व्रत कथा, बेताल पंचविशतिका, जातक एवं जैन कथाएँ अपने उद्देश्यों को लेकर सामान्य जन का मनोरंजन करने तथा उन्हें सदुपदेश देने का कार्य करती रही है। भगवान का रहस्य जानने तथा मनोरंजन के उद्देश्य में इन कहानियों की रचना होती रही है। इन कहानियों में राजा रानी की कहानी, भूत प्रेत, परी की कहानी पशु–पक्षियों की कहानी, देवी–देवताओं, धार्मिक विषयों की कहानी, इतिहास पुराण की कहानी आदि है।''

''लोकगाथा एक ऐसा लोकरंजन प्रधानात्मक गीत है जिसमें गेयता के साथ कथानक भी प्रधानता होती है। इसलिए इसे कहीं पर कथागीत तो कहीं पर गीतकथा कहा गया है। यद्यपि लोकगाथा की गणना लोकगीतों में ही होती है। लोकगाथाओं में युद्ध, वीरता, साहस, रहस्य और रोमांच का पुट अधिक पाया जाता है। अतः लोक गाथाएँ वें काव्यमय कहानियाँ हैं जिनका आधार इतिहास है। अथवा जिन्हें काल क्रम में ऐतिहासिक महत्व हासिल हो चुका है। लोक मानस की कुछ घटनाएँ जो कोरी कल्पनाजन्य है वे आगे चलकर ऐतिहासिक रूप प्राप्त कर जाती है। लोकगाथाओं को अवदान, राग या किस्सा के नाम से अभिहित किया गया है। राजस्थानी में इसे रूयात नाम में जाना जाता है। लोक गाथाएँ दो रूप में मिलती है– एक प्राचीन पुरुषों की शौर्य की कहानियाँ हैं, जिन्हें वीर कथा कहा जा सकता है। इन्हें ही पंवारा भी कहते हैं यथा जगदेव का पंवारा। इसमें पुराण पुरुषों का अस्तित्व निर्विवाद मान लिया जाता है। दूसरे साके ये उन पुरुषों के शौर्य में से संबंधित है जिनके प्रति इतिहास साक्षी है। साके में जीवन तथा शौर्य का विस्तार अपेक्षित है।''

लोक जीवन में अनेक सामाजिक और धार्मिक अवसरों पर खेल तमाशे किये जाते हैं। जिनमें से कुछ का सम्बन्ध नृत्यगीत और अभिनव से होता है उसे लोकनाट्य कहते हैं। हरियाणा की लोकनाट्य परम्परा प्राचीन है इसमें साँग, रामलीला, घोड़ी बाजा यहाँ की नाट्य परम्परा की प्रमुख कड़ियाँ हैं। 'साँग' तो हरियाणा की नाट्य परम्परा का सिरगौर है। इसे यहाँ ''कौमी नाटक'' भी कहा जाता है। यह अभिनयात्मक है इसके अभिनय के लिए व्यक्ति को

किसी विशेष प्रकार की सामग्री या पूर्व–निर्धारित योजना की आवश्यकता नहीं होती। इसके अभिनय प्रदर्शन के लिए एक खुली जगह पर ही कोई भी तख्त बिछाकर इसका गंचन किया जा सकता है। इसके पात्र खुले स्थान पर ही अपनी वेशभूषा में तैयार होकर प्रदर्शन करते हैं। हरियाणा की जनरजनकारी यह विधा गीत, संगीत एवं नृत्य की एक मनमोहक त्रिवेणी है। लम्बा 'कथा–गीत' साँग का प्राण है और यह एक नाटकीय रूप में होकर चलता है। हरियाणा के लोक मानस को रस की जो परितृप्ति दीपचंद, सरूपचंद, लक्ष्मीचंद, मांगेराम, रामकिशन व्यास, धनपत और चंद्रलाल बादी आदि के साँगों में प्राप्त होती है। वह यहाँ के शिक्षित अशिक्षित किसी भी व्यक्ति से छिपी नहीं है।

पंचम अध्याय रोजमर्रा के कार्यों एवं व्रत संबंधी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ प्रभाती गीत, चक्की गीत, चरखा काटने के गीत, पनघट के गीत, श्रृंगार गीत एवं व्रत गीत का उल्लेख किया गया है।

लोकनाट्य लिखे नहीं जाते बल्कि रचे जाते हैं। इसी कारण इनकी भाषा सामाजिकता का पुट लिए हुए होती है। जो भी किस्से–कहानियाँ मानव समाज में सुनाई व दोहराई जाती है, वही किस्से लोकनाट्य का रूपधारण कर लेते हैं। इनका मूल उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करने के साथ–साथ समाज की अच्छाई व बुराई की तरफ भी लोगों का ध्यान आकर्षित करना होता है। लोकनाट्य जहाँ एक तरफ लोगों को हँसाने, उन्हें अपने अभिनय से गुदगुदाने का कार्य करते हैं वही दूसरी तरफ ये समाज की कुरूतियों पर तीखा व्यंग्य भी करते हैं। लोकनाट्यों में एक गुण यह भी होता है कि इनमें व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कुछ भी सुना देने की क्षमता विद्यमान होती है।

लोकगीत शब्द अंग्रेजी भाषा के 'फोक लोर' शब्द का हिन्दी पर्याय होता है। 'फोक' का अर्थ होता है, लोक तथा 'लोर' का अर्थ होता है, गाथा, विधा। हिन्दी साहित्य में फोक शब्द के लिए 'ग्राम' अथवा 'जन' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। परन्तु लोकगीत केवल ग्रामवासियों द्वारा ही नहीं गाए जाते अपितु

नगर शहर में रहने वाले लोगों के द्वारा भी उतनी ही प्रसन्नता से गाए जाते हैं, जितना ग्रामवासी प्रसन्न होकर गाते हैं। लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है, जनमानस के गीत, जन–जन के गीत, जनमानस की आत्मा में रचा बसा गीत अर्थात् जो गीत संपत्ति की तरह विरासत में मिले हो वही लोकगीत हैं मौखिक परंपरा से संपन्न ये लोकगीत किसी जाति, समुदाय, राष्ट्र की सबसे बड़ी पहचान है।

लोक गीत शब्द 'लोक' तथा 'गीत' के सहयोग से बना है। जिसका सामान्य अर्थ है, जो गीत लोक से संबंध रखता हो वही लोकगीत है। अर्थात् लोक रचित एवं लोक प्रचलित गीत को ही लोकगीत की संज्ञा दी जाती है। लोक में प्रचलित ऐसे गीत जिसके रचयिता अज्ञात होते हैं तथा लोक की भावनाओं को व्यक्त करते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से विकसित होते हैं।

लोक में प्रचलित असंख्य गीतों में कई गीत विशेष संस्कारों के अवसरों पर गाए जाते हैं। तो कुछ गीत ऋतुओं एवं व्रतो से जुड़े हुए हैं, विविध कार्य करते समय भी कुछ गीत गाए जाते हैं, ये गीत विभिन्न अवसरों पर समूह में मिलकर औरतों द्वारा गाए जाते हैं। लोकगीतों की उत्पत्ति मानव मन की अनुभूतियों का परिणाम है। इनका जन्म मानव हिमालय की गंगोत्री से हुआ है, जिस प्रकार हम मानव मन की अनुभूतियों उनके मनोभावों की उठने वाली ज्वार भाटा रूपी लहरों को रेखांकित नहीं कर सकते उसी प्रकार हम लोकगीतों को भी विविध प्रकार की सीमाओं में नहीं बांधा सकते। क्योंकि लोकगीतों की उत्पत्ति किसी विशेष या सुनियोजित उद्देश्य को लेकर नहीं हुई है, अपितु जीवन में आने वाली विविध प्रकार के रूपों के अनुसार उनके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुई है, इसलिए लोकगीतों का वर्गीकरण विविध प्रकार के संस्कारों, कार्य क्षेत्रों, ऋतुओं परिकल्पनाओं, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आधार पर करना तरक तर्क एवं युक्ति संगत है।

षष्ट अध्याय विविध प्रकार के हरियाणवी लोकगीतों का समीक्षात्मक अध्ययन के साथ धर्म गीत, पति–पत्नी संवाद गीत, मेलों के गीत, खेल गीत, तथा दोस्ती गीत का उल्लेख किया गया है।

लोकगीत पश्चिम के गांव से तथा पूर्व के देशों में उपजते हैं, हिन्दी जगत में लोकगीतों का प्रथम दौर में 'ग्रामीण गीत' या 'ग्राम गीत' कहकर किया गया था। बाद में इन्हें लोकगीत की संज्ञा दी गई, हिन्दी में 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' की तर्ज पर स्वीकार किया गया। लेकिन क्षेत्र की दृष्टि से कभी है, यह शब्द ग्रामीण समाज के लिए प्रयुक्त हुआ, तो कभी विश्व आदिम जातियों के अर्थ में ग्रहित हुआ।

हमारे हिन्दू धर्म में सभी कार्य संस्कारों से भरे हुए हैं हिन्दू समाज में 16 संस्कारों का वर्णन किया गया है– गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जात कर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म, कर्ण छेदन, विद्या आरम्भ, उपनयन, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन विवाह, अन्त्येष्टि।

हिन्दू शास्त्रों के अनुसार सोलह संस्कार मानव जीवन के पूर्ण विकास में आवश्यक है। पर आजकल इन संस्कारों में केवल तीन ही संस्कार प्रचलित हैं, जन्म, विवाह, मृत्यु। इन संस्कारों को गीतों के माध्यम से प्रचलित किया जाता है। इस प्रकार संस्कार गीत वे गीत हैं जो संस्कारों के अवसर पर गाए जाते हैं, इनमें कुछ अनुष्ठान के अंग हैं, शेष मनोरंजन, हर्ष उल्लास, एवं आनंद की भावना से पूर्ण होते हैं। समाज में व्यक्ति के लिए जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत अवसर युक्त संस्कार निर्धारित किए गए हैं। संस्कार प्रधान देश होने के कारण भारत में हिन्दू शास्त्रों में सोलह संस्कारों का विधान है। इनमें जन्म, विवाह और मृत्यु पर अधिक गीत गाए जाते हैं, इन गीतों में पुत्रइच्छा, पुत्री अनिच्छा, गर्भधारण के बाद बहू रानी की इच्छा, प्रसव पीड़ा, ननद के उपहार, पीला ओढ़ाना, जच्चा के लिए व्यंजन, कन्या विवाह की चिंता, सुहाग, भात, उबटन,

सेहरा, घोड़ी, बारात, छंद, कन्या विदाई, वधू आगमन पर बधाई और मृत्यु से संबंधित शोक गीत सम्मिलित किए गए हैं।

अंत में उपसंहार और परिशिष्ट में आधार ग्रंथ सूची, संदर्भ ग्रंथ सूची और पत्र–पत्रिकाओं का उल्लेख किया गया है।

समय के साथ–साथ कई संस्कार लुप्त हो गए हैं और इन संस्कारों का महत्व कम हो गया है। लोक वार्ता की दृष्टि से उपरोक्त 3 संस्कारों के अतिरिक्त, मुंडन, संस्कार का कुछ महत्व अतिविशिष्ट है। कर्ण छेदन और जनेऊ (यज्ञ पवित) आदि ऐसे संस्कार हैं, जो शास्त्रोंगत विधि विधान के साथ खड़े हैं। वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में संस्कारों के दो प्रकार प्रचलित हैं। एक शास्त्रीय स्वरूप को विधिपूर्वक मंत्र उच्चारण द्वारा ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है। संस्कारों के दूसरे स्वरूप को महिलाएँ ही सम्पन्न कर लेती हैं, महिलाएँ अपने लोकगीतों के द्वारा समाज की परंपराओं को ध्यान में रखते हुए हैं, संस्कारित गीतों को अपने कोमल कंठ से गीत गाकर जन–जन का मनोरंजन करती हैं, संस्कार गीत प्रसन्नता के अवसर पर खुशी प्रदान करते हैं, तो दुख के समय में शोकाकुल हो करुणामय दृश्य भी प्रस्तुत करती हैं।